विश्वकर्मप्रकाशः

भाषाटीकायुतः



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन

बम्बई-४

विश्वकर्मप्रकाशः

भाषाटीकायुतः

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,

संस्करण : सितंबर २०१९, संवत् २०७६

मूल्य : १९० रुपये मात्र ।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,
Pune -411 013.

अथ विश्वकर्मप्रकाशविषयानुक्रमणिका ।

इतिविश्वकर्मप्रकाशविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ वरकी दाता है मूर्ति जिसकी और मंगलोंका मंगल जो श्रीगणेश सो जयको प्राप्त हो, सबके नमस्कार करनेयोग्य ब्रह्मरूप सरस्वती जयको प्राप्त हो और चेतन और मोक्षरूप तीनों भुवनोंकी माता जयको प्राप्त हो और वाङ्मय महेश्वर मुझे शब्दरूपक ज्ञान करो ॥ १ ॥ ब्रह्माके भुवनपर्यंत जितने लोक हैं वे गृहस्थाश्रमके जिससे आश्रय हैं तिससे मैं गृहके आरंभ और प्रवेशके मुहूर्तको कहता हूं. हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम एकाग्रमन होकर श्रवण करो जो प्राचीन वास्तुशास्त्र महादेवने कहा है ॥ २ ॥ ३ ॥ वह पराशरऋषिने बृहद्रथको

श्रीगणेशाय नमः ॥ जयति वरदमूर्तिर्मङ्गलं मंगलानां जयति सकलवंद्या भारती ब्रह्मरूपा । जयति भुवनमाता चिन्मयी मोक्षरूपा दिशतु मम महेशो वाङ्मयः शब्दरूपम् ॥ १ ॥ आब्रह्मभुवनाल्लोका गृहस्थाश्रममाश्रिताः । यतस्तस्माद् गृहारम्भप्रवेशसमयं ह्यहम् ॥ २ ॥ प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठ शृणुष्वैकाग्रमानसः । यदुक्तं शम्भुना पूर्वं वास्तुशास्त्रं पुरातनम् ॥ ३ ॥ पराशरः प्राह बृहद्रथाय बृहद्रथः प्राह च विश्वकर्मणे । स विश्वकर्मा जगतां हिताय प्रोवाच शास्त्रं बहुभेदयुक्तम् ॥ ४ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया ॥ ५ ॥ पुरा त्रेतायुगे ह्यासीन्महाभूतं व्यवस्थितम् । स्वाप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः ॥ ६ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मयं देवा गताः सेन्द्रा भयावृताः । ततस्ते भयमापन्ना ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ७ ॥

कहा और बृहद्रथने विश्वकर्माको कहा और वह विश्वकर्मा जगत्के कल्याणके लिये अनेक भेदोंसे युक्त वास्तुशास्त्रको कहतेभये ॥ ४ ॥ विश्वकर्मा कहते हैं कि, जगत्के कल्याणकी कामनासे वास्तुशास्त्रको कहताहूं ॥ ५ ॥ पहिले त्रेतायुगके बीचमें एक महाभूत व्यवस्थित हुआ (उठा) उसने अपने शरीरसे संपूर्ण भुवनको शयन करादिया ॥ ६ ॥ उस आश्चर्यको देखकर भय करके सहित इन्द्रआदि देवता आश्चर्यको प्राप्तहुए और भयभीतहुए ब्रह्माकी शरण गये ॥ ७ ॥ यह कहतेभये कि, हे भूतभावन ! अर्थात् भूतोंके पैदा करनेवाले हे भूतोंके ईश्वर ! बडा भय प्राप्त हुआ । हे लोकपितामह ! हम सब कहां जायँ ॥ ८ ॥ उनके प्रति ब्रह्मा बोले कि, हे देवताओ ! भय मतकरो, इस महाबली भूतके संग विरोध मतकरो, किन्तु इसको अधोमुख गेरकर तुम शंकासे रहित होजावोगे ॥ ९ ॥ तिसके अनंतर क्रोधसे दुःखीहुए उन देवताओंने उस महाबली भूतको पकडकर अधोमुख गेरदिया और उसीके ऊपर वे देवता बैठगये ॥ १० ॥ वही वास्तुपुरुषको समर्थ

भूतभावन भूतेश महद्भयमुपस्थितम् । क्व यास्यामः क्व गच्छामो वयं लोकपितामह ॥ ८ ॥ मा कुर्वन्तु भयं देवा विगृह्यैतन्महाबलम् । निपात्याधोमुखं भूमौ निर्विशंका भविष्यथ ॥ ९ ॥ ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तं महाबलम् । विनिक्षिप्तमधोवक्रं स्थितास्तत्रैव ते सुराः ॥१०॥ तमेव वास्तुपुरुषं ब्रह्मा समसृजत्प्रभुः । कृष्णपक्षे तृतीयायां मासि भाद्रपदे तथा ॥ ११ ॥ शनिवारेऽभवज्जन्म नक्षत्रे कृत्तिकासु च । योगस्तस्य व्यतीपातः करणं विष्टिसंज्ञकम् ॥ १२ ॥ भद्रान्तरेऽभवज्जन्म कुलिके तु तथैव च । क्रोशमानं महाशब्दं ब्रह्माणं समपद्यत ॥ १३ ॥ चराचरमिदं सर्वं त्वया सृष्टं जगत्प्रभो । विनापराधेन च मां पीडयंति सुरा भृशम् ॥ १४ ॥

ब्रह्माने भाद्रपदके कृष्णपक्षकी तृतीयामें रचा था ॥ ११ ॥ शनिवारके दिन और कृत्तिकाके दिन उसका जन्म हुआ. उस दिन व्यतीपात योग था और विष्टि करण था ॥ १२ ॥ भद्राओंके मध्यमें और कुलिकयोगमें उसका जन्म हुआ और महान् शब्द करताहुआ वह वास्तुपुरुष ब्रह्माके समीप गया ॥ १३ ॥ और बोला कि, हे प्रभो ! यह चराचर जगत् तुमने रचा है और विना अपराधके ये देवता मुझे

अत्यन्त पीडा देते हैं ॥ १४ ॥ फिर प्रसन्नहुए जगत्के पितामह ब्रह्मा उसको यह वर देतेभये कि, ग्राम, नगर, दुर्ग (किला) पत्तन (शहर) इनमें ॥ १५ ॥ और प्रसाद (महल), प्याऊ और जलाशय (तालाब), उद्यान (बाग) इनमें जो मनुष्य मोहसे हे प्रभो ! वास्तुपुरुष तुझे न पूजै ॥ १६ ॥ वह दरिद्रता और मृत्युको प्राप्त होता है और उसको पदपद (बातबात) पर विघ्न होताहै और वास्तुपूजाको नहीं करता हुआ मनुष्य तेरा भोजन होताहै ॥ १७ ॥ यह कहकर ब्रह्मज्ञाताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा शीघ्र अन्तर्धान होतेभये. इससे मनुष्य गृहके आरंभमें और

वरं तस्मै ददौ प्रीतो ब्रह्मा लोकपितामहः । ग्रामे वा नगरे वापि दुर्गे वा पत्तनेऽपि वा ॥ १५ ॥ प्रासादे च प्रपायां च जलोद्याने तथैव च । यस्त्वां न पूजयेन्मर्त्यो मोहाद्वास्तु नर प्रभो ॥ १६ ॥ अश्रियं मृत्युमाप्नोति विघ्नस्तस्य पदेपदे । वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति ॥ १७ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे सद्यो देवो ब्रह्मविदां वरः । वास्तुपूजां प्रकुर्वीत गृहारम्भे प्रवेशने ॥ १८ ॥ द्वाराभिवर्तने चैव त्रिविधे च प्रवेशने । प्रतिवर्षं च यज्ञादौ तथा पुत्रस्य जन्मनि ॥१९॥ व्रतबन्धे विवाहे च तथैव च महोत्सवे । जीर्णोद्धारे तथा शल्यन्यासे चैव विशेषतः ॥ २० ॥ वज्राग्निदूषिते भग्ने सर्पचाण्डालवेष्टिते । उलूकवासिते सप्तरात्रौ काकाधिवासिते ॥ २१ ॥

प्रवेशमें वास्तुकी पूजा करै ॥ १८ ॥ और द्वारके बनानेमें और तीन प्रकारके प्रवेशमें और प्रतिवर्ष यज्ञआदिमें और पुत्रके जन्ममें ॥ १९ ॥ यज्ञोपवीत, विवाह और महोत्सवमें और जीर्णके उद्धारमें और विशेषकर शल्यके न्यासमें अर्थात् टूटे फूटेके जोडनेमें ॥ २० ॥ वज्र (बिजली) और अग्निसे दूषितमें और भग्न (फूटा) में सर्प और चाण्डालसे युक्तमें और जिस घरमे उल्लू वसते हों और जिस घरमें सात दिन तक काग वसेहों ॥ २१ ॥ और जिसमें रात्रिमें मृग वसे अथवा गो बिलाव ये अत्यन्त शब्द करैं और जिसमें हाथी घोडे आदि अत्यन्त शब्द करें और जो घर स्त्रियोंके युद्धसे अत्यन्त दूषित हो ॥ २२ ॥ जिस घरमें कबूतरोंके घर हों मधूकादिनिलय अर्थात् मोहार बैठती हो और इस प्रकारके अनेक जो उत्पात हैं उनसे दूषित घरके होनेपर वास्तुशान्तिको करैं ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर भूमिके लक्षणका वर्णन करते हैं। इसके अनन्तर जगतके कल्याणकी कामनासे भूमिको वर्णन करताहूँ कि, ब्राह्मण आदिवर्णोंके घरोंकी क्रमसे श्वेत रक्त पीत और कृष्णवर्णकी भूमि होती है ॥४०॥सुंदर जिसमें गन्ध हो ऐसी श्वेतभूमि ब्राह्मणी और रुधिरके समान जिसमें गन्ध हो ऐसी भूमि क्षत्रिया, सहतके समान जिसमें गंध हो ऐसी भूमि

मृगाधिवासिते रात्रौ गोमार्जाराभिनादिते । वारणाश्वादिविरुते स्त्रीणां युद्धाभिदूषिते ॥ २२ ॥ कपोतकगृहावासे मधूनां निलये तथा । अन्यैश्चैव महोत्पातैर्दूषिते शांतिमाचरेत् ॥ २३ ॥ अथ भूमिलक्षणम् ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया । श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा वर्णानुपूर्व्यतः ॥ २४ ॥ सुगंधा ब्राह्मणी भूमि रक्तगन्धा तु क्षत्रिया । मधुगन्धा भवेद्वैश्या मद्यगंधा च शूद्रिका ॥ २५ ॥ मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषाया क्षत्रिया मता । अम्ला वैश्या भवेद्भूमिस्तिक्ता शूद्रा प्रकीर्तिता ॥ २६ ॥ चतुरस्रां द्विपाकारां सिंहोक्षाश्वेभरूपिणीम् । वृत्तञ्च भद्रपीठञ्च त्रिशूलं लिङ्गसन्निभम् ॥ २७॥

वैश्या और मदिराके समान जिसमें गंध हो ऐसी भूमि शूद्रा होती है ॥२५॥ जो भूमि मधुर हो वह ब्राह्मणी और जो कषैली हो वह क्षत्रिया और जो अम्ल (खट्टी) हो वह वैश्या और जो तिक्त (चरपरी) होती है वह शूद्रा कही है ॥ २६ ॥ जो भूमि चौकोर हो जिसका हाथीके समान आकार हो और जिसका सिंह बैल घोडा हाथीके समान रूप हो और गोल भद्रपीठस्थानकी भूमि त्रिशूल और शिवलिंगके तुल्य हो ॥ २७ ॥

और प्रासादकी ध्वजा और कुंभ आदि जिसमें हों ऐसी भूमि देवताओंको भी दुर्ल्लभ है जो भूमि त्रिकोण हो और जिसका शकट (गाडा) के समान आकार हो और जो सूप और बीजनेके तुल्य हो ॥ २८ ॥ और जो मूरज (मृदंग) बाजेके तुल्य हो और सांप मेंढकके तुल्य जिसका रूप हो और जो गर्दभ और अजगरके समान हो और बगला और चिपिटके समान जिसका रूप हो ॥ २९ ॥ और मुद्गर उल्ल काक इनकी जो तुल्य हो, सूकर उष्ट्र बकरी इनकी जो तुल्य हो, धनुष परशु (कुल्हाड) इनकी समान जिसका रूप हो ॥ ३० ॥ और कृक

प्रासादध्वजकुम्भादिदेवानामपि दुर्लभाम् । त्रिकोणां शकटाकारां शूर्पव्यजनसन्निभाम् ॥ २८ ॥ मुरजाकारसदृशां सर्पमण्डूकरूपिणीम् । खराजगरसङ्काशां बकाच्चिपिटरूपिणीम् ॥ २९ ॥ मुद्गराभां तथोलूककाकसर्प्पनिभां तथा । शूकरोष्ट्राजसदृशां धनुःपरशुरूपिणीम् ॥ ३० ॥ कृकलासशवाकारां दुर्गम्यां च विवर्जयेत् । मनोरमा च या भूमिः परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ ३१ ॥ द्वितीया दृढभूमिश्च निम्ना चोत्तरपूर्वके । गम्भीरा ब्राह्मणी भूमिर्नृपाणां तुङ्गमाश्रिता ॥ ३२ ॥ वैश्यानां समभूमिश्च शूद्राणां विकटा स्मृता । सर्वेषां चैव वर्णानां समभूमिः शुभावहा ॥ ३३ ॥ शुक्लवर्णा च सर्वेषां शुभा भूमिरुदाहृता । कुशकाशयुता ब्राह्मी दूर्वा नृपतिवर्गगा ॥ ३४ ॥

लास (ककेंटा) और शव (मुर्दा) जिसका इनके समान रूप हो और दुःखसे गमन करने योग्य हो इतने प्रकारकी भूमिको वर्ज दे । जो भूमि मनोरम हो उसकी यत्नसे परीक्षा करे ॥ ३१ ॥ और दूसरी वह भूमि दृढ होती है जो उत्तर और पूर्वको नीची हो ब्राह्मणोंके गृहकी भूमि गम्भीर हो और क्षत्रियोंकी ऊंची होती है ॥ ३२ ॥ और वैश्योंकी भूमि सम (न ऊंची न नीची) कही है और शूद्रोंके लिये विकट भूमि श्रेष्ठ कही है--अथवा सब वर्णोंके लिये समान जो भूमि है वह श्रेष्ठ कही है ॥ ३३ ॥ और सफेद वर्णकी भूमि सब वर्णोंको शुभ कही है जिस भूमिमें कुशा और काश हों वह ब्राह्मणोंको और जिसमें दूब हो वह क्षत्रियोंको श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ जिसमें फल पुष्प लता हों वह वैश्योंको और जिसमें तृण हों वह शूद्रोंको श्रेष्ठ है, जो भूमि नदीके घात (कटाव) के आश्रयमें हो और जो बडे बडे पत्थरोंसे युक्त हो ॥ ३५ ॥ और जो पर्वतके अग्रभागसे मिली हो और जिसमें गढे और छिद्र हों जो टेढी और सूपके समानहो. जिसकी कान्ति लकुट (दण्ड) के समानहो और जिस भूमिका निन्दित रूप हो ॥ ३६ ॥ और जो भूमि मूसलके समान और महाघोर हो और जो भल्ल भल्लूक (रीछ) से युक्तहो और

फलपुष्पलता वैश्या शूद्राणां तृणसंयुता । नदीघाताश्रितां तद्वन्महापाषाणसंयुताम् ॥ ३५ ॥ पर्वताग्रेषु संलग्नां गर्तां विवरसंयुताम् । वक्रां सूर्पनिभां तद्वल्लकुटाभां कुरूपिणीम् ॥ ३६ ॥ मुसलाभां महाघोरां वायुना वापि पीडिताम् । भल्लभल्लूकसंयुक्तां मध्ये विकटरूपिणीम् ॥३७॥ श्वशृगालनिभां रूक्षां दन्तकैः परिवारिताम् । चैत्यमश्मशानवल्मीकधूर्तकालयवर्जिताम् ॥ ३८ ॥ चतुष्पथमहावृक्षदेवमन्त्रिनिवासिताम् । दूराश्रितां च भूगर्तयुक्तां चैव विवर्जयेत् ॥ ३९ ॥ इतिभूमिलक्षणम् ॥ अथ फलानि ॥ स्ववर्णगन्धा सुरसा धनधान्यसुखावहा । व्यत्यये व्यत्ययफला अतः कार्यं परीक्षणम् ॥ ४० ॥

जिसका मध्यमें विकट रूप हो ॥ ३७ ॥ और जो कुत्ता गीदडके समानहो और जो रूखी और दांतोंसे युक्त हो और चैत्य श्मशान बाँमी और जंबूकका स्थान इनसे रहित हो ॥ ३८ ॥ और चतुष्पथ (चौराहा) महावृक्ष और देव मंत्री (भूत आदि) इनका जिसमें निवासहो और जो नगरसे दूरहो और जो गढोंमें युक्तहो ऐसी भूमिको वर्जदे ॥ ३९ ॥ इति भूमिलक्षणम् ॥ इसके अनन्तर फलोंका वर्णन करते हैं--जिस भूमिमें अपने वर्णकी गंध होय और जिसका सुंदर रूपहो वह भूमि धन धान्य और सुखके देनेवाली होती है और इससे विपरीत हो तो

फलभी विपरीत होता है इससे भूमिकी परीक्षा करनी ॥ ४० ॥ जो भूमि चौकोरहो वह महान् अन्न आदिको देती है, जिसकी हाथीके समान कान्तिहो वह महान् धन देती है, जो भूमि सिंहके तुल्य है वह गुणवान् पुत्रोंको देती है, जो वृष (बैल) के समान है वह पशुओंकी वृद्धिको देती है ॥ ४१ ॥ जो भूमि वृत्त वा भद्रपीठके तुल्य है वह श्रेष्ठ धनके देनेवाली होती है और जिस भूमिका त्रिशूलके समान आकार है उस भूमिमें शूर वीरोंकी उत्पत्ति होती है और वह धन और सुख देनेवाली होती है ॥ ४२ ॥ और जिसकी कांति लिंगकी समान है वह संन्यासियोंके लिये श्रेष्ठ है और जो प्रासादकी ध्वजाके तुल्य है वह प्रतिष्ठाकी उन्नति करती है और जो कुंभके समान है वह धनकी बढाने

चतुरस्रा महाधन्या द्विपाभा धनदायिनी। सिंहाभा सगुणान्पुत्रान्वृषाभा पशुवृद्धिदा ॥ ४१ ॥ वृत्ता सद्वित्तदा भूमिर्भद्रपीठनिभा तथा । त्रिशूलरूपा वीराणामुत्पत्तिर्धनसौख्यदा ॥ ४२ ॥ लिगाभा लिंगिनां श्रेष्ठा प्रासादध्वजसन्निभा । पदोन्नति प्रकुरुते कुम्भाभा धनवर्द्धिनी ॥४३॥ त्रिकोणा शकटाकारा शूर्प्पव्यजनसन्निभा । क्रमेण सुतसौख्यार्थधर्महानिकरी स्मृता ॥४४॥मुरजा वशहा सर्पमण्डूकाभा भयावहा। नैःस्वं खरानुकारा च मृत्युदाऽजगरान्विता ॥ ४५ ॥ चिपिटा पौरुषैर्हीना मुद्गराभा तथैव च। काकोलूकनिभा तद्वद्दुःखशोकभयप्रदा ॥ ४६ ॥

वाली होती है ॥ ४३ ॥ जो भूमि त्रिकोण और जिसका शकटके समान आकार हो और जो सूप, बीजनेके समान हो वह भूमि पुत्र और सुख और धर्मकी हानिको क्रमसे करती है ॥ ४४ ॥ जो भूमि मुरजके समान है वह वंशका नाश करती है, जो सर्प मेंडकके समान है वह भयको देती है और खरके समान जिसका आकार है वह धनका नाश करती है और अजगरसे युक्त है वह मृत्युको देती है ॥ ४५ ॥ और जो भूमि चिपिटा वा मुद्गरके समान है वह पुरुषोंसे हीन रहती है और जो काक उलूकके तुल्य है वह दुःख शोक भयको देती है ॥ ४६ ॥ और जो सर्पके समान हो वह पुत्र पौत्रोंके नष्ट करनेवाली है. जो वंशकी समान हो वह वंश नष्ट करनेवाली होती है और जो सूकर ऊंट बकरी धनु कुलहाडा इनके सभान आकारवाली हो ॥ ४७ ॥ वह कुचैल मलिन और मूर्ख तथा ब्रह्महत्यारे पुत्रोंको पैदा करती है और जो कर-कैटा और मुर्देकी समान हो वह पुत्रोंकी मृत्यु देनेवाली और धनके नष्ट करनेवाली और पीडाकी दाता होतीहै जिसमें दुःखसे गमन किया जाय ऐसी भूमि और पापियोंके वंशकी प्रजाकी जो भूमि है उसे त्याग दे ॥४८॥मनोरम भूमि पुत्र देनेवाली (और मनोरम भूमि सुख देनेवाली और

सर्पाभा पुत्रपौत्रघ्नी वंशाभा वंशहानिदा । शूकरोष्ट्राजसदृशी धनुःपरशुरूपिणी ॥४७॥ कुचैलान्मलिनान् मूर्खान्ब्रह्मघ्नाञ्जनयेत् सुतान् । कृकलासशवाकारा मृतपुत्रा धनार्तिदा । दुर्गम्या पापिनां वंशप्रजाभूमिं परित्यजेत ॥ ४८ ॥ मनोरमा सुतप्रदा दृढा धनप्रदा मता । सुतार्थदा तथाप्युदक्सुरेशदिक्प्लवा मही ॥ ४९ ॥ गम्भीरशब्दा जनयेत्पुत्रान् गम्भीरनिःस्वनान् । तुङ्गा पदान्वितान्कुर्यात्समा सौभाग्यदायिनी ॥ ५० ॥ विकटा शूद्रजातीनां तथा दुर्गनिवासिनाम् । शुभदा नापरेषां च तस्कराणां शुभावहा ॥ ५१ ॥ स्ववर्णवर्णा स्वान्वर्णान्वर्णानामाधिपत्यदा । शुक्लवर्णा च सर्वेषां पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी ॥ ५२ ॥

दृढ भूमि धन देनेवाली होती है और उत्तर पूर्वको निम्न जो भूमि वह पुत्र और धन देनेवाली होती है ॥ ४९ ॥ जिस भूमिका गम्भीर शब्द हो वह गम्भीर शब्दवाले पुत्रोंको पैदा करती है और ऊँची भूमि पदवीवाले पुत्रोंको पैदा करती है और सम भूमि सौभाग्यको देती है ॥ ५० ॥ और विकट भूमि शूद्रजाती और दुर्गके निवासी और चोरोंको शुभकी दाता होती है अन्य मनुष्योंको नहीं ॥ ५१ ॥ और अपने वर्णका है रूप जिसका ऐसी भूमि वर्णोंको सुख देती है और वर्णोंका अधिपति करती है. शुक्लवर्णकी भूमि सबके पुत्रपौत्र बढानेवाली होती है ॥ ५२ ॥

कुश और काशवाली भूमि ब्रह्मतेजवाले पुत्रोंको पैदा करती है और दूबसे युक्त भूमि शूरवीरोंको जन्माती है और फलसे युक्त भूमि धन और पुत्रोंको देती है ॥ ५३ ॥ और नदीके कटावकी भूमि मूर्ख और सन्तानहीनोंको पैदा करती है। जिस भूमिके मध्यमें पत्थर हों वह दरिद्रियोंको और गढेवाली भूमि झूठे पुत्रोंको पैदा करती है ॥ ५४ ॥ जिस भूमिमें छिद्र हों वह पशु और पुत्र इनको दुःखकी दाता और सुखको नष्ट करनेवाली होती है और टेढी वा अत्यन्त रेतेली भूमि विद्यासे हीन पुत्रोंको पैदा करती है ॥ ५५ ॥ सूप बिलाव लकुट इनके

कुशकाशान्विता ब्रह्मवर्चसान् कुरुते सुतान्। दूर्वान्विता वीरजनिः फलाढ्या धनपुत्रदा ॥ ५३ ॥ नदीघाताश्रिता मूर्खान्मृत वत्सांस्तथैव च । दरिद्रानश्ममध्यस्था गर्तावस्था मृषायुतान् ॥ ५४ ॥ विवरा पशुपुत्रार्त्तिदायिनी सौख्यहारिणी । वक्राति वक्रा जनयेत्पुत्रान्विद्याविहीनकान् ॥ ५५ ॥ शूर्पमार्जारलकुट-निभा भीतिसुतार्तिदा । मुसला मुसलान्पुत्राञ्जनयेद्वंशघातकान् ॥५६॥ घोरा घोरप्रदा वायुपीडिता वायुभीतिदा । भल्लभिल्लकसंयुक्ता पशुहानिप्रदा सदा॥५७॥ विकटा विकटान् पुत्राञ्छ्वशृगाल निभांस्तथा । ददाति रूक्षा परुषा दुर्वचाञ्जनयेत्सुतान् ॥ ५८ ॥ गृहस्वामिभयश्चैत्ये वल्मीके विपदः स्मृताः । धूर्तालयसमीपे तु पुत्रस्य मरणं ध्रुवम् ॥ ५९ ॥

तुल्य भूमि भय, पुत्रोंके दुःखकी दाता होती है और मुसलके समान भूमि वंशके नाशक मूसलचन्द पुत्रोंको पैदा करती है ॥ ५६ ॥ घोर भूमि भयको देनेवाली होती है और वायुसे पीडित भूमि वायुके भयको देती है भल्ल और भीलोंसे युक्त भूमि सदैव पशुओंके हानिको देती है ॥५७॥ विकट कुत्ते और शृगालके समान भूमि विकट पुत्रोंको देती है और रूखी भूमि कठोर और कुत्सित वचनोंके वक्ता पुत्रोंको देती है ॥ ५८ ॥ और चैत्यकी भूमि घरके स्वामीको भय देती है और बँमीकी भूमि विपत्ति देती है और धूर्तोंके स्थानके समीपकी भूमि निश्चयसे पुत्रके मरणको देती है ॥ ५९ ॥ चौराहेमें कीर्तिका नाश और देवमंदिरमें घर बनानेसे उद्वेग होता है और सचिव (मन्त्री) के स्थानमें धनकी हानि और गढेमें गृह बनानेसे अत्यन्त विपत्ति होती है ॥ ६० ॥ और जिस भूमिमें बहुतसे गढे हों उसमें जलकी प्यास और कच्छपके समान भूमिमें धनका नाश होता है । इसके अनन्तर भूमिकी परीक्षाको कहतेहैं–हस्तमात्र भूमिको खोदकर फिर उसी मिट्टीसे भरे. यदि मिट्टी अधिक मध्यम और न्यून हो जाय तो क्रमसे श्रेष्ठ मध्यम अधम फल जानना ॥ ६१ ॥ अथवा हस्तमात्रके गढेको जलसे भरदे और शीघ्र सौ

चतुष्पथे त्वकीर्तिः स्यादुद्वेगो देवसद्मनि । अर्थहानिश्च सचिवे श्वभ्रे विपद उत्कटाः ॥ ६० ॥ गर्तायां तु पिपासा स्यात्कूर्माभे धननाशनम् ॥ अथ भूमिपरीक्षा ॥ निखनेद्धस्तमात्रेण पुनस्तेनैव पूरयेत् । पांसुनाधिकमध्योना श्रेष्ठा मध्याधमाक्रमात् ॥६१॥ जलेनापूरयेच्छ्वभ्रं शीघ्रं गत्वा पदैः शतम् । तथैवागम्य वीक्षेत न हीनसलिला शुभा ॥ अरत्निमात्रे श्वभ्रे वा ह्यनुलिप्ते च सर्वतः ॥ ६२ ॥ घृतमामशरावस्थं कृत्वा वर्तिचतुष्टयम् । ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थं संपूर्णं सर्वदिङ्मुखम् ॥ ६३ ॥ दीप्ता पूर्वादि गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः । हलाकृष्टे तथोद्देशे सर्वबीजानि वापयेत् ॥ ६४ ॥ त्रिपञ्चसप्तरात्रेण न प्ररोहन्ति तान्यपि । उप्त बीजा त्रिरात्रेण सांकुरा शोभना मही ॥ ६५ ॥

१०० पैंड चलकर और उसी प्रकार आनकर देखे यदि जल कम होजाय तो भूमिं शुभ न समझनी अथवा वितस्त भर गढेको चारों तरफ लीपकर ॥ ६२ ॥ कच्चे शरावेमें घीकरके चारों दिशाओंको पृथ्वीकी परीक्षाके लिये चार बत्ती वाले ॥ ६३ ॥ यदि चारों बत्ती जलती रहें तो ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमसे पूर्वआदि दिशाकी भूमिको ग्रहण करें अथवा हलसे जोतेहुए देशमें सब प्रकारके बीजोंको बो दे ॥ ६४ ॥ तीन पांच सात रात्रिमें बीजमें क्रमसे यह फल जानना यदि तीन रातमें बोयेहुए बीजोंमें अंकुर जम आवें तो पृथ्वी उत्तम समझनी ॥ ६५ ॥

पांच रातमें जमैं तो मध्यम और सात रातमें जमैं तो अधम समझनी अथवा उस भूमिमें तिल जौ सरसों इनको बोवे ॥ ६६ ॥ अथवा गृहकी भूमिकी सब दिशाओंमें सब अन्न बोवे जहां वे संपूर्ण बीज न जमें उस भूमिको यत्नसे वर्जदे ॥ ६७ ॥ व्रीहि शाली मूंग गेहूं सरसों तिल जौ ये सात सर्वौषधी और सब बीज कहाते हैं ॥ ६८ ॥ सुवर्ण ताम्बेके रंगके पुष्प गढेके मध्यमें रखेहुए जिसके नामके आ जाय वह भूमि उसके लिये उत्तम कही है ॥ ६९ ॥ भूमिकी धूलिकी रेणुको आकाशमें फेंककर देखे यदि वे अधोभाग मध्यभाग उर्ध्वभागमें

मध्यमा पञ्चरात्रेण सप्तरात्रेण निन्दिता । तिलान्वा वापयेत्तत्र यवांश्चापि च सर्षपान् ॥ ६६ ॥ अथवा सर्वधान्यानि वापयेच्च समन्ततः । यत्र नैव प्ररोहन्ति तां प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥ ६७ ॥ व्रीहयः शालयो मुद्गागोधूमाः सर्षपास्तिलाः । यवाश्चौषधयः सप्त सर्वबीजानि चैव हि ॥ ६८ ॥ सुवर्णताम्रपुष्पाणि श्वभ्रमध्यगतानि च । यस्य नाम्नि समायान्ति सा भूमिस्तस्य शोभना ॥ ६९ ॥ पांसवो रेणुतां नीत्वा निरीक्षेदन्तरिक्षगाः । अधोमध्योर्ध्वगा नृणां गतितुल्यफलप्रदाः ॥ ७० ॥ कृष्टां प्ररूढबीजां गोऽध्युषितां ब्राह्मणैस्तथा । गत्वा महीं गृहपतिः काले सांवत्सरोदिते ॥ ७१ ॥ अथ शकुनानि ॥ पुण्याहशङ्खाध्ययनाम्बुकुम्भा विप्राश्च वीणापटहस्वनानि । पुत्रान्विता स्त्री गुरवो मृदंगा वाद्यानि भेरीनिनदाः प्रशस्ताः ॥ ७२ ॥

प्राप्त होजायँ तो अधोगति मध्यगति ऊर्ध्वगति देनेवाली वह भूमि होती है ॥ ७० ॥ जुती हुई जिस भूमिमें बीज जमें हों अथवा जिसमें गौ और ब्राह्मण वसे हों ऐसी भूमिमें वर्षदिनके कहेहुए मुहूर्तमें घरका स्वामी गमन करे (वसे) ॥ ७१ ॥ इसके अनन्तर शकुनोंको कहते हैं कि, गृहमें प्रवेश होनेके समय पुण्याहवाचन शंख और अध्ययनका शब्द जलका घट ब्राह्मणोंका समुदाय वीणा और ढोलका शब्द पुत्र करके सहित स्त्री गुरु (माता पिता आदि) मृदंग आदि बाजोंका शब्द और भेरीका शब्द ये उत्तम शकुन हैं ॥ ७२ ॥ अच्छे शुक्ल वस्त्रोंको धारण किये हुए कन्या अच्छी रसीली और सुगन्धित मिट्टी पुष्प सुवर्ण चांदी मोती मूंगा और अच्छे उत्तम भक्ष्य पदार्थ ये गृहप्रवेशके समय कल्याणके देनेवाले हैं ॥ ७३ ॥ मृग और अंजन (सुरमा) बँधा हुआ एकपशु पगडी चन्दन दर्पण बीजना और वर्द्धमान (कङ्घी) ये भी कल्याणके करनेवाले हैं ॥ ७४ ॥ मांस दही दुग्ध नृयान (पालकी आदि) छत्र मीन और मनुष्योंका मिथुन (जोडा) ये भी गृहप्रवेशके

कन्या सुधौतांबरवासकारी मृदः सुरस्यास्सुरभीस्सुगन्धाः । पुष्पाणि चामीकररौप्यमुक्ताप्रवालभक्ष्याणि शुभावहानि ॥ ७३ ॥ मृगाराञ्जनबद्धैकपशुश्चोष्णीषचंदनम् । आदर्शव्यजनं वर्द्धमानाश्चापि शुभावहाः ॥ ७४ ॥ आमिषं दधि दुग्धं च नृयानं छत्रमेव च ॥ मीनानि मिथुनं पुंसामायुरारोग्यवृद्धिदम् ॥७५॥ कमलममलं गीतारावः सितोक्षमृगा द्विज गमनसमये पुंसां धन्या गृहाद्यधिवासिते । गजहयसुवासिन्यस्तथा प्रवराङ्गना धनसुखारोग्यायुष्प्रदा गृहकर्मणि ॥७६ ॥ गणिका चांकुशं दीपं मालां बालां सुभूषिताम् । तथा वृष्टिर्गृहारंभे निवेशे समभीष्टदा ॥ ७७ ॥ अथापशकुनानि ॥ दुर्वाणी शत्रुवाणी च मद्यं चर्मास्थिरेव च । तृणं तुषं तथा सर्पचर्म चांगारमेव च ॥ ७८ ॥

समय अवस्था और आरोग्यकी वृद्धि देनेवाले होते हैं ॥ ७५ ॥ निर्मल कमलका पुष्प गीतोंके शब्द सुफेद वृष मृग ब्राह्मण ये यदि घरमें जानेके समय मनुष्यके सम्मुख हों उस मनुष्यको धन्य है अर्थात् ये उत्तमोत्तम फलके देनेवाले हैं । तथा गृहकर्मके करनेमें हाथी घोडा और सौभाग्यवती स्त्री और श्रेष्ठ स्त्री ये धन पुत्र और सुख आरोग्य इनके देनेवाली होती हैं ॥ ७६ ॥ वेश्या अंकुश दीपक माला और वर्षा ये गृहारंभके वा गृहप्रवेशके समय होंय तो ये अच्छी तरह अभीष्ट फलके देनेवाले होते हैं ॥ ७७ ॥ अब खोटे शकुनोंको कहते हैं कि, खोटी वाणी शत्रुकी

वाणी मद्य चर्म हाड पूले आदि तृण तुष (तुस) सांपकी चर्म अंगार ॥ ७८ ॥ कपास लवण कीच नपुंसक तेल औषध विष्ठा काले अन्न रोगी तैल आदिसे अभ्यक्त ॥ ७९ ॥ पतित जटाधारी उन्मत्त शिरमुण्डाये हुए (नंगे शिर) इन्धन विराव (खोटा शब्द) इनको तथा पक्षी मृग मनुष्य ॥ ८० ॥ इनके दो भेदोंको, बलती हुई दग्ध तथा जिनमें धूआँ उठ रहाहो उन दिशाओंमें देखता हुआ पुरुष जो गृहप्रवेश करे तो उसका मरण बुद्धिमान् मनुष्य कहे और उस भूमिमें दुःख कहे ॥८१॥ जिस मनुष्यको अपशशुन हों उस मनुष्यको दुःख होताहै इससे उस घरम

कार्पासलवणं पंकक्लीबतैलौषधानि च । पुरीषं कृष्णधान्यानि व्याधिताभ्यक्तमेव च ॥७९॥ पतितो जटिलोन्मत्तौ मुण्डी नग्न शिरस्तथा । इन्धनानि विरावं च द्विपक्षिमृगमानुषम् ॥ ८० ॥ ज्वालिताशासु दग्धासु धूमितासु च पश्यतः । मरणं निर्दिशेत् प्राज्ञस्तत्र शल्यं विनिर्दिशेत् ॥ ८१ ॥ यस्यापशकुनं तस्य शल्यं तत्र भवेद्गृहे । तत्र वासं न कुर्वीत गृहं चैव न कारयेत् ॥ ८२ ॥ अथ खननविधिः ॥ ज्योतिश्शास्त्रानुसारेण सुदिने शुभवासरे । सुलग्ने सुमुहूर्ते च सुस्नातः प्राङ्मुखो गृही ॥ ८३ ॥ पूजयेद्गणनाथञ्च ग्रहांश्च कलशे स्थितान् । परीक्षिते च भूभागे गोमयेनानुलिप्य च ॥ ८४ ॥ तत्र संपूजयेद्विप्रान्दैवज्ञं च तथैव च । यावत्प्रमाणा भूर्ग्राह्या गृहार्थं तावता गृही ॥ ८५ ॥

वास न करे और न ऐसी भूमिमें घर बनावे ॥ ८२ ॥ अब खननकी विधिको कहते हैं कि, ज्योतिःशास्त्रके अनुसार शोभन दिन और शुभ वार सुन्दर लग्न और अच्छे मुहूर्तमें भलीप्रकार स्नान करके गृहस्थी पुरुष पूर्वको मुखकरके बैठे ॥ ८३ ॥ और फिर गणपति कलशके ऊपर स्थापन किये नवग्रह इनका पूजनकरें, फिर पूर्वोक्त प्रकारसे परीक्षा कीहुई उसी पृथ्वीमें किसी जगह गौके गोबरसे लीपे ॥ ८४ ॥ वहां ब्राह्मण और ज्योतिषीका पूजन करे, जितनी भूमिमें गृह बनाना हो उतनी भूमिको ॥ ८५ ॥ गृही पुरुष पंचगव्य सर्वौषधिका जल पंचामृत इनसे सींचे और फिर शुद्धिकी कामनासे भूसंस्कारोंको करे ॥ ८६ ॥ और उस जगह पूर्व सुवर्ण जिसके गर्भमें और फलोंसे युक्त समस्त धान्यों सहित तथा समस्त गन्ध और सर्वौषधिसहित ॥ ८७ ॥ पुष्पोंसे सुशोभित रक्त जिसका वर्ण वस्त्र जिसके ऊपर लिपटा हो मन्त्रोंसे अभिमंत्रित ऐसे घटका प्रथम स्थापन करके उसमें नवग्रह वरुण ॥ ८८ ॥ पर्वत वन कानन नदी नद कर्णिका और समुद्रोंसहित पृथ्वीका

पञ्चगव्यौषधिजलैस्तथा पञ्चामृतेन च । सेचयेच्छुद्धिकामेन भूसंस्कारांश्च कारयेत् ॥ ८६ ॥ तत्र कुम्भं निवेश्यादौ हेमगर्भं फलैर्युतम् । सर्वधान्ययुतं सर्वगन्धसर्वौषधैर्युतम् ॥ ८७ ॥ पुष्पान्वितं रक्तवर्णं सवस्त्रं मन्त्रमंत्रितम् । तस्मिन्नावाहयेत्खेटान् वरुणप्रमुखांस्तथा ॥ ८८ ॥ तस्मिन्नावाहयेद्भूमिं सशैलवनकाननाम् । नदीनदसमायुक्तां कर्णिकाभिश्च भूषिताम् ॥ ८९ ॥ सागरैर्वेष्टितां तत्र पूजयेत्प्रार्थयेत्ततः । दिक्पालान् कुलदेवीश्च देवान्यक्षांस्तथोरगान् ॥ ९० ॥ बलिं च दत्त्वा विधिवज्जलायेति जपेत्ततः । षड्ऋचं रुद्रजापश्च कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ९१ ॥ तस्मिन्संपूजयेद्वास्तुं प्रार्थयेत्पूजयेत्ततः ॥ ॐ नमो भगवते वास्तु पुरुषाय कपिलाय च ॥ ९२ ॥ पृथ्वीधराय देवाय प्रधानपुरुषाय च । सकलगृहप्रासादपुष्करोद्यानकर्मणि ॥ ९३ ॥

आवाहन करके ॥ ८९ ॥ पूजन करे दिक्पाल कुलदेवी देव यक्ष और उरग इनकी प्रार्थना कर और बलिको देकर 'जलाय' इस मन्त्रको जपै और षडृच और रुद्री इनका विधिपूर्वक जप करे ॥९०॥ ९१ ॥ फिर उसी घटमें वास्तुकी पूजा और प्रार्थना करे 'ॐनमोभगवते वास्तुपुरुषाय कपिलाय ॥ ९२ ॥ पृथ्वीधराय देवाय प्रधानपुरुषाय च' इसप्रकार कहकर नमस्कार करे और कहे कि, समस्त गृह महल पुष्कर उद्यान आदि

कर्म और गृहारंभके प्रथम समयमें सब सिद्धियोंको देनेवाला और सिद्ध देवता मनुष्य ये जिसकी दिन रात सेवा करते हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ऐसे वास्तुपुरुष आप इस समय इस प्रजापति क्षेत्रमें आनकर स्थित हो और यहां आकर पूजाको ग्रहण करो और वरको दो ॥ ९५ ॥ हे वास्तु पुरुष ! हे भूमिरूपी शय्यापर सोनेमें तत्पर ! हे प्रभो ! आपको नमस्कार हैं, मेरे गृहको धन धान्य आदि करके समृद्ध (युक्त) सदैव करो ॥ ९६ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करके फिर भूमिमें पिट्ठी वा चावलोंसे नागरूप धारण किये हुए समस्त वास्तुपुरुषको लिखे ॥ ९७ ॥ और वेदके

गृहारंभप्रथमकाले सर्वसिद्धिप्रदायक । सिद्धदेवमनुष्यैश्च पूज्यमानो दिवानिशम् ॥ ९४ ॥ गृहस्थाने प्रजापतिक्षेत्रेऽस्मिंस्तिष्ठ साम्प्रतम् । इहागच्छ इमां पूजां गृहाणवरदो भव ॥ ९५ ॥ वास्तु पुरुष नमस्तेऽस्तु भूमिशय्यारत प्रभो । मद्गृहं धनधान्या-दिसमृद्धं कुरु सर्वदा ॥ ९६ ॥ इतिप्रार्थ्य ततो भूमौ संलिखेद्वास्तुपूरुषम् । पिष्टातकैस्तण्डुलैर्वा नागरूपधरं विभुम् ॥ ९७ ॥ आवाहयेद्वेदमन्त्रैः पूजयेच्च स्वशक्तितः । आवाहयाम्यहं देवं भूमिस्थं च अधोमुखम् ॥ ९८ ॥ वास्तुनाथं जगत्प्राण पूर्वस्यां प्रथमाश्रितम् । विष्णोरराटेतिमन्त्रेण पूजयेत्सर्पनायकम् ॥ ९९ ॥ नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति वा पूजयेच्च स्वशक्तितः । कुक्षिप्रदेशे निखनेद्वास्तुनागस्य मंत्रतः ॥ १०० ॥

मंत्रोंसे आवाहन करे और अपनी शक्तिके अनुसार पूजन करै कि, भूमिके विषे स्थित और अधोमुख वास्तुका मैं आवाहन करता हूं ॥ ९८ ॥ जो वास्तुके नाथ हैं जो जगत्के प्राण हैं और जो प्रथम पूर्वदिशामें स्थित हैं ऐसे सबके स्वामी वास्तुपुरुषका 'विष्णोरराट'इस मन्त्रसे पूजन करे ॥ ९९ ॥ अथवा अपनी शक्तिके अनुसार 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यो' इस मन्त्रसे पूजन करै और पूर्वोक्त मंत्रको पढकर वास्तुनागकी कुक्षिके स्थान पर खनन करै (खोदे) ॥ १०० ॥ और भाद्रपद आदि तीन तीन मासोंमें क्रमसे पूर्व आदि दिशामें वास्तुपुरुषका मुख होता है जिस दिशाको वास्तुपुरुषका मुख हो उसीमें गृहका मुख शुभ होता है ॥ १०१ ॥ अन्यदिशाको है मुख जिसका ऐसा घर दुःख शोक भयका देने वाला होता है और वृषकी संक्रांतिसे तीन तीन संक्रांतियोंमें वेदीके विषै और सिंहकीसंक्रांतिसे तीन २ संक्रांतियोंमें गृहके विषै ॥ १०२ ॥ और मीनकी संक्रांतिसे तीन २ संक्रांतियोंमें देवमंदिरके विषै और मकरकी संक्रांतिसे तीन २ संक्रांतियोंमें तडागके विषै गिने तो पूर्व

त्रिषु त्रिषु च मासेषु नभस्यादिषु च क्रमात् । यद्दिङ्मुखो वास्तुनरस्तन्मुखं सदनं शुभम् ॥१०१॥ अन्यदिङ्मुखगेहं तु दुःख शोकभयप्रदम् । वृषार्कादित्रिकं वेद्यां सिंहादि गणयेद्गृहे ॥१०२॥ देवालये च मीनादि तडागे मकरादिजम् । पूर्वादिषु शिरः कृत्वा नागश्शेते त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १०३ ॥ भाद्राद्यैर्वामपार्श्वे च तस्य क्रोडे गृहं शुभम् । ईशानतः कालसर्पः संहारेण प्रसर्पति ॥ १०४ ॥ विदिक्षु शेषवास्तोश्च मुखं त्याज्यं चतुर्थकम् । खनेच्च सौरमानेन व्यत्ययं चाशुभं भवेत् ॥ १०५ ॥ चतुस्त्रिकादि शालानामेष दोषो न विद्यते । एकं नागोडुसंशुद्धया मंदिरारंभणं शुभम् ॥ १०६ ॥

आदिदिशाओंमें शिरकरके वास्तुनाग तीन २ संक्रांतियोंमें सोते हैं ॥ १०३ ॥ भाद्रपद आदि तीन २ महिनोंमें वास्तु पुरुषके वामपार्श्वके क्रोड (भाग) में घरका बनाना शुभ होता है और पूर्वोक्त क्रमसे ईशानदिशासे कालसर्प चलता है ॥ १०४ ॥ ईशान आदि विदिशाके मध्यमें वास्तुपुरुषका मुख जो चौथी विदिशामें है वह त्यागने योग्य है और संक्रांतिमें प्रमाणसे सौरमान कर खनन करै (खोदे) और विपरीत रीतिसे करै तो अशुभ होता है ॥ १०५ ॥ जो घर चार या तीन शालावाला बनाया जाय उसमें यह दोष नहीं, वास्तुनाग और नक्षत्रकी

१ वास्तोष्पते प्रतिजानीहीत्यादिमन्त्रेण । २ वास्तुनाथस्य इति पाठान्तरम् ।

भली प्रकार शुद्धिसे एकवार मंदिरका आरंभ करना शुभ होता है ॥ १०६ ॥ अधोमुख नक्षत्र शुभदिन और शुभवासरमें और चन्द्रमा और तारागण इनकी अनुकूलतामें खनन करता शुभ होता है ॥ १०७ ॥ मार्गशिरसे लेकर तीन तीन मासोंमें पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें क्रमसे राहु रहता है ॥ १०८ ॥ राहूकी दिशामें स्तम्भके रखनेसे वंशका नाश और द्वार चढानेसे वह्निका भय और गमन करनेमें कार्यकी हानि और गृहके आरंभमें कुलका क्षय होता है ॥ १०९ ॥ सूर्यवारसे लेकर क्रमसे नैर्ऋति उत्तर अग्नि पश्चिम ईशान दक्षिण वायव्य

ई०	वायु	नै०	ऽग्नि
मा	मा	फा	ज्यै
फु	पौ	चै	आ
क	मा	मै	श्रा

अधोमुखे च नक्षत्रे शुभेऽह्नि शुभवासरे । चन्द्रतारानुकूल्ये च खननारम्भणं शुभम् ॥१०७॥ त्रिषु त्रिषु च मासेषु मार्गशीर्षादिषु क्रमात् । पूर्वदक्षिणतोयेशपौलस्त्याशाक्रमादगुः ॥१०८॥ स्तंभे वंशविनाशः स्याद्द्वारे वह्निभयं भवेत् । गमने कार्यहानिः स्याद्गृहारम्भे कुलक्षयः॥१०९॥रक्षःकुबेराग्निजलेशयाम्यवायव्यकाष्ठासु च सूर्य्यवारात् । वसेदगुश्चाष्टसु दिग्भचक्रे मुखे विवर्ज्यो गमनं गृहं च ॥ ११० ॥ शिरःखने विनाशः स्यान्मातापित्रोश्च पृष्ठके । स्त्रीपुत्रनाशः पुच्छे तु गात्रे पुत्रविनाशनम् ॥ १११ ॥ कुक्षौ सर्वसमृद्धिः स्याद्धनधान्यसुतागमः । सिंहादिषु च मासेषु आग्नेय्यां कुक्षिमाश्रितः ॥ ११२ ॥

इन दिशाओंमें राहु बसता है, इन दिशाओंके चक्रमें मुखके विषे गमन और घरका बनाना उत्तम है ॥ ११० ॥ राहुके शिरके स्थानमें खनन करै तो आत्माका नाश, पृष्ठभागमें खनन करनेसे माता पिताका नाश, पुच्छमें खनन करनेसे स्त्री-पुत्रका नाश, राहुगात्रमें खनन करनेसे पुत्रका नाश होता है ॥ १११ ॥ कुक्षिमें खनन करनेसे सम्पूर्ण ऋद्धि बढती है और धन पुत्रोंका आगमन होता है, सिंह आदि मासोंके विषे अग्निकोणमें रहता है ॥ ११२ ॥ वृश्चिक आदि मासोंमें ईशानमें, कुम्भ आदि मासोंमें वायुकोणमें, वृष आदि मासोंमें नैर्ऋतिकोणमें राहुका मुख होता है और राहुका पुच्छ शोभन नहीं होता ॥ ११३ ॥ कृत्तिकाआदि सात नक्षत्र पूर्वमें, मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिणमें, अनु-राधा आदि सात नक्षत्र पश्चिममें, धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तरमें रहते हैं ॥ ११४ ॥ चन्द्रमा अग्रभागमें होय तो स्वामीको भय होता है, पीठपर चन्द्रमा होय तो कर्मका कर्ता नष्ट होता है, दक्षिणमें होय तो धनको देता है, वामभागमें चन्द्रमा होय तो स्त्री और सुखसंपदा

वृश्चिकादिषु ईशान्यां कुम्भादिषु च वायुदिक् । वृषादिषु च नैर्ऋत्ये मुखं पुच्छं न शोभनम् ॥ ११३ ॥ कृत्तिकाद्यं सप्त पूर्वे मघाद्यं सप्त दक्षिणे । मैत्राद्यं पश्चिमे सप्त धनिष्ठाद्यं तथोत्तरे ॥ ११४ ॥ अग्रे चन्द्रे स्वामिभयं कर्मकर्ता च पृष्ठके । दक्षिणे च धनं दद्युर्वामे स्त्रीसुखसंपदः ॥ ११५ ॥ गृहोपलब्धऋक्षेषु यत्र ऋक्षेषु चन्द्रमाः । शलाकासप्तके देयं कृत्तिकादिक्रमेण च ॥ ११६ ॥ ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च अग्रे पृष्ठे न शस्यते । लग्नादृक्षाद्विचार्योऽसौ चन्द्रः सद्यः फलप्रदः ॥११७॥ गृहचन्द्रे सम्मुखस्थे पृष्ठस्थे न शुभं गृहम् । वामदक्षिणगश्चन्द्रः प्रशस्तो वास्तुकर्मणि ॥ ११८ ॥ लोहदण्डं च सम्पूज्य भैरवञ्च तथैव च तद्दिक्पालं नमस्कृत्य पृथिवीञ्च तथैव च ॥ ११९ ॥

ओंको देता है ॥ ११५ ॥ गृहमें मिलेहुए नक्षत्रोंमें जिन नक्षत्रोंसे चन्द्रमा होय उन सातों नक्षत्रोंमें शलाकासप्तकमें कृत्तिका आदि नक्षत्रोंके क्रमसे रक्खे ॥ ११६ ॥ चन्द्रमा और वास्तुका नक्षत्र अग्र और पृष्ठभागमें श्रेष्ठ नहीं होता, लग्न और नक्षत्रसे विचाराहुआ यह चन्द्रमा शीघ्र फलको देता है ॥ ११७ ॥ गृहका चन्द्रमा पीठपर हो वा सन्मुख होय तो शुभ नहीं होता, वाम और दक्षिण भागका चन्द्रमा वास्तुकर्ममें श्रेष्ठ होता है ॥ ११८ ॥ लोहदण्ड (फावला) और भैरव इनको भली प्रकार पूजकर और दशों दिक्पाल और भूमिको नमस्कार करिके ॥ ११९ ॥

'शिवोनाम' इस मंत्रस लोहदण्डका भली प्रकार पूजन करै और 'निवर्तयामि' इस मंत्रसे पार्वतीके पति महादेवका भलीप्रकार ध्यान करे ॥ १२० ॥ लोहके दण्डको लेकर जोरसे वास्तुपुरुषका खनन करे वह लोहका दण्ड जितना अधिक भूमिमें प्रविष्ट होजाय उतने काल-तक उस गृहकी स्थिती होती है ॥ १२१ ॥ वस्त्रसे ढकेहुए उस लोहदण्डको ब्राह्मणके प्रति निवेदन करे, यदि लोहदण्डकी विषम अंगुली हों तो पुत्रोंको देताहै सम अंगुली हों तो कन्याओंको देता है ॥ १२२ ॥ जिस लोहदण्डको न सम अंगुली हों न विषम हों वह दुःखदायी

शिंवो नामेति मंत्रेण लोहदण्डं प्रपूजयेत् । निर्वर्तयामीत्यृचा वै ध्यायेदीशमुमापतिम् ॥ १२० ॥ बलेन लोहदण्डेन निखने द्वास्तुपूरुषम् । यावत्प्रमाणां भुवमेति तावत्तस्य स्थितिर्भवेत् ॥ १२१ ॥ तं लोहदंडं वस्त्राक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । पुत्राद्यं विषमेऽङ्गुल्ये समेऽङ्गुल्ये तु कन्यकाम् ॥ १२२ ॥ निर्दिशेत्तु तयोर्मध्ये लोहखंडार्त्तिदं तथा । तस्मिन्काले शुभां वाणीं माङ्गल्यं चारुदर्शनम् ॥ १२३ ॥ वेदगीतध्वनिं पुष्पफललाभं तथैव च । वेणुवीणामृदंगानां श्रवणं दर्शनं शुभम् ॥ १२४ ॥ दधिदूर्वाकुशाश्चेति कल्याणद्रव्यदर्शनम् । सुवर्णं रजतं ताम्रं शङ्खमौक्तिकविद्रुमान् ॥ १२५ ॥ मणयो रत्नवैडूर्यस्फाटिकं सुखदा मृदः । गारुडं च फलं पुष्पं मृन्मयं गुल्ममेव च ॥ १२६ ॥

होता है, उस वास्तुपुरुषके खननसमयमें शुभवाणी और मंगल और सुन्दरवस्तु दर्शन ॥ १२३ ॥ वेद और गीतकी ध्वनि, पुष्पफलका लाभ वेणु वीणा मृदंग इनका सुनना और देखना शुभ होता है ॥ १२४ ॥ दही दूब कुशा इन द्रव्योंका दर्शन कल्याणकारी होता है, सुवर्ण चांदी तांबा शंख मोती मूंगा ॥ १२५ ॥ मणि रत्न वैडूर्य स्फटिक सुखकी दाता मिट्टी और गरुडका फल पुष्प और मिट्टीका गुल्म (गुच्छा)॥१२६॥ भक्षण करने योग्य कंदमूल इनका दर्शन होय तो वह भूमि सुख देनेवाली होती है; कंटक सांप खजूर दर्द्रु ॥ १२७ ॥ विच्छू पत्थर वज्र छिद्र लोहका मुद्गर केश अंगार भस्म चर्म आस्थि लवण ॥ १२८ ॥ और रुधिर मज्जा इनका दर्शन होय और जो भूमि रससे युक्त होय इतनी भूमि श्रेष्ठ नहीं होती ॥ इति पण्डितमिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते वास्तुशास्त्रे भूम्यादिपरीक्षालक्षणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ इसके अनंतर स्वप्न आदिकी विधिको कहते हैं, गणेश लोकपाल विशेषकर पृथ्वी और ग्रह इनका कलशके ऊपर मंत्रशास्त्रके अनुसार पूजन

खाद्यानि कन्दमूलानि सा भूमिः सुखदायिनी । कण्टकश्च तथा सर्पं खर्जूरं दर्द्रुमेव च ॥ १२७ ॥ वृश्चिकाश्मकवज्रश्च विवरं लोहमुद्गरम् । केशाङ्गारकभस्माश्च चर्मास्थि लवणं तथा ॥ १२८ ॥ रुधिरश्च तथा मज्जा रसाक्ता ता न शोभनाः ॥ इति वास्तुशास्त्रे भूम्यादिपरीक्षालक्षणवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ अथ स्वप्नविधिः ॥ गणेशं लोकपालांश्च पृथिवीं च विशेषतः । ग्रहांश्च कलशे पूज्य यथामन्त्रं यथोदितम् ॥ १ ॥ यथाकल्पमुपस्कृत्य शुचौ देशे कुशासनः । भूमौ शुद्धेन वस्त्रेण शीर्षे सम्पूजयेच्छ्रियम् ॥ २ ॥ पश्चाच्च भद्रकालीञ्च बलिं दत्त्वा तथैव च । सर्वबीजान्वितान् कुंभान्सर्वरत्नौषधैर्युतान् ॥ ३ ॥ कृत्वोभयतटे रम्यान्नवाञ्छुद्धोदकान्वितान् । कल्पयित्वा सुमनसः कृत्वा स्वस्त्ययनादिकम् ॥ ४ ॥

करके ॥ १ ॥ सामर्थ्यके अनुसार सामग्रियोंका संचय करके शुद्ध देशमें कुशासनपर बैठे और भूमिमें शुद्ध वस्त्रके ऊपर शिरके स्थानमें लक्ष्मीका पूजन भली प्रकार करै ॥ २ ॥ पश्चा भद्रकाली इनको बलि देकर और सब बीज सर्व रतन और सर्वौषधियोंसे युक्त ऐसे घटोंको ॥ ३ ॥ अपने दोनों तटोंमें रक्खे जो रमणीक नवे और शुद्ध जलसे युक्त हों और पुष्पोंका संचय करके स्वतिवाचनको करके ॥ ४ ॥

१ शिवो नामासि स्वधितिस्त पिता नमस्त अस्तु मा मादिंसीः । २ निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥

सावधान हो शुद्ध और सूक्ष्म रेशमके वस्त्रोंको धारणकिये जितेन्द्रियहुआ पुरुष पूर्वाभिमुख होकर 'रुद्र रुद्र' इस प्रकार कहकर हृदयमें रुद्रविधिको जपे ॥ ५ ॥ और छः ऋचा हैं जिसमें ऐसे रुद्रजपको सावधान होकर करावे ॥ ६ ॥ दूसरा प्रकार यह है कि, दुकूल मोती इनको धारण करके मंत्री ज्योतिषी पुरोहित सहित राजा अपने देवताके मन्दिरमें प्रवेश करके वहां दिशाओंके ईश्वरोंकी पूजाका स्थापन करे ॥ ७ ॥ और पुरोहित मन्त्रोंसे उस पूजाको करके उस संस्कृत भूमिमें कुशाओंके मध्यमें कियेहुए अक्षत और सफेद सरसोंको बखेरे ॥ ८ ॥

सावधानः शुचिः सूक्ष्मक्षौमवासा जितेन्द्रियः । प्राङ्मुखो रुद्ररुद्रेति हृदि रुद्रविधिं जपेत् ॥५॥ षडृचं रुद्रजापं च कारयेत्प्रयतः शुचिः ॥ ६ ॥ प्रकारान्तरम्--दुकूलमुक्तामणिभृन्नरेन्द्रः समंत्रिदैवज्ञपुरोहितोऽन्तः । स्वदेवतागारमनुप्रविश्य विवेशयेत्तत्र दिगीश्वरार्चाम् ॥ ७ ॥ अभ्यर्च्य मन्त्रैस्तु पुरोहितस्तामतश्च तस्यां भुवि संस्कृतायाम् । दर्भैश्च कृत्वान्तरमक्षतैस्तान्किरेत्समन्तात्सितसर्षपांश्च ॥ ८॥ ब्राह्मीं सदूर्वामथ नागयूथिं कृत्वोपधानं शिरसि क्षितीशः । पूर्णान्घटान्पुष्पफलान्वितांस्तानाशासु कुर्य्याच्चतुरः क्रमेण ॥ ९ ॥ यंज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवमावर्त्य मंत्रान्प्रयतस्तथैतान् । लघ्वेकभुग्दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत यथोपदेशम् ॥ १० ॥ नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च ॥ वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥ ११ ॥

ब्राह्मी दूब नागयूथी इनको भी बखेरे फिर राजा तकिया लगाकर पुष्प फलोंसहित पूर्ण घटोंको क्रमसे चारों दिशाओंको रखकर शयन करै ॥ ९ ॥ और 'यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम्' इत्यादि मंत्रोंको सावधानीसे पढताहुआ और एकवार लघु भोजन करता और दक्षिणपार्श्वसे सोताहुआ राजा गुरुकी आज्ञाके अनुसार स्वप्नकी परीक्षा करे ॥ १० ॥ हे शंभो त्रिनेत्र रुद्र! वरके दाता वामन विरूप! स्वप्नके अधिपति जो आप हैं उनको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे शूलधारी! हे वृषवाहन! सोतेहुए मुझ सदैव वांछित फलको कहो ॥ १२ ॥ एक वस्त्र धारणकिये कुशाके आसनपर सावधान मनसे सोताहुआ राजा रात्रिके अन्तमें शुभ वा अशुभ स्वप्नको देखता है ॥ १३ ॥ चौकोर समान शुद्ध भूमिको यत्नसे इकसार करके उसमें वृत्तके मध्यकी दिशामें दिशाका साधन करै ॥ १४ ॥ पूर्वकी तरफ

भगवन्देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन । इष्टानि मे समाचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य शाश्वतम् ॥ १२ ॥ एकवस्त्रः कुशास्तीर्णे सुप्तः प्रयतमानसः । निशान्ते पश्यति स्वप्नं शुभं वा यादि वाऽशुभम् ॥ १३ ॥ चतुरस्रां समां शुद्धां भूमिं कृत्वा प्रयत्नतः । तस्मिन् दिक्साधनं कार्यं वृत्तमध्यगते दिशि ॥ १४ ॥ पूर्वप्लवे भवेल्लक्ष्मीराग्नेय्यां शोकमादिशेत् याम्यां याति यमद्वारं नैर्ऋते च महाभयम् ॥ १५ ॥ पश्चिमे कलहं कुर्याद्वायव्यां मृत्युमादिशेत् । उत्तरे वंशवृद्धिः स्यादीशाने रत्नसञ्चयः ॥ १६ ॥ दिङ्मूढे कुलनाशः स्याद्वक्रे दारिद्र्यमादिशेत् ॥ अथ समयशुद्धिः ॥ चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो नवं कारयेद् गृहम् । वैशाखे धनरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युस्तथैव च ॥ १७ ॥

भूमिको निचान होय तो लक्ष्मी, अग्निकोणमें होय तो शोक, दक्षिणदिशामें होय तो मरण, नैर्ऋत दिशामें होय तो महाभय ॥ १५ ॥ पश्चिममें होय तो कलह, वायव्य दिशामें होय तो मृत्युको, उत्तरको होय तो वंशकी वृद्धि, ईशानमें होय तो रत्नोंके संचयको कहे ॥ १६ ॥ जिस भूमिकी निचाई दिङ्मूढ हो अर्थात् किसी दिशाको न होय तो कुलका नाश और जो टेढी होय तो दरिद्रताको कहै ॥ अब समयकी शुद्धिका वर्णन करते हैं--जो मनुष्य चैत्रमें नवीन गृहको बनवाता है वह व्याधिको प्राप्त होता है, वैशाखमें धन और रत्नोंको

१ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्यो तरेकं तन्मे मनशिशवसंकल्पमस्तु ॥

ज्येष्ठमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ आषाढमें भृत्य और रत्नोंको और पशुओंके नाशको प्राप्त होता है, श्रावणमें मित्रके लाभको और भाद्रपदमें हानिको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ आश्विनमासमें युद्धको, कार्तिकमें धन धान्यको, मार्गशिरमें धनकी वृद्धि, पौषमें चोरसे भयको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ माघमासमें अग्निका भय, फाल्गुनमें लक्ष्मी और वंशकी वृद्धिको प्राप्त होता है, मेषके सूर्यमें गृहका स्थापन होय तो शुभदायी होता है ॥२०॥ वृषके सूर्यमें धनकी वृद्धि, मिथुनके सूर्यमें मरण, कर्कके सूर्यमें ग्रह सुखका दाता, सिंहके सूर्यमें भृत्योंकी विशेष

आषाढे भृत्यरत्नानिपशुवर्जमवाप्नुयात् । श्रावणे मित्रलाभन्तु हानिं भाद्रपदे तथा ॥ १८ ॥ युद्धं चैवाश्विने मासि कार्तिक धनधान्यकम् । धनवृद्धिर्मार्गशीर्षे पौषे तस्करतो भयम् ॥ १९ ॥ माघे त्वग्निभयं विन्द्याल्लक्ष्मीवृद्धिश्च फाल्गुने । गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदं भवेत् ॥२०॥ वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं भवेत् । कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्द्धनम् ॥२१॥ कन्यारोगं तुला सौख्यं वृश्चिके धनधान्यकम् । कार्मुके च महाहानिर्मकरे स्याद्धनागमः ॥२२॥ कुम्भे तु रत्नलाभः स्यान्मीने स्वप्नं भयावहम् । चापमी ननृयुक्कन्या मासा दोषावहाः स्मृताः ॥२३॥ ज्येष्ठोर्ज्जमाघसिंहाख्याः सौरमाने तु शोभनाः । मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्विषे॥२४॥उर्ज्जे च गृहनिर्माणं पुत्रपौत्रधनप्रदम् । विषिद्धेष्वपि कालेषु स्वानुकूले शुभे दिने ॥२५॥

कर वृद्धि होती है ॥ २१ ॥ कन्यामें रोग, तुलामें सुख, वृश्चिकमें धन धान्य, धनुषमें महाहानि, मकरमें धनका आगम होता है ॥२२॥कुम्भमें रत्नोंका लाभ और मीनमें गृहका आरंभ करे तो भयानक स्वप्न होते हैं और धन मीन मिथुन कन्याके सूर्य ये मास दोषके दाता कहे हैं ॥२३॥ ज्येष्ठ कार्तिक माघ और सिंह ये संक्रांतिके मानसे शोभन कहे हैं, फाल्गुन माघ वैशाख श्रावण आश्विन ॥ २४ ॥ और कार्तिकमें गृहका बनाना पुत्र पौत्र और धनको देता है. निषिद्धकालोंमें भी अपने अनुकूल शुभ दिनमें ॥ २५ ॥ तृण काष्ठ ग्रहके आरम्भमें मासका दोष नहीं कहा है और पत्थर ईंट आदिके घरोंको निन्दितमासमें न करावे ॥ २६ ॥ निंदित मासमें भी चंद्रमाके माससे ग्रह शुभदायी होता है. गृह गोचर और अष्टकवर्गोंसे वामवेधकी विशेषकर चिन्ता करे ॥ २७ ॥ इस गृहारम्भ कर्ममें भी दशा और अन्तर्दशाकी विशेषकर चिन्ता करे. गुरु और शुक्रके बलमें ब्राह्मण, सूर्य मंगलके बलमें क्षत्रिय ॥ २८ ॥ सोम और बुधके बलमें वैश्य, शनैश्चरके बलमें शूद्रवर्णोंके क्रमसे वर्णके

तृणदारुगृहारंभे मासदोषो न विद्यते । पाषाणेष्टयादिगेहानि निंद्यमासे न कारयत् ॥ २६ ॥ निन्द्यमासेऽपि चन्द्रस्य मासेन शुभदं गृहम् । गोचराष्टकवर्गाभ्यां वामवेधं विचिन्तयेत् ॥ २७ ॥ दशान्तरदशादीनां विचारश्चात्र कर्मणि । गुरुशुक्रबले विप्रान्सूर्यभूमिजयोस्तथा ॥ २८ ॥ शशिसौम्यबले सौरे वर्णानुक्रमपूर्वशः । गृहारम्भं प्रकुर्वीत वर्णनाथबले सति ॥ २९ ॥ सर्वेषामपि वर्णानां सूर्यचन्द्रबलं स्मृतम् । विषमस्थे रवौ स्वामी पीडयते गृहिणी विधौ ॥ ३० ॥ शुक्रेण पीडयते लक्ष्मी जीवेन सुख सम्पदः । बुधेन पुत्रपौत्राश्च भौमेन भ्रातृबान्धवाः ॥ ३१ ॥ सौरेण दासवर्गाश्च पीडयन्ते नात्र संशयः विशेषेण तु सूर्यस्य बले प्रोक्तं गृहं बुधैः ॥ ३२ ॥

नाथका बल होनेपर गृहका आरंभ करे ॥ २९ ॥ सूर्य चन्द्रमाका बल सब वर्णोंको कहा है. विषम राशिका सूर्य होय तो स्वामीको और चंद्रमाका बल होय तो स्त्रीको पीडा होती है ॥ ३० ॥ विषमराशिके शुक्रसे लक्ष्मीका नाश और जीव (बृहस्पति)से सुखकी संपदाओंका नाश, बुधसे पुत्रपौत्रोंका नाश, मंगलसे भाई बाँधवोंको पीडा होती है ॥३१॥ शनैश्चरसे दासवर्गोंको पीडा होती है, इसमें संशय नहीं,विशेषकर सूर्यके

बलमें बुद्धिमानोंने गृहका आरंभ कहाहै॥३२॥ सब वर्णोंको सूर्यकी शुद्धि कही है दशाका स्वामी और वर्णका स्वामी बलहीन होय॥३३॥पीडित नक्षत्रपर सूर्य होय तो कदाचित् गृहका आरंभ न करें. जन्मके सूर्यमें उदरका रोग, दूसरेमें अर्थका नाश ॥ ३४ ॥ तीसरेमें धनका लाभ, चौथेमें भयका दाता होता है, पांचवेमें पुत्रका नाश, छठेमें शत्रुका नाश ॥ ३५ ॥ सातवेमें स्त्रीको कष्ट, आठवेंमें मृत्यु, नववेंमें धर्मका नाश, दशवेंमें कर्मका योग होता है ॥३६॥ ग्यारहवेंमें लक्ष्मी होती है और बारहवेंमें धनका नाश होता है पांचवें दूसरे द्यून (सातवें) और नौमें सूर्य होय

सर्वेषामपि वर्णानां रविशुद्धिर्विधीयते। दशापतौ हीनबले वर्णनाथे तथैव च॥३३॥पीडितर्तक्षगेत सूर्ये न विदध्यात्कदाचन। प्रथमे कोष्ठरोगं च द्वितीये चार्थनाशनम् ॥३४॥ तृतीये धनलाभं च चतुर्थे भयदो रविः। पञ्चमे पुत्रनाशाय शत्रुनाशाय शत्रुगे ॥३५॥ स्त्रीकष्टं सप्तये सूर्ये मृत्युश्चाष्टमगेहगे। नवमे धर्मनाशाय दशमे कर्मसंयुतिः ॥ ३६ ॥ एकादशे भवेल्लक्ष्मीर्द्वादशे च धनक्षयः पुत्रे द्वितीये द्यूने च धर्मे मध्यबलो रविः ॥ ३७ ॥ द्वितीयपुत्राङ्कगतो विश्वाहात्परतः शुभः। अस्तगा नीचराशिस्थाः परराशौ परैर्जिताः ॥ ३८ ॥ वृद्धस्था बालभावस्था वक्रगाश्चातिचारगाः। रिपुदृष्टिवशं याता उल्कापातेन दूषिताः ॥ ३९ ॥ न फलन्ति ग्रहा गेहप्रारंभे तान्प्रपूजयेत्। स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरेण च ॥ ४० ॥

तो मध्यबली होता है ॥ ३७ ॥ दूसरे पांचवें नववें स्थानका सूर्य त्रयोदश (१३) दिनसे परे शुभ कहा है अस्तहुए और नीच राशिके और पर राशिके और अन्य ग्रहोंके जीतेहुए ॥३८॥ वृद्धअवस्थामें और बाल अवस्था स्थितहुए वक्री और अतिचारी और शत्रुकी दृष्टिके वशमें प्राप्त हुए और उल्काके पातसे दूषित जो ग्रह हैं ॥ ३९ ॥ वे गृहके आरंभमें फल नहीं देते इससे उनका गृहके आरंभमें भली प्रकार पूजन करे स्वामीके हस्तप्रमाण वा जेठी पत्नीके हाथसे ॥ ४० ॥ जेठे पुत्रके हाथसे वा कर्मकारके हाथसे, अनामिकापर्यन्त हाथ होता है और वह ऊपरको उठायेहुए मनुष्यका पांचवां भाग होता है ॥ ४१ ॥ कनिष्ठिका वा मध्यमाके प्रमाणसे घरको बनवावे स्वामीके हस्तप्रमाण वा पत्नीके हस्तप्रमाणसे ॥ ४२ ॥ मनुष्योंका घर पुरातन आचार्योंने गर्भमात्र कहा है और स्वामीके हस्तप्रमाणसे सावधानीसे गृहको करे

ज्येष्ठपुत्रकरेणापि कर्मकारकरेण च। अनामिकान्तं हस्तः स्यादूर्ध्वबाहोः शरांशकः ॥ ४१ ॥ कनिष्ठिका मध्यमा वा प्रमाणे नैव कारयेत्। स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरणे च ॥ ४२ ॥ गर्भमात्रं भवेद्गेहं नृणां प्रोक्तं पुरातनैः। स्वामिहस्तप्रमाणेन गृहं कुर्य्यादतन्द्रितः ॥ ४३ ॥ हस्तादिरेणुपर्यन्तमयुग्मं युग्ममेव च। कृष्णपक्षे तिथिं षष्ठीं गण्डान्ते रविसंक्रमे ॥ ४४ ॥ रविभौमदिने विष्ट्यां व्यतीपाते च वैधृतौ। मासदग्धं वारदग्धं तिथिं षष्ठीं विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥ अनुक्तेष्वेव धिष्ण्येषु न कर्त्तव्यं कदाचन। क्रकचं तिथिदग्धञ्च योगानां वज्रसंज्ञकम् ॥ ४६ ॥ उत्पातैर्दूषितमृक्षं निसर्गं दर्शसंज्ञकम् ॥ वज्रव्याघात शूलेषु व्यतिपातातिगण्डयोः॥४७॥विष्कम्भं गण्डपरिघं वर्ज्यं योगेषु कारयेत्। स्वातीमैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वे भगरौहिणे ॥४८॥

॥ ४३ ॥ हस्तसे लेकर रेणुपर्यंत अयुग्म वा युग्मगृहका प्रमाण होता है. कृष्णपक्षकी षष्ठीतिथिको गण्डान्त और सूर्यके संगममें ॥ ४४ ॥ रविवार और भौम भद्रा व्यतीपात वैधृतिमें मासदग्ध वारदग्ध नक्षत्रको और षष्ठीतिथिको विशेषकर वर्जदे ॥ ४५ ॥ और शास्त्रमें नहीं कहे हुए नक्षत्रोंमें कदाचित् गृहको न करे. क्रकच योग दग्धा तिथि वज्रयोग ॥ ४६ ॥ उत्पातोंसे दूषित नक्षत्र अमावास्या वज्र व्याघात शूल व्यती पात अतिगंड ॥ ४७ ॥ विषकम्भ गण्ड परिघ इनसे वर्जित योगोंमें गृहका आरंभ कहा है। स्वाती अनुराधा ज्येष्ठा गान्धर्व (धनिष्ठा) भग

(पूर्वाफा०) रोहिणी ॥ ४८ ॥ इनमें स्तंभकी ऊंचाई आदिको करे और अन्य नक्षत्र आदिको वर्ज दे. गृहके विस्तारसे (चौडाई) गुणित दैर्घ्य (लम्बाई) को आठसे विभक्त करे (भागदे) ॥४९॥ जो शेष बचे वे आय ध्वज आदि होती हैं,उनके ये आठ भेद हैं-ध्वज धूम्र सिंह श्वान गौ गर्दभ हाथी काग ये आठ प्रकारकी ध्वजा आदि होते हैं ॥ ५० ॥ इन आय ध्वजा आदिकोंकी स्थिति होती है अपने स्थानसे पांचवें स्थानमें महान् वैर होता है ॥ ५१ ॥ विषम आय (विस्तार) शुभ कहाहै और सम आय शोक और दुःखका दाता होता है. अपने स्थानके ग्रह बलिष्ठ होते

स्तम्भोच्छ्रायादि कर्तव्यमन्यत्र परिवर्जयेत् । विस्तारेण हतं दैर्घ्यं विभजेदष्टभिस्ततः ॥ ४९ ॥ यच्छेषं संभवेदायो ध्वजाद्यास्ते स्युरष्टधा । ध्वजो धूम्रो हरिः श्वा गौः खरेभौ वायसोऽष्टमः ॥५०॥ पूर्वादिदिक्षु चाष्टानां ध्वजादीनामपि स्थितिः । स्वस्थानात् पञ्चमे स्थाने वैरत्वञ्च महद्भवेत् ॥ ५१ ॥ विषमायः शुभः प्रोक्तः समायः शोकदुःखदः । स्वस्थानगा बलिष्ठाः स्युर्न चान्य स्थानगाः शुभाः ॥ ५२ ॥ ध्वजः सिंहे तौ च गजे ह्येत गवि शुभप्रदाः । वृषो न पूजितो ह्यत्र ध्वजः सर्वत्र पूजितः ॥ ५३ ॥ वृषसिंहगजाश्चैव पुटकर्पटकोटयोः । द्विपः पुनः प्रयोक्तव्यो वापीकूपसरस्सु च ॥ ५४ ॥ मृगेन्द्रमासने दद्याच्छयनेषु गजं पुनः । वृषं भोजनपात्रेषु च्छत्रादिषु पुनर्ध्वजम् ॥ ५५ ॥ अग्निवेश्मसु सर्वेषु गृहे वह्नो (स्तू) पजीविनाम् । धूम्रं नियोजयेत्केचिच्छ्वानं म्लेच्छादिजातिषु ॥ ५६ ॥

हैं और अन्य स्थनके नहीं होते ॥५२॥ ध्वज सिंह और हाथी गौ ये शुभदायी होते हैं वृष (बैल) पूजित नहीं होता और ध्वजा सर्वत्र पूजित होती है ॥ ५३ ॥ वृष सिंह गज पुट ये कर्पट और कोटमें और हाथी वापी कूप और तडागमें करना योग्य हैं ॥ ५४ ॥ सिंहकी ध्वजा आसनमें हाथीकी ध्वजा शयनमें भोजनके पात्रोंमें वृक्षकी और छत्र आदिमें ध्वजाको बनवावे ॥ ५५ ॥ अग्निके सब स्थानोंमें और वस्त्रोंसे जो जीविका करते हैं उनके गृहोंमें धूम्रकी ध्वजाओंको बनवावे और कोई यह कहते हैं कि, म्लेच्छआदि जातियोंमें श्वानकी ध्वजा बनावें ॥ ५६ ॥ वैश्यके गृहमें खरकी ध्वजा श्रेष्ठ है. शेषकुटी आदिमें काककी ध्वजा श्रेष्ठ है और वृष सिंह ध्वज ये प्रासाद पुर और वेश्म इनमें श्रेष्ठ होते हैं ॥ ५७ ॥ गजायमें वा ध्वजायमें हाथियोंका घर शुभ होता है. ध्वजायमें अश्वोंका स्थान और खरायमें और वृषमें ॥ ५८ ॥ गजाय वा वृषध्वजमें पशुओंका स्थान उष्ट्रोंका गृह करवावे तो शुभदायी होता है ॥ ५९ ॥ शय्याके स्थानमें वृषराशि और पीठ

खरो वैश्यगृहे शस्तो ध्वांक्षः शेषकुटीषु च । वृषसिंहध्वजाश्चापि प्रासादपुरवेश्मसु ॥ ५७ ॥ गजाये वा ध्वजाये वा गजानां सदनं शुभम् । अश्वालयं ध्वजाये च खराये वृषभेऽपि वा ॥५८॥ उष्ट्राणां मंदिरं काय गजाये वा वृषध्वजे । पशुसद्म वृषाये च ध्वजाये वा शुभप्रदम् ॥५९॥ शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहः शुभप्रदः । अमत्रच्छत्रवस्त्राणां वृषाये वा ध्वजेऽपि वा ॥६०॥ पादुकोपानहौ कार्यौ सिंहायेऽप्यथवा ध्वजे । स्वर्णरूपादिधातूनामन्येषां तु ध्वजः स्मृतः ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणेषु ध्वजः शस्तः प्रतीच्यां कारयेन्मुखम् । सिंहश्च भूभृतां शस्त उदीच्यां च मुखं शुभम् ॥ ६२ ॥ विशां वृषः प्राग्वदने शूद्राणां दक्षिणे गजः सर्वेषामेव चायानां ध्वजः श्रेष्ठतमो मतः ॥ ६३ ॥

(आसन) के स्थानमें सिंह शुभदायी होते हैं. पात्र छत्र वस्त्र इनका स्थान वृषाय वा ध्वजमें श्रेष्ठ होता है ॥ ६० ॥ पादुका (खडाऊँ) और उपानह ये दोनों वृषाय वा ध्वजमें करने सुवर्ण और रौप्यआदि धातु और अन्य स्थानमें ध्वज श्रेष्ठ कहाहै ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणोंमें ध्वज श्रेष्ठ होता है और ब्राह्मण पश्चिमदिशाको गृहका मुख बनवावे क्षत्रियोंको सिंह श्रेष्ठ कहाहै और उत्तरको गृहका मुख श्रेष्ठ कहा है ॥ ६२ ॥ वैश्योंको वृष श्रेष्ठ कहाहै और पूर्वाभिमुख गृह शुभ होता है और शूद्रोंको गजाय और दक्षिणाभिमुख गृह श्रेष्ठ कहे हैं और सब

आयोंमें गजका आय श्रेष्ठ कहा है ॥ ६३ ॥ क्षत्रिय और वैश्योंको ध्वजा श्रेष्ठ कहा है यह बृहस्पतिने कहा है. धर्मका अभिलाषी ब्राह्मण सिंहायको अवश्य त्याग दे ॥ ६४ ॥ सिंहके आयमें घरमें चण्डता और अल्पसन्तान होती है, ध्वजायमें पूर्णसिद्धि और वृषाय पशुओंकी वृद्धि देता है ॥ ६५ ॥ गजायमें समस्त सम्पदा बढ़ती है. शेष आय शोक और दुःखके दाता होते हैं, गृहके पिण्डको अर्थात् हाथोंकी संख्याको नौ ९ नौ ९, ६, ८, ३, ८, ८, ७ इनसे गुणते और क्रमसे नाग ८, ७, ९, १२, ८, १२, १५, २७, १२० इनका भागदेनेपर ये पदार्थ

ध्वजायः क्षत्रियविशोः प्रशस्तो गुरुरब्रवीत् । सिंहायः सर्वथा त्याज्यो ब्राह्मणेन वृषेप्सुना ॥ ६४ ॥ सिंहाये चण्डता गेहे अल्पापत्यः प्रजायते । ध्वजाये पूर्णसिद्धिः स्याद् वृषायः पशुवृद्धिदः ॥ ६५ ॥ गजाये संपदां वृद्धिः शेषायाः शोकदुःखदाः ॥ पिण्डे नवाङ्काङ्कगजवह्निनागाष्टसागरैः ॥ ६६ ॥ नागैश्च गुणिते भक्ते क्रमादेते पदार्थकाः । नागाद्रिनवसूर्याष्टभूतिथ्यृक्षखभानुभिः ॥ ६७ ॥ आयो वारोंऽशको द्रव्यमृणमृक्षं तिथिर्युतिः । आयुश्चाथ गृहेशर्क्षगृहमैक्यं मृतिप्रदम् ॥ ६८ ॥ संपूर्णाः शुभदा ह्येते ह्यसंपूर्णास्त्वनिष्टदाः । धिष्ण्य च वसुभिर्भक्ते व्ययःस्याच्छेषकाङ्कके ॥ ६९ ॥ धनादिकं गृहे वृद्ध्यै निर्द्धनाय ऋणाधिकम् व्ययान्विते क्षेत्रफले ध्रुवाद्यक्षरसंयुते ॥ ७० ॥

क्रमसे होते हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ आय वार अंशक द्रव्य ऋण नक्षत्र तिथि युति और आयु और गृहके स्वामीका नक्षत्रका और गृह नक्षत्र एक होजाय तो गृह मृत्युका दाता होता है ॥ ६८ ॥ ये संपूर्ण शुभके दाता और जो असंपूर्ण होय तो अनिष्टको देते हैं और गृहमें ८आठका भाग देनेपर जो शेष अंक रहै उसमें व्यय होता है ॥ ६९ ॥ जिस घरमें धन अधिक हो उसमें वृद्धि और जिसमें ऋण अधिक हो उसमें निर्धनता होती है व्ययसे युक्त क्षेत्रके फलमें ध्रुवआदि अक्षरोंको मिलाकर ॥ ७० ॥ और तीनका भाग देकर शेषमें क्रमसे इन्द्र यम भूमिका स्वामी इनके अंशक होते हैं. इंद्रके अंशमें पदवीकी वृद्धि और महान् सुख होता है ॥ ७१ ॥ यमके अंशमें निश्चयसे मरण और अनेक प्रकारके रोग शोक होते हैं, राजाके अंशमें धन धान्यकी प्राप्ति और पुत्रोंकी वृद्धि होती है ॥ ७२ ॥ और राशिकूट आदि संपूर्णकी चिन्ताभी गृहके आरम्भमें करे, दूसरी और बारहवीं राशि गृह और गृहके स्वामीके होय तो निश्चयसे दरिद्रता होती है और त्रिकोण (९ । ५) में सन्तानका

त्रिभिः शेषे क्रमादिन्द्रयमभूम्यधिपांशकाः । इंद्रांशे पदवीवृद्धिर्महत्सौख्यं प्रजायते ॥ ७१ ॥ यमांशे मरणं नूनं रोगशोकमनेकधा । राज शे धनधान्याप्तिः पुत्रवृद्धिश्च जायते ॥ ७२ ॥ राशिकूटादिकं सर्वं दंपत्योरिव चिन्तयेत् । नैःस्वं द्विर्द्वादशे नूनं त्रिकोणे ह्यनपत्यता ॥ ७३ ॥ षडष्टके नैधन स्याद्व्यत्ययेन धनं स्मृतम् । द्यूनस्थिते पुत्रलाभं स्त्रीलाभं च तथैव च ॥ ७४ ॥ जन्मततीये च तथा धनधान्यागमो भवेत् । दशमैकादशे चन्द्रो धनायुर्बहुपुत्रदः ॥ ७५ ॥ चतुर्थाष्टमरिष्फस्थो मृत्युपुत्रविनाशदः । त्रिकोणे त्वनपत्यं स्यात्केचिद्बन्धुगृहे शुभम् ॥७६ ॥ वदन्ति चन्द्रं मुनयो नैतन्मम मतं स्मृतम् । अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम् ॥ ७७ ॥

अभाव होता है ॥ ७३ ॥ षडष्टक (६ । ८) में धनका अभाव और विपरीत (८ । ६) में धन कहा है और द्यून ७ में पुत्र स्त्रीका लाभ होता है ॥ ७४ ॥ और जन्मसे तीसरी राशिमें धन धान्यका आगमन होता है, दशवां और ग्यारहवां चन्द्रमा धन आयु और बहुत पुत्रोंको देता है ॥ ७५ ॥ चौथा आठवां बारहवां चन्द्रमा मृत्यु और पुत्रोंके नाशको देता है और त्रिकोण (९ । ५) में सन्तानका अभाव और कोई आचार्य त्रिकोणको बन्धु गृहमें शुभ ॥७६॥ चन्द्रमाको मुनिजन कहते हैं यह मेरा मत नहीं है । अश्विनीसे आदि लेकर तीन नक्षत्र मेषमें और

मघाआदि तीन सिंहमें कहे हैं ॥ ७७ ॥ मूलआदि तीन धनमें कहे हैं और शेषराशि दो दो नक्षत्रोंमें समझनी, आदित्य और मंगलवार और इनकी राशियोंके अंश सदैव अग्निके भयको देते हैं ॥ ७८ ॥ और शेष ग्रहोंके वार अंश कर्ताकी इष्टसिद्धिको देते हैं गृहका आगत नक्षत्र यदि राशिरूपहो ॥ ७९ ॥ तो उसके नवांशके वशसे सदैव गृहको जानैं विपत्तारा विपत्तिको देती है, प्रत्यरि प्रतिकूल (उलटा) फलको देती है ॥८०॥ निधननामकी तारा सर्वथा मरणको देती है. वर्जने योग्य इन ताराओंमें गृहनिर्माण अशुभदायी होता है ॥ ८१ ॥ प्रत्यरितारा महान्

मूलादित्रितयश्चापे शेषराशिद्विके द्विके । सूर्यारवारराश्यंशाः सदा वह्निभयप्रदाः ॥ ७८ ॥ शेषग्रहाणां वारांशाः कर्तुरिष्टार्थ सिद्धिदाः । गृहस्यागतभं यत्तु तद्द्विराश्यात्मकं यदि ॥ ७९ ॥ तन्नवांशवशात्तत्र ज्ञातव्यं सर्वदा गृहम् । विपत्प्रदा विपत्तारा प्रत्यरिः प्रतिकूलदा ॥ ८० ॥ निधनाख्या तु या तारा सर्वथा निधनप्रदा । विवर्ज्यतारकास्वेतन्निर्माणमशुभप्रदम् ॥ ८१ ॥ प्रत्यरिस्तूग्रभयदा त्रिविंशर्क्षे तु मृत्युदा । निधनाख्या तु या तारा स्त्रीसुतार्तिप्रदायिनी ॥ ८२ ॥ कुर्वन्नज्ञानतो मोहाद्दुःखभाग् व्याधिभाग्भवेत् । तिथौ रिक्ते दरिद्रत्वं दर्शे गर्भनिपातनम् ॥ ८३ ॥ कुयोगे धनधान्यादिनाशः पातश्च मृत्युदः । वैधृतिः सर्व नाशाय नक्षत्रैक्ये तथैव च ॥ ८४ ॥

भयको देती है और तेईसवें नक्षत्रमें होय तो मृत्युको देती है. निधननामकी जो तारा है वह स्त्री और पुत्रोंको दुःखदायी होती है ॥ ८२ ॥ अज्ञान वा मोहसे इनमें गृहको बनावे तो दुःख और व्याधिका भोगी होता है. रिक्तातिथिमें दरिद्रता और अमावास्यामें गर्भका पात होता है ॥ ८३ ॥ कुयोगमें धन धान्य आदिका नाश और पात मृत्युको देता है. वैधृति और नक्षत्रकी एकतामें सबका नाश होता है ॥ ८४ ॥

अवस्थासे हीन घर होय तो स्वामी दुर्भागी होता है नाडीका वेध अशुभको देता है. तारा रोग और भयको देती है ॥ ८५ ॥ गणके वरमें पुत्र और धनकी हानि होती है और योनिमें कलह और महादुःख होता है और यमके अंशमें दोनोंका मरण होता है ॥ ८६ ॥ नक्षत्रकी एकतामें स्वामीकी मृत्यु और वर्णकी एकतामें वंशका नाश होता है. पापग्रहके वारमें दरिद्रता और. बालकोंका मरण होता है ॥ ८७ ॥ कोई आचार्य शनैश्चरकी प्रशंसा करते हैं परन्तु शनैश्चरमें चौरोंका भय होता है, हे वरानने ! (पार्वती) स्वामीके हस्तप्रमाणसे गृहको बनावे

आयुर्विहीने गेहे तु दुर्भगत्वं प्रजायते । नाडीवेधो न शुभदस्तारा रोगभयप्रदा ॥ ८५ ॥ गणवैरे पुत्रहानिर्धनहानिस्तथैव च । योनौ कलिर्महादुःख यमांशे मरणद्वयम् ॥ ८६ ॥ नक्षत्रैक्ये स्वामिमृत्युर्वर्णे वंशविनाशनम् । पापवारे दरिद्रत्वं शिशूनां मरणं तथा ॥८७॥ केचिच्छनिं प्रशंसन्ति चौरभीतिस्तु जायते । स्वामिहस्तप्रमाणेन गृहं कुर्याद्वरानने । रेखादिहस्तपर्यंतमोजसंख्या प्रशस्यते ॥ ८८ ॥ करमानादधिकं चेत्तदाङ्गुलानि प्रदाय हित्वा च । क्षेत्रफलं गणितेन प्रसाधयेदिष्टसिद्ध्यर्थम् ॥८९॥ करमानादधिकं चेदङ्गुलानि प्रसाधयेत् । दीर्घे देयानि वा नूनं न विस्तीर्णे कदाचन ॥ ९० ॥ अङ्गुलैः कल्पिता नाभिर्वर्गीकृत्य पदं भवेत् । प्राप्तहस्तादिमानं स्यात्कुर्यादापतनं ततः ॥ ९१ ॥

रेखासे लेकर हस्तपर्यन्त विषम संख्या श्रेष्ठ कही है ॥ ८८ ॥ हाथके प्रमाणसे अधिक होय तो अंगुलोंको लेकर वा छोडकर गणितसे क्षेत्र फलको इष्ट सिद्धिके लिये सिद्ध करै ॥ ८९ ॥ हाथके मानसे अधिक होय तो अंगुलिको सिद्ध करै और गृहके दीर्घ (लंबाइ) में अंगुलोंको दे और विस्तारमें कदाचित न दे ॥ ९० ॥ अंगुलोंसे कल्पना की जो नाभि है उसका वर्ग करनेसे पद होता है इस प्रकार प्राप्त हुआ जो

हस्तआदिका मान उसको करके फिर गृहको बनवावे ॥ ९१ ॥ ग्यारह हाथसे आगे बत्तीस हाथ पर्यन्त आयादिककी चिन्ता करे और उसके ऊपर न करे ॥ ९२ ॥ आय व्यय और मासकी शुद्धि इनकी चिन्ता जीर्ण गृहमें न करै और गृहके मध्यमें विधिपूर्वक शिलाका स्थापन करै ॥ ९३ ॥ ईशान दिशामें देवतागृह, पूर्वमें स्नानका मंदिर, अग्निकोणमें पाकका स्थान और उत्तरमें भाण्डारोंका स्थान बनवावे ॥ ९४ ॥ अग्नि और पूर्वके मध्यमें दधि मथनेका मंदिर, अग्नि और दक्षिण दिशाके मध्यमें घृतका घर श्रेष्ठ कहा है ॥ ९५ ॥ दक्षिण और नैर्ऋतके मध्यमें

एकादशकरादूर्ध्वं यावद्द्वात्रिंशद्धस्तकम् । तावदायादिकं चिंत्यं तदूर्ध्वं नैव चिन्तयेत् ॥ ९२ ॥ आयव्ययौ मासशुद्धिं न जीर्णे चिन्तयद्गृहे । शिलान्यासं प्रकुर्वीत मध्ये तस्य विधानतः ॥ ९३ ॥ ईशान्यां देवतागेहं पूर्वस्यां स्नानमंदिरम् । आग्नेय्यां पाकसदनं भण्डारागारमुत्तरे ॥ ९४ ॥ आग्नेयपूर्वयोर्मध्ये दधिमन्थनमदिरम् । अग्निप्रेतेशयोर्मध्ये आज्यगेहं प्रशस्यते ॥९५॥ याम्यनैर्ऋत्ययोर्मध्ये पुरीषत्यागमन्दिरम् । नैर्ऋत्याम्बुपयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य मंदिरम् ॥९६॥ पश्चिमानिलयोर्मध्ये रोदनार्थं गृहं स्मृतम् । वायव्योत्तरयोर्मध्ये रतिगेहं प्रशस्यते ॥ ९७ ॥ उत्तरेशानयोर्मध्ये औषधार्थं तु कारयत् । नैर्ऋत्यां सूतिकागेहं नृपाणां भूतिमिच्छताम् ॥ ९८ ॥ आसन्नप्रसवे मासि कुर्याच्चैव विशेषतः । तद्वत्प्रसवकाले स्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥९९॥

मलके त्यागनेका स्थान और नैर्ऋत पश्चिमके मध्यमें विद्याके अभ्यासका मन्दिर बनवावे ॥ ९६ ॥ पश्चिम और वायुकोणके मध्यमें रोदनका घर कहा है, वायु और उत्तरके मध्यमें रति (भोग) का घर श्रेष्ठ कहा है ॥ ९७ ॥ उत्तर और ईशानके मध्यमें औषधका स्थान बनवावे और भूतिके अभिलाषी राजाओंको सूतिकाका घर नैर्ऋत दिशामें कहा है ॥ ९८ ॥ वह विशेष कर प्रसव कालके समीपमासमें करना और तैसेही प्रसवकालमें बनवावे यह शास्त्रोंका निश्चय है ॥ ९९ ॥ नवम मासके आनेपर पूर्वपक्षके शुभ दिनमें प्रसूतिके प्रारंभ समयमें गृहका आरंभ श्रेष्ठ कहा है ॥ १०० ॥ गुरुके नीचे लघुकी स्थापना करै और उसके आगे ऊर्ध्वके समान स्थापना करै, गुरुओंसे पश्चिम और पूर्वमें सब लघुओंकी अवधिकी विधि होती है ॥ १०१ ॥ लघुस्थानमें अलिंद (देहली) को रक्खे और गुरुस्थानमें न रक्खे, गृहके द्वारसे प्रदक्षिण क्रमसे जो अलिंद हैं उनके सोलह १६ प्रकार होते हैं ॥ १०२ ॥ पहिला गृह ध्रुवसंज्ञक धन धान्यका और सुखका दाता होता है. दूसरा

मासे तु नवमे प्राप्ते पूर्वपक्षे शुभे दिने । प्रसूतिसम्भवे काले गृहारम्भणमिष्यते ॥ १०० ॥ गुरोरधो लघुः स्थाप्यः पुरस्तादूर्ध्व वन्यसेत् । गुरुभिः पश्चिमे पूर्वे सर्वलघ्ववधिर्विधिः ॥१०१॥ स्यादलिन्दो लघुस्थाने नालिंदं गुरुमाश्रितम् । प्रदक्षिणैर्गृहद्वारादा लिंदैर्दशषड्विधा ॥१०२॥ ध्रुवसंज्ञं गृहं त्वाद्यं धनधान्यसुखप्रदम् । धान्यं धान्यप्रदं नृणां जयं स्याद्विजयप्रदम् ॥१०३॥ नन्दं स्त्रीहानिदं नूनं खरं सम्पद्विनाशनम् । पुत्रपौत्रप्रदं कांतं श्रीपदं स्यान्मनोरमम् ॥ १०४ ॥ सुवक्रं भोगदं नूनं दुर्मुखं विमुख प्रदम् । सर्वदुःखप्रदं क्रूरं विपुलं शत्रुभीतिदम् ॥ १०५ ॥ धनदं धनदं गेहं क्षयं सर्वक्षयावहम् । आक्रन्दं शोकजनकं विपुलं श्रीयशःप्रदम् ॥ १०६ ॥

धान्यनामक गृह मनुष्योंको धान्य देता है और तीसरा जय विजयको देता है ॥ १०३ ॥ और चौथा नन्द स्त्रियोंकी हानिको निश्चयसे देता है और खर सम्पत्तिका नाश करता है कान्त गृह पुत्र पौत्रोंको देता है मनोरम गृह लक्ष्मीको देता है ॥ १०४ ॥ सुवक्र गृह निश्चयसे भोग देता है, दुर्मुख गृह विमुखताको देता है, क्रूरगृह सब दुःखोंको देता है, विपुल गृह सब शत्रुओंकी भीतिको देता है ॥ १०५ ॥ धनद

गृह धनको देता है, क्षय सबके क्षयको देता है, आक्रंद शोकको पैदा करता है, विपुल श्री और यशको देता है ॥ १०६ ॥ विपुल नामके सदृश फलको देता है और धनदगृहको विजय कहते हैं ॥ १०७ ॥ प्रदक्षिणक्रमसे सप्त मुखसे लघुस्थानमें रखेहुए अलिंदको जाने गृहके पूर्व आदि दिशाओंमें रखेहुए अलिन्दोंमें क्रमसे सोलह भेद होते हैं ॥ १०८ ॥ जिसमें शुभ अलिंद न हो वह गृह कापाल नामका होता है, विस्तारसे दूना गृह गृह और स्वामी दोनोंको नष्ट करता है ॥ १०९ ॥ उस गृहको निरर्थक कहत हैं और उसमें राजासे

विपुलं नाम सदृशं धनदं विजयाभिधम् ॥ १०७ ॥ प्रदक्षिणे सप्तमुखादलिन्दं विद्याल्लघुस्थानसमाश्रितं च । गृहस्य पूर्वादिगतेष्वलिन्देष्वेवं भवेयुर्दश षट च भेदाः ॥ १०८ ॥ भवेयुर्न शुभालिन्दं गृहं कापालसंज्ञकम् । विस्ताराद्द्विगुणं गेहं गृहस्वामिविनाशनम् ॥ १०९ निरर्थकं तद्गृहं स्याद्भयं वा राजसंभवम् । केचिदलिन्दकं द्वारं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ११० ॥ केचिद-लिन्दं शालां च केचिच्चालिन्दकश्च तत् । गृहबाह्यस्थिताः काष्ठा गृहमत्यन्तनिर्गताः ॥ १११ ॥ काष्ठा काष्ठस्य यद्गेहं तद्वाचाऽलिन्दसंज्ञकम् । गृहाद्बहिश्च ये काष्ठा गृहस्यान्तर्गताश्च ये ॥ ११२ ॥ तेषां कोष्ठीकृतं तिर्यग्गेहश्चालिन्दसंज्ञकम् । स्तम्भ नं गृहाद्बाह्यान्निर्गतं काष्ठनिर्मितम् ॥ ११३ ॥

भय होता है और कोई बुद्धिमाम् मनुष्य अलिन्दसे रहित द्वारको कहते हैं ॥ ११० ॥ कोई अलिंद और शालाको और कोई अलिंदकको कहत हैं, घरसे बाहिरकी जो दिशा है और जो गृहसे अत्यन्त निकसी हुई ॥ १११ ॥ काष्ठा हैं वे काष्ठका जो घर वह अलिंदसंज्ञक कहलाता है, गृहके बाहिरकी जो दिशा और गृहके भीतरकी जो दिशा हैं उनका ॥ ११२ ॥ कोष्ठरूपसे बनाया जो तिरछा घर उसकोअलिंद कहते हैं वह स्तंभसे हीन घरस बाहिरको निकसा हुआ काष्ठका होता है ॥ ११३ ॥ गृहके मध्यसे ऊर्ध्वभागमें गयाहुआ जो घर है कोई उसे अलिन्द कहते हैं. जिस भागमें अलिन्द हो उसीमें द्वारका मार्ग श्रेष्ठ कहा है ॥ ११४ ॥ अलिंद और द्वारसे हीन गृह कोटीके समान कहा है जहां आलिन्द हो वहीं शाला और द्वार श्रेष्ठ कहा है ॥ ११५ ॥ शाला आलिन्द द्वार इनसे हीन गृहको बुद्धिमान् मनुष्य न बनवावे, जो वास्तुका विस्तारहो उतनीही ऊँचाई शुभ कही है ॥ ११६ ॥ विस्तारसे दूना शुकशालनामक गृह बनवाना, दश और चार शालाके

मध्यादूर्ध्वगतं गेहं तच्च वालिन्दसंज्ञकम् । यत्रालिन्दश्च तत्रैव द्वारमार्गं प्रशस्यते ॥ ११४ ॥ अलिन्दं द्वारहीनंश्च गृहकोटीसमं स्मृतम् । यत्रालिन्दं तत्र शाला तत्र द्वारे च शोभनम् ॥ ११५ ॥ शालालिन्दद्वारहीनं न गृहं कारयेद्बुधः । यद्वास्तु च विस्तारः सैवोच्छ्रायः शुभः स्मृतः ॥ ११६ ॥ शुकशालो गृहः कार्यो विस्ताराद्द्विगुणो दश । चतुःशालगृहस्यैवमुच्छ्रा व्याससम्मितः ॥ ११७ ॥ विस्ताराद्द्विगुणं दैर्घ्यमेकशाले प्रशस्यते । विस्तीर्णं यद्भवेद्गेहं तदूर्ध्वं त्वेकशालकम् ॥ ११८ ॥ द्विशाले द्विगुणं प्रोक्तं त्रिशाले त्रिगुणं तथा । चतुश्शाले पञ्चगुणं तदूर्ध्वं नैव कारयेत् ॥ ११९ ॥ शिखा चैव त्रिभागं तु गृहं चोत्तमसंज्ञकम् । एकं नागोडुसंशुद्ध्या द्वे च दक्षिणपश्चिमा ॥ १२० ॥

गृहकी ऊँचाई व्यासके समान होती है ॥ ११७ ॥ विस्तारसे दूनी लंबाई एकशाला (एकमजला) गृहकी होती है जो गृह विस्तीर्ण होता है वह ऊँचाईमें एक शालाका होता है ॥ ११८ ॥ द्विशालमें दूना और त्रिशालमें त्रिगुणा कहा है और चतुःशालमें पंचगुणा जानना उससे ऊपर गृहको न बनवावे ॥ ११९ ॥ जिसकी शिखा गृहके त्रिभागकी हो वह उत्तमसंज्ञक होता है यदि एकशाला गृहकी आजाय तब आठ और सताईसकी संशुद्धि (भाग) से सौम्यवर्जित अर्थात् उत्तरशालासे हीन करना और यदि दोशालाओंसे युक्त घर बनाना होय

तो दक्षिण और पश्चिममें शाला बनानी ॥ १२० ॥ तीन शालाका घर बनाना होय तो पूर्वकी वा उत्तरकी शालासे रहित घर बनाना और शालाका विभागभी इसी पूर्वोक्त विधिसे करना पूर्वमें ऊपर तीन भागोंको छोडकर और पश्चिममें दो भागोंको छोडकर ॥ १२१ ॥ जो मध्य भाग होता है वह नाभि जाननी यह पराशर ऋषिने कहा है। उसमें शालाको बनवावे। इसी प्रकार पूर्व आदि चारों दिशाओंमें एक आदि ध्रुव वाममार्गसे होते हैं ॥ १२२ ॥ विस्तार और दैर्घ्य अर्थात् चौडाई और लंबाईके एक एक भागको मिलाकर वायव्य आदि कोणोंमें विस्तार

त्रिशाले पूर्वतो हीनं कार्यं वा सौम्यवर्जितम्। ऊर्ध्वभागत्रयं त्यक्त्वा ह्यधोभागद्वयं तथा। १२१ मध्ये नाभिं विजानीयादिति प्राह पराशरः। पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वाममेकादयो ध्रुवाः ॥ १२२ ॥ विस्तारस्याथ दैर्घ्यस्य तथैवैकैकसंयुतम्। वामं वातादि कोणेषु ध्रुवं विस्तारदैर्घ्ययोः ॥ १२३ ॥ एकाद्याः स्वेच्छया सर्वे कार्या वेदसमन्विताः। अनेनैव प्रकारेण क्रियमाणे च वास्तुनि ॥ १२४ ॥ आयव्ययादिसंशुद्धिं चिन्तयन्ति न पूर्वजाः * ॥ १२५ ॥

और दैर्घ्यका ध्रुव होता है, वह ध्रुव उत्तर शालासे हीन घरमें न देना ॥ १२३ ॥ एक शालावाले गृहसे लेकर चार शालापर्यन्त गृह बनवाने इसी प्रकारसे बनवाने योग्य शालासे युक्त गृहमें ॥ १२४ ॥ पहिले आचार्य आय व्यय आदिकी जो शुद्धि उसका विचार नहीं करते अर्थात् एकशालायुक्त गृहमें आय व्यय आदिका विचार करना और दो शालासे युक्तमें नहीं करना, क्योंकि निर्गम और आलिंद आदि जो गृहोंकी चारों दिशाओंमें हैं वे गृहोंके चारोंदिशाओंमें जो होते हैं वे सब दो शाला आदिके घरमें नहीं मानने और न वास्तुशालाआदिका विचार करना ॥ १२५ ॥ ब्राह्मणोंका गृह चार शालाओंका, क्षत्रियोंका तीन शालाओंका वैश्योंको दो शालाकोंका और शूद्रोंका एक शालाका होता है ॥ १२६ ॥ और सब वर्णोंका एक एक शालाका घर श्रेष्ठ कहा है १।२।३।४। शालाके ॥१२७॥ गृहमें जिस प्रकार आलिंद आदि बनवावे उसी प्रका-

ब्राह्मणानां चतुःशालं क्षत्रियाणां त्रिशालकम्। द्विशालं स्यात्तु वैश्यानां शूद्राणामेकशालकम् ॥ १२६ सर्वेषामेव वर्णाना मेकशालं प्रशस्यते। एकशालं द्विशालं वा त्रिशालं तुर्यशालकम् ॥ १२७ ॥ यथालिङ्गं गृहं कुर्यात्ताहक्शाला प्रशस्यते। शालादिभिन्नं कर्त्तव्यं न कुर्यात्तूङ्गनिम्नकम् ॥१२८॥ समां शालां ततः कुर्यात्समं प्राकारमेव च। कुलीरवृश्चिकौ मीन उत्तरद्वार संस्थिताः ॥ १२९ ॥ मेषसिंहधनुर्द्वाराः पूर्वद्वारेषु संस्थिताः। वृषभ मकरं कन्या याम्यद्वारे समाश्रिताः ॥ १३० ॥ तुलाकुम्भौ च मिथुनं पश्चिमद्वारमाश्रिताः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव यथाक्रमम् ॥ १३१ ॥ यद्दिशाराशयः प्रोक्तास्तस्मिन् शाला प्रशस्यते। अथवा पूर्वभागे तु ब्राह्मणा उत्तरे नृपाः ॥ १३२ ॥

रकी शाला श्रेष्ठ होती है और केवल शाला आदि युक्त गृहको और कहीं ऊँच और कहीं नीचे गृहको न बनवावे ॥ १२८ ॥ तिससे समान शालाको और समान (बराबर) परकोटेको बनवावे. कर्क वृश्चिक मीन ये उत्तरके द्वारमें स्थित होते हैं ॥ १२९ ॥ मेष सिंह धन ये पूर्वके द्वारमें स्थित होत हैं. वृष मकर कन्या ये दक्षिणके द्वारमें स्थित होते हैं ॥ १३० ॥ तुला कुंभ मिथुन ये पश्चिमके द्वारमें स्थित होते हैं और इसी क्रमसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंका वास होता है ॥ १३१ ॥ जिस दिशाकी राशि कही है उसी दिशामें शाला श्रेष्ठ होती है। अथवा

* अस्यार्थः-यदि वास्तुनि एकमेव गृहं क्रियते तदा नागाङ्कसंशुद्धया सौम्यवर्जितमुत्तरशालाहीन गृहम्। यदि द्विशालक गृहं क्रियते तदा दक्षिणपश्चिम शाला कार्या, त्रिशाले पूर्वतो हीनं कार्यं, त्रिशाले उत्तरशालया वा हीनं कार्यम् शालाविभागस्तु अनेनैव विधानेन कार्यः-पूर्वे ऊर्ध्वभागत्रयं त्यक्त्वा पश्चिमे भागद्वयं त्यक्त्वा यो मध्यगतो भागः स नाभिः। तत्र शाला न विधेया। अनेनैव प्रकारेण पूर्वादिदिक्षु एकादयो विस्तारदैर्ध्यस्य एकैकं भागे संयोज्य वातादिकोणेषु उत्तरशालाहीनत्वात्र देयम्। सर्वे एकाद्याश्चतुः शालान्ता वेदसमन्विताः। कार्याः अनेनैव प्रकारेण शालायुते वास्तुनि आयव्ययादिशुद्धिर्न चिन्तनीया। एकशाले आयव्ययादिविचारः कर्तव्यः। द्विशाले आयव्ययादिशुद्धिर्न विचारणीया। यतः-निर्गमालिन्दानि पूर्वादीनि यानि चतुर्दिशं वेश्मनां तानि न ग्राह्याणि। नो तद्वास्तुपरिग्रहाः॥ इति॥

पूर्वभागमें ब्राह्मण, उत्तरमें क्षत्रिय ॥ १३२ ॥ दक्षिणमें वैश्य और पश्चिममें शूद्र और अग्निकोण आदिके क्रमसे अन्त्यज आदि वर्णसंकरोंका वास होता है ॥ १३३ ॥ जातिसे भ्रष्ट और चौर य विदिशाओंमें होते हैं, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये पूर्व आदि दिशाओंमें कहे हैं ॥ १३४ ॥ हाथोंके विस्तारसे १०८ हाथका राजाओंका मंदिर होता है वही प्रधान बनवाना अन्य आठों दिशाओंके मंदिर इस क्रमसे बन-

वैश्यानां दक्षिणे भागे पश्चिमे शूद्रकास्तथा। आग्नेयादिक्रमेणैव अन्त्यजा वर्णसङ्कराः ॥१३३॥ जातिभ्रष्टाश्च चौराश्च विदिक्स्थाः शोभनाः स्मृताः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः प्रागादिषु स्मृताः ॥ १३४ ॥ अष्टोत्तरशतं हस्तविस्तारान्नृपमन्दिरम्। कार्यं प्रधानमन्यानि तथाष्टाष्टौ च तानि तु ॥ १३५ ॥ विस्तारं पादसंयुक्तं तेषां दैर्घ्यं प्रकल्पयेत्। एवं नृपाणां पञ्चैव गृहाणि शुभदानि च ॥ १३६॥षड्भिः षड्भिर्विहीनाश्च चतुःषष्टिमितस्य च। पञ्चैव तस्य विस्तारं दैर्घ्यं षड्भागसंयुतम् ॥ १३७ ॥ षष्टिश्चतुर्विहीनानि वेश्मानि स चवस्य च। पञ्चषष्ठांशसंयुक्तं दैर्घ्यं तस्यार्द्धमेव च ॥ १३८ ॥ नृपाणां महिषीणाञ्च प्रशस्तं पञ्चैव हि। षड्भिःषड्भिश्चः वर्ज्यानि अशीत्याश्च तथैव च ॥ १३९ ॥

वाने ॥ १३५ ॥ इनके विस्तारके पादसे युक्त लम्बाईकी कल्पना करे इस प्रकार राजाओंके गृह पांचही शुभदायी होते हैं ॥ १३६ ॥ और चौसठ ६४ हाथके घरमें छठे २ भागसे हीन वे पांच गृह होते हैं उनका विस्तार और लम्बाई छः भागसे युक्त होती है ॥ १३७ ॥ और चौसठ हाथस न्यून मंत्रियोंके पांच घर होते हैं और छठे ६ भागसे युक्त अथवा विस्तारसे आधी उनकी लम्बाई होती है ॥ १३८ ॥ राजाकी रानियोंके भी पांचही गृह श्रेष्ठ लिखे हैं और वे ८० अस्सी हाथके विस्तारसे छः छः हाथ लम्बाईके होते हैं ॥ १३९ ॥ रानियोंके घरकी दीर्घतासे ३० हाथ अधिक युवराजोंके घर होते हैं और युवराजके घरसे ५० हाथ अधिक राजाके भाइयोंके घर होते हैं ॥ १४० ॥ राजा मन्त्री इनके घरोंके बीचका जो प्रमाण उतना घर सामन्त और राजपुत्रोंमें श्रेष्ठोंका घर कहा है ॥ १४१ ॥ राजा और युवराजके गृहोंके बीचका जो प्रमाण है उतना घर कंचुकी वेश्या और कलाओंके ज्ञाताओंका होता है ॥ १४२ ॥ युवराज और मन्त्रियोंके घरका जो

त्रिंशद्युतं तद्दैर्घ्यं च युवराजगृहाणि च। पञ्चाशदूर्ध्वं तस्यैव भ्रातॄणां प्रभवन्ति च ॥१४०॥ नृपमन्त्रिगृहाणां च अन्तरे यत्प्रमाणकम्। सामन्तराजपुत्राणां प्रवराणां गृहं स्मृतम् ॥ १४१ ॥ नृपाणां युवराजस्य गृहाणामन्तरेण यत्। तद्गृहं कञ्चुकी वेश्याकलाज्ञानां तथैव च ॥ १४२ ॥ युवराजमन्त्रिणां तु प्रभवेद्धि यदन्तरम्। अध्यक्षदूतगेहं तत्कर्मसु कुशलाश्च ये ॥१४३॥ अध्यक्षाधिकृतानां च रतिकोशप्रमाणकम्। चत्वारिंशच्चतुर्हीनाः पञ्च गेहा भवन्ति हि ॥१४४॥ षड्भागसंयुतं दैर्घ्यं दैवज्ञभिषजां तथा। पुरोहितानां शुभदं सर्वेषां कथयाम्यतः ॥ १४५ ॥ हस्तद्वात्रिंशता युक्तं विस्तारस्य द्विजालयम्। विस्तारसदृशांशस्तु दैर्घ्यं तस्य प्रकल्पयेत् ॥ १४६ ॥

मध्य प्रमाण हो उतना प्रमाणका घर अध्यक्ष (साक्षी) दूत इनके कर्ममें जो कुशल हैं उनके घर होते हैं ॥ १४३ ॥ अध्यक्ष अधिकारी इनके घरभी रति और कोश घरके प्रमाणमें होते हैं और छत्तीस ३६ हाथमे जिनका प्रत्येक प्रमाण हो ऐसे पांच घर होते हैं ॥ १४४ ॥ इनसे छठे भागसे युक्त जिनकी लम्बाई हो ऐसे घर ज्योतिषी और वैद्योंके होते हैं और पुरोहितोंका घरभी इसी प्रकारका सुखदायी होता है. इसके अनन्तर सबके गृहोंको कहताहूं ॥ १४५ ॥ बत्तीस हाथसे युक्त जिसका विस्तार हो ऐसा घर ब्राह्मणोंका होता है और विस्तारके तुल्य

है भाग जिसका ऐसेही उनकी लम्बाई होनी चाहिय ॥ १४६ ॥ और क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंका घर पूर्वोक्तही समझना, राजा और सेनापतियोंके घरका जो मध्यभाग हो उतने प्रमाणका कोश घर और रतिघर होते हैं और सेनापतिके घरके मध्यका जो प्रमाण हो ॥ १४७ ॥ ॥ १४८ ॥ वह चारों वर्णोंके राजपुरुषोंका घर कहा है और मातापिताके घरका जो मध्य प्रमाण हो उतना पारशव आदिके घरका प्रमाण होता है ॥ १४९ ॥ ब्राह्मणके घरका प्रमाण शूद्रके घरके संग जो होय वह घर मूर्धाभिषिक्त और मृतकण्टकका होता है ॥१५०॥ इनके पीछे

त्रयाणां क्षत्रियादीनामालयं पूर्वचोदितम् । नृपसेनापतेर्गेहस्यान्तरं यद्भवेदिह ॥ १४७ ॥ तत्कोशगेहं भवति रतिगेहं तथैव च । सेनापतिगृहाणां च अन्तरे यत्प्रमाणकम् ॥ १४८ ॥ चातुर्वर्ण्यस्य यद्गेहं तद्राजपुरुषं मतम् । अथ पारशवादीनां मातापित्रो र्यदन्तरम् ॥ १४९ ॥ ब्राह्मणस्य च यन्मानं शूद्रेण सह यद्भवेत् । मूर्द्धावसिक्तक्षत्रासु तथैव मृतकण्टकः ॥ १५० ॥ पश्चाच्छ्रमि जनानां च यथेष्टं कारयेद्गृहम् । शतहस्तोच्छ्रितं कार्यं चतुःशालं गृहं भवेत् ॥ १५१ ॥ प्रमितं त्वेकशालं तु शुभदं तत्प्रकीर्तितम् सेनापतिनृपादीनां सप्तत्या सहिते कृते ॥ १५२ ॥ व्यासे चतुर्दशहृते शालामानं विनिर्दिशेत् । पञ्चत्रिंशद्धृतेऽन्यत्रा लिन्दमानं भवेच्च तत् ॥ १५३ ॥

श्रमीजन (भृत्य आदि) के घरको अपनी इच्छाके अनुसार बनवावै जिस घरमें चार शाला हों उसकी ऊँचाई सौ १०० हाथकी बनवावे ॥ १५१ ॥ जो एक शालाका हो वह प्रमितही सुखदायी कहा है, सेनापति और राजाके घरके प्रमाणके व्यासमें सत्तर ७० मिलाकर ॥ १५२ ॥ १४ का भाग देनेपर भागोंकें प्रमाणसे शालामान कहा है, और ३५ का भाग देनेपर वही अलिंदका मान होता है ॥ १५३ ॥

शालाके तीसरे भागकी तुल्य वीथी (गली) बनवानी भवनसे पूर्व भागमें उष्णीष वा वस्त्र रखनेका स्थान, पश्चिममें शयनका स्थान होता है ॥ १५४ ॥ जो शेषों पार्श्वोंमें अवष्टम्भ सहित और सब दिशाओंमें दृढ होता है. विस्तारके सोलहवें भागमें चार हाथ मिलाकर जो प्रमाण हो ॥ १५५ ॥ उतना प्रमाण उसके मध्यकी ऊँचाईको बुद्धिमानोंने कहा है और समस्त घरोंकी ऊँचाई द्वादश भागसे न्यून बनवानी ॥ १५६ ॥ पृथिवीके पति राजा राजसूय आदि यज्ञोंसे जो परमेश्वरका पूजन करते हैं उनका उत्तम भवन आठ जिनमें आधे हों ऐसे नलोंसे

शालात्रिभागतुल्या च कर्तव्या वीथिका बहिः । भवनात्पूर्वतोष्णीषं पश्चात्स्वापाश्रयं भवेत् ॥ १५४ ॥ सावष्टम्भं पार्श्वयोस्तु सर्वत्र सुस्थितं भवेत् । विस्तारषोडशोशस्तु चतुर्हस्तयुतश्च यः ॥ १५५ ॥ तदन्तरस्योच्चतरं प्रमाणं प्रवदेद्बुधः । द्वादशभागेनोनं च समस्तानां प्रकल्पयेत् ॥ १५६ ॥ यजन्ते राजसूयाद्यैः क्रतुभिर्ह्यवनीश्वराः । नलैरर्द्धाष्टमैस्तेषां कारयेद्भवनोत्तमम् ॥१५७॥ तथा च सप्तमैरेव विप्राणां कारयेद्गृहम् । अर्द्धषष्ठैः क्षत्रियाणां वैश्यानामर्द्धपञ्चमैः ॥१५८॥ त्रिभिस्सार्द्धैश्च शूद्राणां भवनं शुभदं स्मृतम् । स्वगृहाणां विभागेन प्रमाणमिह लक्षयेत् ॥ १५९ ॥ विस्तारायामगुणितं नलैः षोडशभिः स्मृतम् । विषमाः शुभदा ह्येते समा दुःखप्रदायकाः॥ १६० ॥

बनवावे ॥ १५७ ॥ और सात जिनमें आधेहों ऐसे नलोंसे ब्राह्मणोंके घरोंको बनवावे और छः जिनमें आधे हों उनसे क्षत्रियोंका, पांच जिनमें आधेहों ऐसे नलोंसे वैश्योंका घर बनवावे ॥ १५८ ॥ और ३ जिनमें आधे हों ऐसोंसे शूद्रोंका घर बनवाना कहा है, अपने अपने गृहोंके विभागसे यहां प्रमाण देखना ॥ १५९ ॥ विस्तार और आयाम जो १६ नलोंसे गुननेसे आवै उतना प्रमाण कहा है उतना जो विषम आवैं तो शुभदायी

होत हैं और सम दुःखदायी होते हैं ॥ १६० ॥ व्याससे सोलहवें भागका जो प्रमाण वह सब गृहोंको मिति (प्रमाण) कही है यह उन गृहोंका प्रमाण है, जो पक्की ईंटोंके हों काष्ठकी ईंटोंके कदाचित् नहीं ॥ २६१ ॥ राजा और सेनापतिके जो घर उसके द्वारका प्रमाण बुद्धिमानोंने १८८ एकसौ अट्टासी अंगुलका कहा है ॥ १६२ ॥ ब्राह्मण आदिकोंके द्वारका प्रमाण २७ सत्ताईस अंगुलका कहा है, द्वारका प्रमाण जो कहा है उससे तिगुनी ऊँचाई शास्त्रमें कही है ॥ १६३ ॥ ऊँचाईके हाथोंकी जो संख्या है उतनेही प्रमाणके अंगुल दोनों शाखाओंमें अधिक बन-

व्यासाच्च षोडशो भागः सर्वेषां मितयः स्मृता । पक्वेष्टकाकृतानां च दारूणां न कदाचन ॥ १६१ ॥ नृपसेनापतिगृहमष्टाशीति शतैर्युताः । अङ्गुलानि द्वारमानं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१६२॥ विप्रादीनां तथा सप्तविंशतिस्त्वङ्गुलानि च । द्वारस्य मान तत्प्रोक्तं त्रिगुणोच्छ्रायमुच्यते ॥ १६३ ॥ उच्छ्रायहस्तसंख्यायाः परिमाणान्यङ्गुलानि च । शाखाद्वयेऽपि बाहुल्यं कार्यं द्वादशसयुतम् ॥ १६४ ॥ उच्छ्रायात्सप्तगुणिताद्दशेति पृथुता मता । भागः पुनर्नवगुणाऽशीत्यंशस्तत एव च ॥ १६५ ॥ दशांशहीनस्तस्याग्रः स्तम्भानां परिमाणकम् । वेदास्रो रुचकः स्तम्भो वज्रोऽष्टास्रियुतो मतः ॥ १६६ ॥ द्विवज्रः षोडशास्रिः स्यद्द्विगुणास्रिः प्रली-नकः । समन्तवृत्तो वृत्ताख्यः स्तम्भः प्रोक्तो द्विजोत्तमैः ॥ १६७ ॥

वावे और बारह अंगुल मिलावे ॥ १६४ ॥ ऊँचाईसे सातगुनी दशा पृथुता (लम्बाई चौडाई) कही है और नौगुनेमें ८० अस्सीवां जो अंश उसे भाग और तत कहते हैं ॥१६५॥ दशवें अंशसे हीन उसका अग्र कहा है; अब स्तम्भोंके प्रमाणको कहते हैं--जिसमें ४ कोण हों उस स्तम्भको रुचक और जिसमें आठ कोण होंउसे वज्र कहते हैं ॥ १६६ ॥ जिसमें १६ कोण हों वह द्विवज्र, जिसमें ३२ बत्तीस कोण हों उसे प्रलीनक कहते हैं जो समवृत्त (गोल) हो उसको वृत्त नामका स्तम्भ पण्डितोंने कहा है ॥ १६७ ॥ स्तम्भके नौ प्रकार बांटकर उद्वहन घटको बनवाने अर्थात् स्तम्भके पाससे काष्ठोंको लगावे और पद्म उत्तरौष्ठकोभी भागसे ऊन भागसे बनवाने स्तम्भके नीचेके काष्ठको पद्म उत्तरोष्ठ कहते हैं ॥ १६८ ॥ भारकी तुलाके ऊपर जिनकी तुला ऊपर हो उनकी स्तम्भके समान अधिकता होती है और वे एक एक पाद ऊन होती हैं ॥ १६९ ॥ निषि-द्धसे रहित जो अलिंद उसके समान जो घर है वह सर्वतोभद्र अर्थात् सब प्रकारसे मांगलीक होता है, राजा और देवताओंके समूहोंका जो

विभज्य नवधा स्तम्भं कुर्यादुद्वहनं घटम् । पद्मं च सोत्तरोष्ठं च कुर्याद्भावोनभागतः ॥ १६८ ॥ स्तम्भसमं बाहुल्यं भारतुलानामुपर्युपरि यासाम् । भवति तुलाय तुलानामून पादेन पादेन ॥ १६९ ॥ अप्रितिषिद्धालिन्दं समन्ततो वास्तु सर्वतोभद्रम् । नृपविबुधसमूहानां कार्यद्वारैश्चतुर्भिरपि ॥ १७० ॥ द्विशालानि गृहाणि ॥ याम्यशाला न्यसेदादौ द्वितीया पश्चिमे ततः । तृतीया चोत्तरे स्थाप्या चतुर्थी पूर्वपश्चिमा ॥ १७१ ॥ दक्षिणे दुर्मुखं कृत्वा पूर्वे च खरसञ्ज्ञकम् । तद्वाताख्यं भवेद्गेहं वात रोगप्रदं स्मृतम् ॥ १७२ ॥ दक्षिणे दुर्मुखं गेहं पश्चिमे धान्यसंज्ञकम् । सिद्धार्थाख्यं द्विशालं च सवसिद्धिकरं नृणाम् ॥१७३॥ पश्चिमे धान्यनामानमुत्तरे जयसंज्ञकम् । यमसूर्यं द्विशालं तन्मृत्युदं नाशदं स्मृतम् ॥ १७४ ॥

घर है वह चार दरवाजोंका बनवाना ॥ १७० ॥ अब दो शाला आदिके गृहोंको कहते हैं--पहिली शाला दक्षिणमें बनवानी फिर दूसरी पश्चिममें, तीसरी उत्तरमें और चौथी पूर्व पश्चिममें मध्यमें बनवानी ॥ १७१ ॥ जिस घरमें दक्षिण दिशामें दुर्मुखका चिह्न हो और पूर्वमें खरका चिह्न हो वह घर वातनामका होता है, वह वातरोगका प्रदाता शास्त्रमें कहा है ॥ १७२ ॥ जो घर दक्षिणमें दुर्मुख हो और पश्चिममें धान्यसंज्ञक हो वह दो शालाका घर सिद्धार्थ नामका होता है और वह मनुष्योंकी सब सिद्धियोंको करता है ॥ १७३ ॥ जो पश्चिममें धान्य नामका हो और

उत्तरमें जयसंज्ञक हो और जिसमें दो शाला हों उसे मयसूय कहते हैं. वह मृत्यु और नाशका दाता होता है ॥ १७४ ॥ जो पूर्वमें खरनामका हो और उत्तरमें धान्यसंज्ञक हो और जिसमें दो शाला हों वह दण्डनामका होता है. वह दण्डको बारम्बार देता है ॥ १७५ ॥ जो दक्षिणमें दुर्मुख हो और उत्तरमें जयसंज्ञक हो और जिसमें दो शाला हों वह वातनामका होता है, उसमें बंधु और धनका नाश होता है ॥ १७६ ॥ जो पूर्वदिशामें खरनामका हो और पश्चिममें धान्यसंज्ञक हो और जिसमें दो शाला हों उस गृहको चुल्की कहते हैं वह पशुओंकी

पूर्वे तु खरनामानमुत्तरे धान्यसञ्ज्ञकम् । दण्डाख्य तद्द्विशालं स्याद्दण्डं कुर्यात्पुनःपुनः ॥ १७५ ॥ दुर्मुखं दक्षिणे कुर्यादुत्तरे जयसंज्ञकम् । वाताख्यं तद्द्विशालं तु बन्धुनाशं धनक्षयम् ॥ १७६ ॥ खरं च पूर्वदिग्भागे पश्चिमे धान्यसंज्ञकम् । गृहं चुल्की द्विशालं तत्पशुवृद्धिधनप्रदम् ॥ १७७ ॥ विपक्षं दक्षिणे भागे पश्चिमे क्रूरसञ्ज्ञकम् । शोभनाख्यं द्विशालं तद्धनधान्यकरं परम् ॥ १७८ ॥ विजयं दक्षिणे भागे विजयं चैव पश्चिमे । द्विशाल कुम्भाख्य पुत्रादारादिसंयुतम् ॥ १७९ ॥ धनं च पूर्वदिग्भागे धान्यश्चैव तु पश्चिमे । नंदाख्यं तद्द्विशाल च धनदं शोभनं स्मृतम् ॥ १८० ॥ विजयं सर्वदिग्भागे द्विशालाख्यं तदेव हि । शङ्खाख्यं नाम तद्गेहं शुभदं च नृणां भवेत ॥ १८१ ॥

वृद्धि और धनको देता है ॥ १७७ ॥ जो घर दक्षिण भागमें विपक्षनामका हो और पश्चिममें क्रूरसंज्ञक हो और जिसमें दो शाला हों वह घर शोभननामका होता है वह धन और धान्यको देता है ॥ १७८ ॥ जो दक्षिण भागमें और पश्चिम भागमें विजयनामका हो और जिसमें दो शाला हों उस घरको कुंभ कहते हैं वह पुत्र और स्त्री आदिसे युक्त रहता है ॥ १७९ ॥ जो पूर्वदिशामें धननामका हो और पश्चिममें धान्यनामका हो और जिसमें दो शाला हों वह घर नंदनामका होता है वह धनको देता है और शोभननामका होता है ॥ १८० ॥ जो सब दिशाओंमें विजयनामका हो और जिसमें दो शाला हों वह शंकनामका होता है वह मनुष्योंको शुभदायी होता है ॥ १८१ ॥ जो सब दिशाओंमें विपुल हो और जिसमें दो शाला हों उस घरको संपुटनामक कहते हैं. वह धनधान्यको देता है ॥ १८२ ॥ जो सब दिशाओंमें धनद हो वा सुवक्र वा मनोरम हो वह घर कान्तनामका होता है वह सब घरोंमें शोभन कहा है ॥ १८३ ॥ दो शालाओंके घरोंके ये १३ भेद इन गृहोंके फलपाकके लिये मैंने विस्तारसे कहे ॥ १८४ ॥ पूर्वदक्षिण १, दक्षिणपश्चिम २, पश्चिउत्तर ३, उत्तरपूर्व ४, प्राक्पश्चिम ५, दक्षिण

विपुलं सर्वदिग्भागे द्विशालं तत्प्रजायते । तानि संपुटसंज्ञानि धनधान्यप्रदानि च ॥ १८२ ॥ धनदं सर्वदिग्भागे सुवक्रं वा मनोरमम् । कान्तं नाम तु तद्गेहं सर्वेषां शोभनं स्मृतम् ॥१८३। द्विशालानां तद्गृहाणां भेदाश्चैव त्रयोदश । फलपाकार्थमेतेषां मया प्रोक्तं सुविस्तरात् ॥ १८४ ॥ पूर्वयाम्यमथ याम्यपश्चिमं पश्चिमोत्तरमथोत्तरपूर्वकम् । प्राक्प्रतीचमथ दक्षिणोत्तरं वास्तु षड्विधमिदं द्विशालकम् ॥ १८५ ॥ अथ त्रिशालानि ॥ उत्तरद्वारहीनं यत्त्रिशालं धनधान्यदम् । हिरण्यनाभनामानं राज्ञां सौख्यविवर्द्धनम् ॥ १८६ ॥ प्राग्द्वारशालहीनं तु सुक्षेत्रं नाम तद्गृहम् । वृद्धिदं पुत्रपौत्राणां धनधान्यसमृद्धिदम् ॥ १८७ ॥ याम्यशालाविहीनं तद्द्विशालं चुत्रिसञ्ज्ञकम् । विनाशनं धनस्यापि पुत्रपौत्रादिनाशनम् ॥ १८८ ॥

उत्तर ६, इन भेदोंसे दो शालाका वास्तु छः प्रकारका होता है ॥ १८५ ॥ इसके अनंतर तीन शालाओंके वास्तुको कहते हैं--उत्तरके द्वारसे जो रहित हो ऐसा तीन शालाका गृह हिरण्यनाभनामका होता है वह धन धान्यको देता है और राजाओंके सुखको बढाता है ॥ १८६ ॥ जिसमें पूर्वके द्वारकी शाला न हो वह गृह सुक्षेत्रनामका होता है और पुत्र पौत्रोंकी वृद्धि और धन धान्यकी समृद्धिको देता है ॥ १८७ ॥ जो दक्षिणकी शालासे रहित हो और जिसमें तीन शाला हों ऐसे घरको चुल्ही कहते हैं, उसमें धन और पुत्र पौत्र आदिका नाश होता

है ॥ १८८ ॥ जो घर पश्चिमकी शालासे रहित हो उस घरको पक्षघ्न कहते हैं वह पुत्रोंको दोषका दाता और पुरवासियोंकी शत्रुताको देता है ॥ १८९ ॥ तीन शालाके गृहोंके ये चार भेद मैंने कहे, इससे घरके कर्ममें बुद्धिमान् मनुष्य इनका विचारकर घरको बनवावे ॥ १९० ॥ इसके अनन्तर चार शालाओंके घरोंको कहते हैं--जिस घरमें चारों तरफ अलिन्दोंका स्थापन न हो और जिसमें चार द्वार हों उस वस्तुको सर्वतोभद्र कहते हैं. एक ग्राममें चार शालाके घरमें, दुर्भिक्षमें, राज्यके उपद्रवमें ॥ १९१ ॥ यदि स्वामी अपनी स्त्रीको संग शुक्रास्तमें लेजाय

प्रत्यक्छालाविहीनं तु पक्षघ्नं नाम तद्गृहम् । पुत्राणां दोषदश्चैव परश्च पुरवासिनाम् ॥१८९॥ चत्वारोऽमी मया प्रोक्ता भेदाश्चैव चतुर्दश । तस्माद्विचार्य कुर्वीत गृहकर्मणि कोविदः ॥१९०॥ अथ चतुःशालानि॥ अलिन्दानां ह्यवच्छेदो नास्ति यत्र समन्ततः॥ तद्वास्तु सर्वतोभद्रं चतुर्द्वारसमन्वितम् । एक ग्रामे चतुःशाले दुर्भिक्षे राज्यविप्लवे ॥ १९१ ॥ स्वामिना नीयमानायां प्रतिशुक्रं न दुष्यति । नृपाणां विबुधानां च गृहं सौख्यप्रदायकम् ॥ १९२ ॥ प्रदक्षिणान्तगैः सर्वैः शालाभित्तिरलिन्दकैः । विना परेण द्वारेण नन्द्यावर्तमिति स्मृतम् ॥ १९३ ॥ श्रेष्ठं सुतारोग्यकरं सर्वेषां शुद्धजन्मनाम् । द्वारालिन्दो गतस्त्वेको नेत्रयोर्दक्षिणागतः ॥ १९४ ॥ विहाय दक्षिणद्वारं वर्द्धमानमिति स्मृतम् । शुभदं सर्ववर्णानां वृद्धिद पुत्रपौत्रदम् ॥ १९५ ॥

तो सन्मुख शुक्रका दोष नहीं. राजा और देवताओंका जो घर है वह सुखदायी होता है ॥ १९२ ॥ जिसकी प्रदक्षिणाके अन्तमें सब तरफ शाला भीत अलिन्द हों और पश्चिमका द्वार न हो उस घरको नन्द्यावर्त कहते हैं ॥ १९३ ॥ वह शुद्ध जन्मवाले श्रेष्ठ पुरुषोंको सुख और आरोग्यका दाता और श्रेष्ठ कहा है. जिसकी दक्षिणदिशामें एक द्वारका अलिन्द नेत्रभागमें हो ॥ १९४ ॥ दक्षिणमें द्वार न हो उस घरको वर्द्धमान कहते हैं. वह सब वर्णोंको शुभदायी वृद्धि और पुत्र पौत्रोंको देता है ॥ १९५ ॥ जिसक पश्चिम और उत्तरमें अलिन्द हो और पूर्वदिशा पर्यंत दो अलिन्द उठेहुए हों और उनके मध्यमें एक अलिन्द हो और पूर्वको जिसका द्वार हो उस घरको स्वस्तिक और सुखदायी कहते हैं ॥ १९६ ॥ जिस घरमें पूर्व और पश्चिममें दो अलिन्द हों और गृहके अन्ततक दो अलिन्द हों और उत्तरको जिसका द्वार न हो उस घरको रुचकनामका कहते हैं ॥ १९७ ॥ इति पं० मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते वास्तुशास्त्रे समगृहादिनिर्माणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ इससे

पश्चिमोत्तरतोऽलिन्दः प्रागन्तौ द्वौ तदुत्थितौ । अन्यस्तन्मध्यविधृतः प्राग्द्वारं स्वस्तिकं शुभम् ॥ १९६ ॥ प्राक्पश्चिमावलिन्दौ यावन्तगौ तद्भवौ परौ । सौम्यद्वारं विना तु स्याद्रुचकाख्यं तु तत् स्मृतम् ॥ १९७ ॥ इति वास्तुशास्त्रे समगृहादिनिर्म्माणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहे कालविनिर्णयम् । यथाकालं शुभं ज्ञात्वा तदा भवनमारभेत् ॥ १ ॥ मृदु-ध्रुवस्वातिपुष्यधनिष्ठाद्वितये रवौ । मूले पुनर्वसौ सौम्यवारे प्रारम्भणं शुभम् ॥ २ ॥ आदित्य भौमवर्जन्तु वाराः सर्वे शुभावहाः॥ द्वितीया च तृतीया च षष्ठी च पञ्चमी तथा ॥ ३ ॥ सप्तमी दशमी चैव द्वादश्येकादशी तथा । त्रयोदशी पञ्चदशी तिथयः स्युः शुभावहाः ॥ ४ ॥ दारिद्र्यं प्रतिपत्कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी अष्टम्युच्चाटनं चैव नवमी शस्त्रघातिनी ॥ ५ ॥

आगे कालका निर्णय कहते हैं--कालके अनुसार शुभ मुहूर्तको जानकर भवनका प्रारंभ करे ॥ १ ॥ मृदु (मृ० रे० चि० अ०) ध्रुव (उ० ३ रो० स्वाति धनिष्ठा श्रवण मूल पुनर्वसु) इनपर सूर्य हो और सौम्यवारको होय तो गृहका प्रारंभ श्रेष्ठ होता है ॥ २ ॥ आदित्य भौमको छोडकर समस्त वार शुभदायी होते हैं ॥ २ । ३ । ६ । ५ । ७ । १० । १२ । ११ । १३ । और पूर्णिमा १५ ये तिथि शुभदायी कही हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ प्रतिपदा दारिद्र्यको करती है और अष्टमी उच्चाटन करती है, नवमी शस्त्रोंसे घात कराती है ॥ ५ ॥

अमावास्याको राजासे भय, चतुर्दशीको पुत्र और दाराका नाश होता है, धनिष्ठा आदि पांच ५ नक्षत्रोंमें स्तंभका स्थापन न करै ॥ ६ ॥ सूत्रधार शिलाका स्थापन और प्राकार आदिको करले, दो प्रकारका यामित्र, वेध उपग्रह और कर्तरीयोग ये भी वर्जने योग्य हैं ॥ ७ ॥ एकार्गल, लत्ता, युति और क्रकचयोग, दो प्रकारका पात, वैधृति ये भी वर्जित हैं॥ ८ ॥ कुलिक कंटक काल यमघंट और जन्मसे तीसरा, पांचवां और छठा तारा और नक्षत्र वार्जित है ॥ ९ ॥ कुयोग, वनसंज्ञकयोग, तीन तिथियोंका जिसमें स्पर्श हो ऐसा दुष्टदिन,

दर्शे राजभयं भूते सुतदारविनाशनम् । धनिष्ठापञ्चके नैव कुर्यात्स्तम्भसमुच्छ्रयम् ॥ ६ ॥ सूत्रधारशिलान्यासप्राकारादि समालभेत् । यामित्र द्विविधं वर्ज्यं वेधोपग्रहकर्त्तरी ॥ ७ ॥ एकार्गलं तथा लत्तायुतिक्रकचसंज्ञकाः । पातं तु द्विविधं वर्ज्यं व्यतीपातश्च वैधृतिः ॥ ८ ॥ कुलिकं कंटकं कालं यमघण्टं तथैव च । जन्मतृतीयपञ्चाङ्गतारा वर्ज्यानि भानि च ॥९॥ कुयोगा वनसंज्ञश्च तथा त्रिस्पृक्‌ खलं दिनम् । पापलग्नानि पापांशाः पापवर्गास्तथैव च॥१०॥ कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः । विवाहादिषु ये वर्ज्यास्ते वर्ज्या वास्तुकर्मणि ॥११॥ वास्तुचक्रं प्रवक्ष्यामि यच्च व्यासेन भाषितम् । यस्मिन्नृक्षे स्थितो भानुस्तदादौ त्रीणि मस्तके ॥ १२ ॥

पाप लग्न, पापका नवांश और पापग्रहोंका वर्ग येभी वर्जित हैं ॥ १० ॥ तिथि वारके कुयोग, तिथि नक्षत्रके कुयोग, नक्षत्र वारके कुयोग जो विवाह आदिमें वर्जित हैं वे वास्तुकर्ममें भी वर्जित हैं ॥ ११ ॥ उस वास्तुचक्रको कहताहूं जो व्यासने कहा है, जिस नक्षत्रपर सूर्य होय उससे लेकर तीन नक्षत्र मस्तक पर रक्खे ॥ १२ ॥

चार नक्षत्र अग्रपाद और चार नक्षत्र पश्चिम पादमें, तीन नक्षत्र पीठ पर, चार नक्षत्र दाहिनी कुक्षिमें चार नक्षत्र पूंछपर और चार नक्षत्र वामकुक्षिमें रक्खे ॥ १३ ॥ तीन नक्षत्र मुखपर होते हैं. इस प्रकार अट्ठाईस तारा होते हैं. शिरका तारा अग्निका दाह करता है,अग्रपादमें गृहसे उद्वास (निकसना) ॥१४॥ पश्चिम पादके नक्षत्रोंमें स्थिरता,पीठके नक्षत्रोंमें धनका आगम,दक्षिण कुक्षिके नक्षत्रमें लाभ पुच्छके नक्षत्रोंमें स्वामीका नाश होता है ॥ १५ ॥ वाम कुक्षिके नक्षत्रमें दरिद्रता, मुखके नक्षत्रोंमें निरंतर पीडा होती है, पुनर्वसु नक्षत्रमें राजा आदिके सूतिकागृहको

चतुष्कमग्रपादे स्यात्पुनश्चत्वारि पश्चिमे । पृष्ठे च त्रीणि ऋक्षाणि दक्षकुक्षौ चतुष्ककम् । पुच्छे चत्वारि ऋक्षाणि कुक्षौ चत्वारि-वामतः ॥ १३ ॥ मुखे भत्रयमेव स्युरष्टाविंशतितारकाः । शिरस्ताराग्निदाहाय गृहोद्वासोग्रपादयोः ॥ १४ ॥ स्थैर्यं स्यात्पश्चिमे पादे पृष्ठे चैवं धनागमः कुक्षौ स्याद्दक्षिणे लाभः पुच्छे च स्वामिनाशनम् ॥ १५ ॥ वामकुक्षौ च दारिद्र्यं मुखे पीडा निरन्तरम् । पुनर्वसौ नृपादीनां कर्तव्यं सूतिकागृहम् ॥ १६ ॥ श्रवणाभिजितोर्मध्ये प्रवेशं तत्र कारयेत् चरलग्ने चरांशे च सर्वथा परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥ जन्मभाच्चोपचयभे लग्ने वर्गे तथैव च । प्रारम्भणं प्रकुर्वीत नैधनं परिवर्जयेत् ॥१८॥ पापैस्त्रिषष्ठायगतैः सौम्यैः केन्द्रत्रिकोणगैः । निर्माणं कारयेद्धीमानष्टमस्थैः खलैर्मृतिः ॥ १९ ॥

बनवावे ॥ १६ ॥ श्रवण और अभिजित् नक्षत्रमें सूतिकागृहमें प्रवेश करवावे. चार लग्न और चरलग्नके नवांशको सर्वथा वर्जदे ॥ १७ ॥ जन्मकी राशिसे उपचय (वृद्धि) का लग्न और उपचयकी राशिमें प्रारंभ करै. जन्मलग्नसे आठवें लग्नको वर्जदे ॥ १८ ॥ पापग्रह (३।६।११) में सौम्यगृह केन्द्र (१ । ४ । ७ । १०) और त्रिकोण (९ । ५) में हों ऐसे लग्नमें बुद्धिमान् मनुष्य गृहको बनवावे और अष्टम लग्नमें पापग्रह होंय तो

मरण होता है ॥ १९ ॥ मनुष्यलग्न होय और सौम्यग्रहोंकी दृष्टिका योग होय तो कुंभसे भिन्न किसी सौम्यग्रहसे युक्त लग्नमें ॥ २० ॥ जलाशय आदि वास्तुओंका प्रारंभ शुभदायी कहा है ॥ २१ ॥ इसके अनंतर यागोका वर्णन करते हैं-गुरु लग्नमें हो, सूर्य छठे हो और सौम्यग्रह द्यून (७) में हो, शुक्र सुख (४) में तीसरे शनैश्चर हो ऐसे लग्नमें बनाया जो घर उसकी सौ १०० वर्षकी अवस्था होती है ॥२२॥ शुक्र लग्नमें हो और दशमें सौम्यग्रह, सूर्य लाभ ११ स्थानमें हो गुरु केन्द्रमें होय तो उस लग्नमें बनाया मंदिर सौ १०० वर्ष टिकता है ॥२३॥

मनुष्यलग्ने सौम्यानां दृग्योगे यो गतस्तथा कुम्भ विहायान्यतरे लग्ने सौम्यग्रहान्विते ॥ २० ॥ जलाशयादिवास्तूनां प्रारंभः शुभदः स्मृतः॥२१॥ अथ योगाः ॥ गुरुर्लग्ने रविः षष्ठे द्यूने सौम्ये सुखे सिते । तृतीयस्थेऽर्कपुत्रे च तद्गृहं शतमायुषम् ॥२२॥ भृगुर्लग्नेऽम्बरे सौम्ये लाभस्थाने च भास्करे । गुरुः केन्द्रगतो यत्र शतवर्षाणि तिष्ठति ॥ २३ ॥ हिबुकेज्येऽम्बरे चन्द्रे लाभे च कुजभास्करौ । प्रारम्भः क्रियते यस्य अशीत्यायुः क्रमाद्भवेत् ॥ २४ ॥ लग्ने भृगौ पुत्रगेज्ये षष्ठे भौमे तृतीयगे । रवौ यस्य गृहारंभः स च तिष्ठेच्छत द्वयम् ॥२५॥ लग्नस्थौ गुरुशुक्रौ च रिपुराशिगते कुजे । सूर्ये लाभगते यस्य द्विशताब्दानि तिष्ठति ॥ २६ ॥ स्वोच्चस्थो वा भृगुर्लग्ने स्वोच्चे जीवे सुखस्थित । स्वोच्चे लाभगते मन्दे सहस्राणां समा स्थितिः ॥ २७ ॥

चौथे गुरु हो १० दशमें चन्द्रमा हो लाभमें मंगल और सूर्य हो ऐसे लग्नमें जिसका प्रारंभ किया जाय उसकी ८० अस्सी वर्षकी अवस्थ होती है ॥ २४ ॥ लग्नमें शुक्र हो पंचममें गुरु हो छठे ६ मंगल हो तीसरे सूर्य हो ऐसे लग्नमें जिस घरका आरंभ हो वह २०० वर्षतक टिकता है ॥ २५ ॥ लग्नमें गुरु शुक्र स्थित हों और छठी राशिपर मंगल हो और सूर्य लाभमें हो ऐसे लग्नमें बनाया हुआ घर २०० वर्षतक टिकता है ॥ २६ ॥ अपने उच्चका शुक्र लग्नमें हो अपने उच्चका बृहस्पति सुख ४ में हो और अपने उच्चका शनि लाभमें हो ऐसे लग्नमें जिस घरका आरंभ कियाजाय ऐसा घर हजार १००० वर्षतक टिकता है ॥ २७ ॥ अपने उच्चके वा अपने अपने गृहके वा लग्नमें स्थित अथवा केन्द्रमे स्थित सौम्यग्रह हो ऐसे लग्नमें जिसका प्रारंभ हो वह गृह दो सौ वर्षतक टिकता है ॥ २८ ॥ कर्कलग्नमें चन्द्रमा, केन्द्रमें बृहस्पति, मित्रगृह व अपने उच्चके अन्य ग्रह होंय तो उस घरमें चिरकालतक लक्ष्मी होती है ॥ २९ ॥ पुष्य तीनों उत्तरा आश्लेषा मृगशिर श्रवण रोहिणी और जलके नक्षत्र शतभिषा इनमें बनाया हुआ घर लक्ष्मीसे युक्त होता है ॥ ३० ॥ विशाखा चित्रा शतभिषा आर्द्रा पुनर्वसु धनिष्ठा और शुक्र

स्वोच्चे स्वभवने सौम्यैर्लग्नस्थैर्वापि केन्द्रगैः । प्रारम्भः क्रियते यस्य स तिष्ठति शतद्वयम् ॥२८॥ कर्कलग्नगते चन्द्रे केन्द्रस्थाने च वाक्पतिः । मित्रस्वोच्चस्थितैः खेटैर्लक्ष्मीस्तस्य चिरं भवेत् ॥ २९ ॥ इज्योत्तरात्रयाहीन्दुविष्णुधातृजलोडुषु । वरुणासहितेष्वेषु कृतं गेहं श्रिया युतम् ॥ ३० ॥ द्विदैवत्वाष्ट्रवारीशरुद्रादितिवसूडुषु । शुक्रेण सहितेष्वेषु कृतं धान्यप्रदं गृहम् ॥ ३१ ॥ हस्तार्यमत्वाष्ट्रदस्रानुराधानारकासु च । बुधेन सहितेष्वेषु धनपुत्रसुखप्रदम् ॥ ३२ ॥ कुयोगाः ॥ शत्रुक्षेत्रगतैः खेटैर्नीचस्थैर्वा पराजितैः । प्रारम्भे यस्य भवने लक्ष्मीस्तस्य विनश्यति ॥३३॥ एकोऽपि परभागस्थो दशमे सप्तमेऽपि वा । वर्णाधिपे बलैर्हीने तद्गृहं परहस्तगम् ॥ ३४ ॥

वारसहित इन नक्षत्रोंमें बनाया हुआ घर अन्नको देता है ॥ ३१ ॥ हस्त उत्तराफाल्गुनी चित्रा अश्विनी और अनुराधा बुधवारसहित इन नक्षत्रोंमें बनाया घर धन पुत्र और सुखदायी होता है ॥ ३२ ॥ अब कुयोगोंका वर्णन करते हैं-छठे स्थानमें ऐसे ग्रह पडे होयँ जो नीचके हों वा पराजित हों ऐसे लग्नमें जिस गृहका प्रारंभ हो उसमें लक्ष्मीका नाश होता है ॥३३॥ जिस लग्नमें एकभी ग्रह परभागमें स्थित हो वा दशम सप्तमें स्थित

हो और वर्णका स्वामी बलसे हीन हो तो वह घर परहस्तगामी होजाता है ॥ ३४ ॥ पापग्रहोंके अन्तर्गत लग्न हो, सौम्यग्रहोंसे युक्त और दृष्ट न हो, अष्टमस्थानमें शनैश्चर होय तो वह घर अस्सी वर्षके मध्यमें नष्ट होता है ॥ ३५ ॥ शनैश्चर लग्नमें स्थित हो, मंगल सप्तमभवनमें और लग्नमें शुभग्रहोंकी दृष्टि न होय तो वह घर सौ १०० वर्षमें नष्ट होजाता है ॥ ३६ ॥ क्षीणचंद्रमा लग्नमें हो, अष्टम स्थानमें मंगल हो एसे लग्नमें जिसका प्रारंभ हो वह घर शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ ३७ ॥ दशाका पति और वणका नाथ बलसे हीन हो और पीडित

पापान्तरगते लग्ने न च सौम्ययुतेक्षिते । अष्टमस्थेऽर्कपुत्रे च अशीत्यब्दाद्विहन्यते ॥ ३५ ॥ मन्दे लग्नगते चैव कुजे सप्तमसस्थिते । शुभैरवीक्षिते वापि शतवर्षाणि हन्यते ॥ ३६ ॥ लग्नगे शशिनि क्षीणे मृत्युस्थाने च भूसुते । प्रारम्भः क्रियते यस्य शीघ्रं तद्धि विनश्यति ॥ ३७ ॥ दशापतौ बलैर्हीने वर्णनाथे तथैव च पीडितर्क्षगते सूर्ये न विदध्यात्कदाचन ॥ ३८ ॥ पितृमूलेज्यभाग्यार्कपौष्णभेषु च यत्कृतम् ॥ ३९ ॥ कुजेन सहितेष्वेषु गृहं सन्दह्यतेऽग्निना ॥ ४० ॥ मूलं च रेवती चैव कृत्तिकाऽऽषाढमेव च ॥ पूर्वाफाल्गुनिहस्ते च मघा चैव तु सप्तकम् ॥ ४१ ॥ एषु भामेन युक्तेषु वारे तस्यैव वेश्म यत् । अग्निना दह्यते कृत्स्नं पुत्रनाशः प्रजायते ॥ ४२ ॥

नक्षत्रपर सूर्य हो ऐसे घरकोकदाचित् न बनवावे ॥ ३८ ॥ मघा मल पुष्य भाग्य (पूर्वाफा०) हस्त रेवती इनमें बनाया हुआ ॥३९॥ और मंगल सहित इनमें बनाया घर अग्निसे भस्म होजाता है ॥ ४० ॥ मूल रेवती कृत्तिका पूर्वाषाढा पूर्वाफाल्गुनी हस्त और सातवां मघा ॥ ४१ ॥ मंग- लसे युक्त इन नक्षत्रोंमें और मंगलवारमें जो घर बनाया जाता है वह संपूर्ण अग्निसे दग्ध होता है और उसमें पुत्र नष्ट होजाता है ॥ ४२ ॥ अग्निके नक्षत्रमें सूर्य वा चंद्रमा स्थित होय तो ऐसे लग्नमें बनायाहुआ मंदिर थोडे दिनोंमें निश्चयसे अग्निसे दग्ध होता है ॥ ४३ ॥ ज्येष्ठा अनुराधा भरणी स्वाती तीनों पूर्वा और धनिष्ठा इन नक्षत्रोंमें और शनैश्चरके दिन बनाया मंदिर ॥ ४४ ॥ नामसे कृपण कहाता है और धन धान्यसहितभी उस घरमें उत्पन्नहुआ पुत्र यक्ष और राक्षसोंसे ग्रहण कियाजाता है ॥ ४५ ॥ प्रासादोंमें वापीकूप आदिमें भी यही फल होता है तिससे शुभका अभिलाषी मनुष्य विचारकर घरका आरंभ करै ॥ ४६ ॥ मकर वृश्चिक कर्क लग्नमें गृहका आरंभ होय तो नाश

अग्निनक्षत्रगे सूर्य्ये चन्द्रे वा तत्र सस्थिते । निर्मितं मंदिरं नूनमग्निना दह्यतेऽचिरात् ॥ ४३ ॥ ज्येष्ठानुराधके चैव भरणीस्वातिपूर्वभे । धनिष्ठास्वपि ऋक्षेषु शनिस्तिष्ठेद्दिनस्य च ॥ ४४ ॥ कृपणो नामतः प्रोक्तो धनधान्यादिके गृहे । पुत्रे जातेऽथवा तस्मिन्गृह्यते यक्षराक्षसैः ॥ ४५ ॥ प्रासादेष्वेवमेव स्याद्वापीकूपेषु चैव हि । तस्माद्विचार्य कर्तव्या गृहारम्भः शुभेप्सुना ॥४६॥ नाशं दिशन्ति मकरालिकुलीरलग्ने मेषे घटे धनुषि कर्मसु दीर्घसूत्रम् । कन्याझषे मिथुनगे ध्रुवमर्थलाभं ज्योतिर्विदः कलशसिंहवृषेषु सिद्धिम् ॥ ४७ ॥ मध्याह्ने तु कृतं वास्तु कर्तुर्वित्तविनाशनम् । महानिशास्वपि तथा सन्ध्ययोर्नैव कारयेत् ॥४८॥ अथ भावफलानि ॥ लग्नेऽर्के वज्रपातः ष्यात्कोशहानिश्च शीतगौ । मृत्युर्विश्वम्भरापुत्रे दारिद्र्यं रविनन्दने ॥ ४९ ॥

हो, मेष धन तुला लग्नमें होय तो काममें दीर्घसूत्र (देर) हो, कन्या मीन मिथुनमें होय तो निश्चयसे अर्थका लाभ हो, कुंभ सिंह और वृषमें सिद्धिको देता है ऐसे ज्योतिःशास्त्रके ज्ञाता वर्णन करते हैं ॥ ४७ ॥ मध्याह्नमें कियाहुआ वास्तु कर्ता और धनके नाशको देता है, अर्द्ध- रात्रिमें भी तैसाही फल है और सन्ध्यामेंभी गृहके आरंभको न करै ॥ ४८ ॥ इसके अनंतर भावोंके फलको कहते हैं--लग्नमें सूर्य हो तो

वज्रका पात, चन्द्रमा होय तो कोशकी हानि, मंगल होय तो मृत्यु, शनैश्चर लग्नमें होय तो दारिद्रय ॥ ४९ ॥ बृहस्पति होय तो धर्म अर्थ काम, शुक्र होय तो पुत्रोंकी उत्पत्ति, बुध होय तो जन्मभर अच्छे काममें प्रवृत्ति होती है ॥ ५० ॥ दूसरे स्थानमें सूर्य होय तो हानि, चन्द्रमा होय तो शत्रुओंका नाश, मंगल होय तो बंधन और शनैश्चर होय तो नाना प्रकारके विघ्न होते हैं ॥ ५१ ॥ बुध होय तो धनकी सम्पत्ति, बृहस्पति होय तो धर्मकी वृद्धि और शुक्र होय तो यथेच्छ आनंदसे फलोंकी कामनासिद्धि होती है ॥ ५२ ॥ तीसरे स्थानमें पापग्रह होय और

जीवे धर्मार्थकामाः स्युः पुत्रोत्पत्तिश्च भार्गवे । चंद्रजे कुशलासक्तिर्यावदायुः प्रवर्त्तते ॥ ५० ॥ द्वितीयस्थे रवौ हानिश्चन्द्रे शत्रुक्षयो भवेत् । भूमिजे बन्धनं प्रोक्तं नानाविघ्नानि भानुजे ॥५१॥ बुधे द्रविणसंपत्तिर्गुरौ धर्माभिवर्द्धनम् । यथाकामविनोदेन भृगौ कामं व्रजेत्फलम् ॥ ५२ ॥ तृतीयस्थेषु पापेषु सौम्येष्वेव विशेषतः । सिद्धिः स्यादचिरादेव यथाभिलषितं प्रति ॥५३॥ चतुर्थस्थानगे जीवे पूजा संपद्यते नृपात् । चन्द्रजे चार्थलाभः स्याद्भूमिलाभश्च भार्गवे ॥५४ ॥ वियोगः सुहृदां भानौ मन्त्रभेदो महीसुते । बुद्धिनाशो निशानाथे सर्वनाशोऽर्कनन्दने ॥ ५५ ॥ पञ्चमे तु सुराचार्ये मित्र वसुधनागमः । शुक्रे पुत्रसुखावाप्ती रत्नलाभस्तथेन्दुजे ॥ ५६ ॥

विशेषकर सौम्यग्रह होय तो अल्प कालमेंही अपनी इच्छानुसार सिद्धि होती है ॥ ५३ ॥ चौथे स्थानमें बृहस्पति होय तो राजासे पूजा प्राप्त होती है, बुध होय तो धनका लाभ और शुक्र होय तो भूमिका लाभ होता है ॥ ५४ ॥ सूर्य होय तो मित्रका वियोग मंगल होय तो मंत्रका भेद, चंद्रमा होय तो बुद्धिका नाश और शनैश्चर होय तो सबका नाश होता है ॥ ५५ ॥ पंचममें बृहस्पति होय तो मित्र और रत्न धनका आगमन होता है. शुक्र होय तो पुत्र और सुखकी प्राप्ति, बुध होय तो रत्नोंका लाभ होता है ॥ ५६ ॥ सूर्य होय तो पुत्रोंका दुःख, चन्द्रमा होय तो कलह कहा है, मंगल होय तो कार्यका विरोध, शनैश्चर होय तो बन्धुओंमें लडाई होती है ॥ ५७ ॥ छठे स्थानमें सूर्य होय तो रोगके नाशको कहे. चन्द्रमा होय तो पुष्टि, मंगल होय तो प्राप्ति, शनैश्चर होय तो शत्रुओंके बलका क्षय होता है ॥ ५८ ॥ बृहस्पति होय तो मंत्रका उदय कहा है. शुक्र होय तो विद्याका आगम कहा है और बुध होय तो भलीप्रकार ज्ञान और अर्थमें कुश

सुतदुःखसहस्रांशौ शशांके कलहः स्मृतः ॥ भौमे कार्यविरोधः स्यात्सौरे बंधुविमर्दनम् ॥ ५७ ॥ षष्ठस्थानगते सूर्ये रोगनाशं विनिर्दिशेत् । चन्द्रे पुष्टिः कुजे प्राप्तिः सौरे शत्रुबलक्षयः ॥५८॥ गुरौ मन्त्रोदयः प्रोक्तो भृगौ विद्यागमो भवेत् । सम्यग्ज्ञानार्थ कौशल्यं नक्षत्रपतिनन्दने ॥ ५९ ॥ सप्तमस्थानगे जीवे बुधे दैत्यपुरोहिते । गजवाजिधरित्रीणां क्रमाल्लाभं विनिर्दिशेत् ॥६०॥ भास्करे कीर्तिभङ्गः स्यात्कुजे विपदमादिशेत् । हिमगौ क्लेश आयासः पतंगे व्यंगताभयम् ॥६१॥ नैधने च सहस्रांशौ विद्विषो जनितापदः । हानिः शीतमयूखे च भौमे सौरे च रुग्भयम् ॥ ६२ ॥ बुधे मानधनप्राप्तिर्जीवे च विजयो भवेत् । शुक्रे स्वजन भेदः स्यान्मंत्रज्ञस्यापि देहिनः ॥ ६३ ॥

लता होती है ॥ ५९ ॥ सातवें स्थानमें बृहस्पति बुध और शुक्र होय तो क्रमसे गज वाजी और पृथिवीके लाभको कहै ॥ ६० ॥ सूर्य होय तो कीर्तिका नाश होता है. मंगल होय तो विपत्तियोंको कहै. चंद्रमा होय तो क्लेश और परिश्रम होता है, सूर्य होय तो अंग हीनता और भय होता है ॥ ६१ ॥ अष्टमस्थानमें सूर्य होय तो वैरियोंसे दुःख होता है. चन्द्रमा होय तो हानि, मंगल शनैश्चर होयँ तो रोगका भय होता है ॥६२॥ बुध होय तो मान और धनकी प्राप्ति, बृहस्पति होय तो विजय होता है. शुक्र होय तो मंत्रके ज्ञाताभी मनुष्यके

यहां अपने जनोंसे भेद होता है ॥ ६३ ॥ बृहस्पति नवमस्थानमें होय तो विद्या भोग आदिका आनंद होता है. बुध होय तो अनेक प्रकारके भोग, शुक्र होय तो विजय होता है ॥ ६४ ॥ चन्द्रमा होय तो धातुओंका नाश कहा है, सूर्य हो तो धर्मकी हानि, मंगल होय तो धनका नाश, शनैश्चर होय तो धर्ममें दूषण होता है ॥ ६५ ॥ दशवें स्थानमें शुक्र होय तो शयन आसनकी सिद्धि होती है. बृहस्पति होय तो महान् सुख, बुध होय तो विजय और स्त्री धनकी वृद्धि होती है ॥ ६६ ॥ सूर्य होय तो मित्रोंकी वृद्धि, चन्द्रमा होय तो शोककी वृद्धि होती है. मंगल

वागीशे नवमस्थाने विद्याभोगादिनन्दनम् । बुधे विविधभोगाश्च जीवे च विजयो भवेत् ॥६४॥ चन्द्रे धातुक्षयः प्रोक्तो धर्महा निश्च भास्करे । कुजे चार्थक्षयं विद्याद्रविजे धर्मदूषणम् ॥ ६५ ॥ दशमस्थानगे शुक्रे शयनासनसिद्धयः । सुराचार्यं महत् सौख्यं विजयं स्त्री धनं बुधे ॥ ६६ ॥ मार्तण्डे च सुहृद्वृद्धिश्चन्द्रे शोकविवर्द्धनम् । भौमे रत्नागमः प्रोक्तः कोणे कीर्तिविलोपनम् ॥६७॥ लाभस्थानेषु सर्वेषु लाभस्थानं विनिर्दिशेत् । व्ययस्थानेषु सर्वेषु विनिर्दिशेद्व्ययः सदा ॥६८॥ स्वोच्चे पूर्णफलः प्रोक्तः पादोनं स्वर्क्षगो ग्रहः । स्वत्रिकोणेऽर्द्धफलदः पादं मित्रगृहाश्रितः ॥ ६९ ॥ समर्क्षे रिपुराशौ च समकष्टफलौ ग्रहौ । नीचस्थो निष्फलः प्रोक्तो वर्गे सत्फलदः शुभः ॥ ७० ॥ इति वास्तुशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः॥ ३ ॥

होय तो रत्नोंका अगिम, शनि होयँ तो कीर्तिका लोप होता है ॥ ६७ ॥ लाभस्थानमें संपूर्ण ग्रह होयँ तो लाभको कहे व्यय १२ स्थानमें संपूर्ण ग्रह होयँ तो सदैव व्ययको कहै ॥ ६८ ॥ अपने उच्चका ग्रह होय तो पूर्ण फल कहा है. अपनी राशिका ग्रह हो तो पादोन कहा है. अपने त्रिकोणका होय तो आधा फल देता है. मित्रके गृहका होय तो चौथाई फलको देता है ॥ ६९ ॥ समराशि वा रिपुकी राशिके ग्रह होयँ तो समता और कष्ट फलको देते हैं, नीचराशिमें स्थित ग्रह निष्फल कहा है. वर्गका होय तो श्रेष्ठफलका दाता शुभ कहा है ॥७०॥ इति पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिसहिते वास्तुशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ उत्तम मध्यम निंदितभेदसे तीन प्रकारके गृह चौदह १४ प्रकारके कहे हैं, उनके संक्षेपसे प्रमाणको कहताहूं ॥ १ ॥ वह गृह दो प्रकारका कहा है. शरीर भिन्न २ प्रकारका होता है, गृह नामका शरीर होता है. और शयनके चक्रमें शय्याको गृह कहते हैं ॥ २ ॥ सुखका अभिलाषी मनुष्य शय्याका प्रमाण अपने देहके प्रमाण करै. शय्या ८१ इक्यासी अंगुलकी वा नब्बे अंगुलके प्रमाणकी होती है ॥ ३ ॥ उसके आधे प्रमाणसे उसका विस्तार होता है और उसके पादुका (पावे) उद्यतां

चतुर्दशविधाः प्रोक्ता गृहाश्चोत्तममध्यमाः । निन्दिताश्च प्रमाणश्च कथयामि समासतः ॥ १ ॥ गृहं तद्द्विविधं प्रोक्तं शरीरं तु पृथग्विधम् । शरीरन्तु गृहन्नामशय्याशयनचक्रके ॥ २ ॥ शय्यामानं स्वदेहेन समं कार्यं सुखेप्सुना । एकाशीत्यंगुला शय्या नवत्यंगुलसम्मिता ॥३॥ तदर्द्धेन च विस्तीर्णा पादुकाबुद्यतांगुलौ । आसनं तु प्रकर्तव्यं शय्याविस्तारमानकम् ॥ ४ ॥ विस्तारं पादहीनं तु तद्विस्तारं प्रकल्पयेत् । उपानहौ प्रकर्तव्यौ स्वपादप्रमितौ तथा ॥ ५ ॥ पादुकेऽपि यथा कार्ये अन्यथा दुःखशोकदौ । अष्टांगुलेन मानेन शय्यामानं प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥ अथवा ह्यपरा प्रोक्ता नृपाणां काम्यमिच्छताम् ॥ ७ ॥

गुल होते हैं अर्थात् आधे अंगुल ऊँचे होते हैं. शय्याके विस्तारके प्रमाणकाही आसन बनवाना ॥ ४ ॥ उसके विस्तारसे पाद कम उसके विस्तारको अर्थात् चौडाईको करे. अपने चरणोंके समान उपानह बनवावे ॥ ५ ॥ पादुकाभी चरणोंके समान ही बनवावे अन्यथा बनवावे तो दुःख और शोकको देते हैं. आठ अंगुलके मानसे शय्याका प्रमाण बनवावे ॥ ६ ॥ अथवा कामकी इच्छावाले राजाओंकी अन्यभी

१ पादुक न यथा इति पाठो दृश्यते ।

शय्या कही है ॥ ७ ॥ सौ अंगुलकी शय्या राजाओंकी बडी कही है ॥ ८ ॥ राजाके कुमारोंकी शय्या नब्बे अंगुलकी और मंत्रियोंकी शय्या चौरासी ८४ अंगुलकी होती है. उससे बारह १२ अंगुल कम वलय और पर्यंकके ऊपर कल्पना की हुई ॥ ९ ॥ अथवा २८ अंगुल कम पुरोहितोंकी शय्या होती है. उससे आधा और ८ अंश कम विष्टंभ (पाया) कहा है ॥ १० ॥ तीस ३० अंगुलके मानका आयाम (चौडाई) और एक पादभर ऊँचाई कही है संपूर्ण वर्णोंकी शय्या ८१ अंगुलकी कही है ॥ ११ ॥ सामन्तोंकी शय्या ९० अंगुल वा ८१ अंगुल कही

शतांगुला नृपाणान्तु महती परिकीर्तिता ॥ ८ ॥ कुमाराणां तु नवतिः सा षडूना तु मंत्रिणाम् । सा द्वादशोना वलयपर्यङ्कोपरि कल्पिता ॥ ९ ॥ पुरोहितानां च तथा हीना धृत्यंगुलैस्ततः । अर्द्धं ततोऽष्टांशहीन विष्टम्भः परिकीर्तितः ॥ १० ॥ आयामाख्यशमानं तु पादोच्छ्रायं तु निर्दिशेत् । सर्वेषां चैव वर्णनामेकाशीतिमिता स्मृता ॥ ११ ॥ सामन्तानां तु नवतिः सैकाशीतिमिता तथा । स्वदेहान्नातिदीर्घा सा न विस्तारा तथैव च ॥ १२ ॥ हीना रोगप्रदा दीर्घा दुःखदा सुखदा समा । पाषाणैर्निर्मितं यत्तु तद्गृहं मन्दिरं स्मृतम् ॥ १३ ॥ पक्केष्टकं वास्तुनाम भवनं हितमुत्तमम् । अनिष्टकैः सुमनन्तु सुधारं कर्दमेन तु ॥ १४ ॥ मानस्यं वर्द्धितं काष्ठैर्वेत्रैश्च चन्दनं स्मृतम् । वस्त्रैश्च विजयं प्रोक्तं राज्ञां शिल्पिविकल्पितम् ॥ १५ ॥

है वह शय्या न अपने देहसे लम्बी हो और न चौडी हो ॥ १२ ॥ अपने शरीरसे हीन शय्या रोगको देती है और शरीरसे लम्बी दुःखको और समान शय्या सुखको देती है. पत्थरोंसे बनाया जो घर उसे मंदिर कहते हैं ॥ १३ ॥ पक्कीईटोंसे बनाया जो घर है उसे भवन कहते हैं वह हित और उत्तम होता है. कच्ची ईंटोंसे जो बनाहो उसे सुमन और कीच वा गारेसे बनाहो उसे सुधार कहते हैं ॥ १४ ॥ काष्ठोंसे जो बनाया हो उसको मानस्य, बेंतोंसे जो बनाया हो उसको चन्दन कहते हैं. राजाओंका वस्त्रोंसे बनाया जो शिल्पियोंकी कल्पनासे स्थान उसे विजय कहते हैं ॥ १५ ॥ जो आठवां तृणकी जातियोंसे बनायाहुआ स्थान है उसे कालिमा कहते हैं. गृहस्थियोंके चार स्थान उत्तम होते हैं ॥ १६ ॥ सुवर्णसे चांदीसे तांबेसे और लोहेसे बनेहुए वे चारों कहे हैं--सुवर्णसे बनेहुएको कर और चांदीसे बनेहुएको श्रीभव कहते हैं ॥ १७ ॥ तांबेसे बनेहुएको सूर्यमंत्र और लोहेसे बनेहुएको चण्ड नाम कहते हैं. देव दानव गंधर्व यक्ष राक्षस और पन्नग ॥ १८ ॥ ये पूर्वोक्त

कालमेति च विज्ञेयमष्टमं तृणजातिभिः । उत्तमानि च चत्वारि गृहाणि गृहमेधिनाम् ॥१६॥ सौवर्णं राजतं ताम्रमायसं च प्रकीर्तितम् । सौवर्णं तु करं नाम राजतं श्रीभवं तथा ॥१७॥ ताम्रेण सूर्यमन्त्रन्तु चण्डनाम तथायसम् । देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः ॥ १८ ॥ द्वादशैतेप्रकारास्तु गृहाणां नियताः स्मृताः । जातुष त्वनिलं नाम प्रायुवं वारिबन्धकम् ॥ १९ ॥ एवं सर्वासु जातीषु गृहाणि च चतुर्दश । चत्वारश्चोत्तमा ये च ते गृहा वर्णपूर्वकाः ॥ २० ॥ शुभदा ब्राह्मणादीनां सर्वेषामपि शोभनाः । उत्तमाः शुद्धकालेषु स्थाप्याः शुद्धविधानतः ॥२१॥ काष्ठादिकृतगेहेषु कालापेक्षां न कारयेत् । तृणदारुगृहारम्भे विकल्पं नैव कारयेत् ॥२२॥

गृहोंसे बारह प्रकार नियमसे कहे हैं, लाखसे बनाया जो घर उसको अनिल और जलका बन्धन जिसमें हो उसको प्रायुव कहते हैं ॥ १९ ॥ इस प्रकार संपूर्ण जातियोंमें १४ प्रकारके घर होते हैं. चार जो पूर्वोक्त उत्तम घर हैं वे ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमसे होते हैं ॥ २० ॥ ब्राह्मण आदिकोंको शुभदायी होत हैं और सब वर्णोंके लियेभी शोभन हैं उत्तम घरोंका शुभकालमें और शुद्धविधिसे स्थापन करना ॥ २१ ॥ काष्ठआदिसे बनायेहुए घरोंमें कालकी अपेक्षाको न करै तृण और काष्ठके गृहारंभमें भी विकल्प न करै ॥ २२ ॥

सुवर्णआदिके गृहारंभमें मासका दोष नहीं होता. पञ्चाङ्गके शुद्ध कालमें प्रारंभ करै. चैत्र भाद्रपद और पौष इनमें प्रवेश न करै ॥ २३ ॥ महोत्सवमें प्रवेश (न) करै. पक्कीईटोंसे बनाये हुए शिल्पके मानको कहते हैं ॥ २४ ॥ काष्ठ आदिसे बनायेहुए घरमें स्तंभके मानको कहते हैं सुवर्ण आदिके घरमें हस्तप्रमाणको कहते हैं. लाखआदिसे बनाये घरमें किंचितभी प्रमाणको नहीं कहते हैं ॥ २५ ॥ पादुक और उपानह अंगुलके प्रमाणसे बनवाने, मंच आदि और आसनभी अंगुलसेही बनवावे ॥ २६ ॥ प्रतिमा पीठिका लिंग और स्तंभ गवाक्षोंका

सौवर्णादिगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते । पञ्चाङ्गशुद्धकाले तु न चैत्रे सिंहपौषके ॥ २३ ॥ प्रवेशनं च कर्तव्यं महोत्सवदिने तथा । पक्केष्टकानिर्मिते तु शिल्पमानं प्रवक्ष्यते ॥ २४ ॥ काष्ठादिनिर्मिते गेहे स्तम्भमानं प्रचक्षते । सौवर्णाद्ये हस्तमानं जातु षाद्ये न किञ्चन ॥ २५ पादुकोपानहौ कार्यौ अंगुलस्य प्रमाणतः । मञ्चादिकञ्चासनञ्च अंगुलेनैव कारयेत् ॥ २६ ॥ प्रतिमा पीठिका चापि लिङ्गं वा स्तम्भमेव वा । गवाक्षाणां प्रमाणञ्च शिलामानं तथैव च ॥२७॥ खड्गचर्मायुधादीनां प्रमाणं चांगुलानि च । विषमाः शुभदाः पुंसां समा सौख्यविनाशकाः ॥ २८ ॥ अंगुलस्य प्रमाणन्तु कथयामि समासतः । नवाष्टसप्तषट्पूर्वा अंगुलाः परिकीर्तिताः ॥ २९ ॥ त्रिविधस्यापि हस्तस्य प्रत्येकं कर्म दर्शितम् । ग्रामखेटपुरादीनां विभागोऽयमविस्तरात् ॥३०॥

प्रमाण और शिलाका मान ॥ २७ ॥ खड्ग, चर्म और आयुध इनका प्रमाण अंगुलसेही होता है. विषम अंगुल पुरुषोंका सुखदायी और सम अंगुल पुरुषोंके सुखके नाशक होते हैं ॥ २८ ॥ अब संक्षेपसे अंगुलके प्रमाणको कहताहूं-नव आठ सात छः ये हैं पूर्व जिनके ऐसे अंगुल कहे हैं ॥ २९ ॥ तीन प्रकारके भी हाथका प्रत्येक कर्म दिखाया है ग्राम खेट पुर आदिकोंका यह विभाग विना विस्तारसे है ॥ ३० ॥

परिखा (खाँई) द्वार रथ्या (गली) स्तम्भ जो प्रासाद (घरों) के होत हैं. उनके निकसनेके मार्गमें और सीमाके अन्तमें अन्वान्तर ॥ ३१ ॥ दिशान्तरोंका विभाग वस्त्र और आयोधनका विभाग और मार्गका परिमाण क्रोश गव्यूति और योजनोंसे होता है ॥ ३२ ॥ खात क्रकच इनकी राशि प्रासादका आंगन और आयत इनको नौ ९ जिसमें यव हों ऐसे अंगुलके हाथसे मापकर बनवावे ॥ ३३ ॥ अयोधनचर्म और चण्ड आयुध वापी कूपका और हाथी और घोडोंका प्रमाण ॥ ३४ ॥ इक्षुमन्त्र (कोल्हू) आरघण्ट हलयूप युग (जूआ) ध्वजा और

परिखाद्वाररथ्याश्च स्तम्भाः प्रासादवेश्मनाम् । तेषां निर्गममार्गे च सीमान्तेऽन्त्रान्तराणि च ॥३१॥ दिशान्तरविभागाश्च वस्त्रायोधनयोस्तथा । अध्वनः परिमाणं च कोशगव्यूतियोजनैः ॥ ३२ ॥ खातक्रकचराशी च प्रासादायनमापनम् । नवयावांगुले हस्ते तस्य मानं प्रचक्षते ॥ ३३ ॥ आयोधनानि चर्माणि तथा चण्डायुधानि च । वापीकूपप्रमाणानि तथा च गजवाजिनाम्॥३४॥ इक्षुयंत्रारघण्टाश्च हलयूपयुगध्वजाम् । अतोयानि च नावश्च शिल्पिनां वाप्युपस्करम् ॥३५॥ पादुके वदशी छत्रं धर्मोद्यानानि चैव हि । मात्राष्टयवहस्तेन न च दण्डांश्च मापयेत् ॥ ३६ ॥ जालन्धरे हस्तसंख्याऽवधे[1] च दण्डकास्तथा । मध्यदेशे क्रोशसंख्या द्वीपान्तरे तु योजनम् ॥ ३७ ॥ चतुर्विंशत्यङ्गुलैस्तु हस्तमानं प्रचक्षते । चतुर्हस्तो भवेद्दण्डः क्रोशं तद्द्विसहस्रकम् ॥ ३८ ॥

जिनमें जल न हो ऐसी नाव और शिल्पियोंकी गजआदि वस्तु ॥ ३५ ॥ पादुक वदशी (कोठी) छत्र धर्मके उद्यान इनका प्रमाण आठ ८ जौके हाथसे करे और दण्डोंको न मापै ॥ ३६ ॥ जालन्धरमें हस्तकी संख्या और अवधमें दण्डकी और मध्यदेशमें क्रोशकी संख्या और द्वीपान्तरमें योजनकी संख्या होती है ॥ ३७ ॥ चौवीस अंगुलोंसे हाथका प्रमाण कहते हैं चार हाथका दण्ड और दो सहस्र हाथका

१ संख्यावेधे च इति पाठान्तरम् ।

क्रोश होता है ॥ ३८ ॥ चार क्रोशका योजन और दश हाथका एक वंश होता है बीस हाथका निवर्तन और चौबीस हाथका क्षेत्र होता है ॥ ३९ ॥ सौ घरोंका स्थान और गृह आदिकोंका निवर्तन इन सबका स्थान ८१ इक्यासी पदोंके वास्तुसे मापकर बनावै ॥ ४० ॥ चल और अत्यन्त स्थिरभेदसे दो प्रकारके प्रासाद कहे हैं. चौसठ ६४ प्रकारके मण्डप और देवताओंके आश्रय प्राकार ॥ ४१ ॥ और विशेष कर जो छत्र (तम्बू) हैं और जो आठ प्रकारके मण्डप हैं इन सबकी कल्पनाभी ६४ पदके वास्तुसेही करे ॥ ४२ ॥ नगर ग्राम कोट और राजाओंके

चतुष्क्रोशं योजनं तु वशो दशकरैर्मितः । निवर्त्तनं विंशतिकरैः क्षेत्रं तच्च चतुष्करैः ॥ ३९ ॥ शतवेश्मनि देशांश्च गृहादीनां निवर्त्तनम् । एकाशीतिपदेनैव सर्वं स्थानं च मापयेत् ॥ ४० ॥ प्रासादा द्विविधाः प्रोक्ताश्चलाः स्थिरतरास्तथा । मण्डपाश्च चतुष्षष्टिः प्राकारा देवताश्रयाः ॥ ४१ ॥ विशेषेणापि ये छात्रास्तथा ये चाष्टमण्डपाः । चतुष्षष्टिपदेनैव सर्वानेतान्प्रमापयेत् ॥ ४२ ॥ नगरग्रामकोटादि स्थावराणि च भूभृताम् । स्थपतिस्थास्थितयदिप्रविभागेन मापयेत् ॥ ४३ ॥ स्निग्धादिभूभागसमुत्थितानां न्यग्रोधबिल्वद्रुमखादिराणाम् । शमीवटोदुम्बरदेवदारुक्षीरस्वदेशोत्थफलद्रुमाणाम् ॥ ४४ ॥ उपोषितः शिल्पिजनस्तु येषां मध्यात्तु तीक्ष्णेन कुठारकेण । छिन्द्यात्ततो दिक्पतितोत्तरस्यां शुभे विलग्ने परिगृह्य शंकुम् ॥ ४५ ॥

स्थावर गृह इनको स्थपति (प्रधान पुरुष कारीगर) के यहां स्थित जो यति अर्थात् अकस्मात् आयाहुआ संन्यासी उसके प्रमाणसे मापै ॥ ४३ ॥ स्निग्धआदि भूमिके भागमें पैदा हुए जो वट बेल खैर शमी न्यग्रोध गूलर देवदारु क्षीरके वृक्ष और अपने देशमें पैदाहुए फलके वृक्ष ॥ ४४ ॥ इन सबको उपवास किया है जिसने ऐसा शिल्पीजन मध्यभागमें तीक्ष्ण कुठारसे छेदन करे फिर (दिशाके पतिसे) उत्तर दिशामें पतितवृक्षसे शुभ लग्नमें शंकु (खूँटी) आदिको ग्रहण करके ॥ ४५ ॥ उस शंकुके चारोंतरफ चार हाथभर वा उसके आधे प्रमाणसे भूमिको ग्रहण करके छेदन किये हुए उन पूर्वोक्त वृक्षोंको लेजाकर तबतक रक्खे जबतक शंकुकी प्रतिष्ठाकी सनानता हो ॥ ४६ ॥ ईशकोन (ईशाण) की नन्दन्ती (शिला) को शुक्ला अग्निकोणकी सुभगा और नैर्ऋतकोणको सुमंगली और वायुकोणकी भद्रंकरी नाम कहते हैं ॥ ४७ ॥ वृष अश्व पुरुष नाग इनके समान पैरोंसे क्रमसे अंकित जो नन्दन्ती आदि शिला हैं उनका ऐसियोंका ग्रहण करना कहा है जो अखण्डित हों

करप्रमाणं परतश्चतस्रस्तदर्द्धमानेन ततोऽनुगृह्य । नीत्वा न्यसेत्तानि गृहे च तावद्यावत्प्रतिष्ठानसमश्च शङ्कोः ॥ ४६ ॥ नन्दन्ति शुक्ला कथितैशकोणे हुताशनाख्ये सुभगेति चान्या । सुमङ्गली नैर्ऋतिभागसंस्था भद्रङ्करी मारुतकोणयाता ॥ ४७ ॥ वृषाश्वपुन्नागपदाङ्किताना नन्दादिकानां क्रमशश्शिलानाम् । अखण्डितानां सुदृढीकृतानां सुलक्षणानां ग्रहणं निरुक्तम् ॥ ४८ ॥ कूर्मश्च शेषश्च जनार्द्दनः श्रीर्ध्रुवश्च मध्ये भवनस्य संस्थाः । निवेशनीयाः क्रमशः शिलानां प्रमाणमेन्तन्मुनिभिः प्रदिष्टम् ॥ ४९ ॥ शिलाप्रमाणं क्रमशः प्रदिष्टं वर्णानुपूर्व्येण तथाङ्गुलानाम् । अथैकविंशं घनविश्वनन्दाविस्तारके व्यापमितं तदर्धम् ॥ ५० ॥ तदर्धमानं त्वथ पिंडिका स्यादूर्ध्वाधिका न्यूनतरा न कार्या । प्रमाणहीना सुतनाशकारिणी व्यङ्गाव्यय भ्रष्टविवर्णदेहा ॥५१॥

भली प्रकार दृढ हों और जो शुभलक्षणकी हों ॥ ४८ ॥ उन शिलाओंके मध्यमें क्रमसे कूर्म्म (कच्छप) शेष जनार्दन और श्री ध्रुव इन चारोंके भवनके मध्यमें स्थितिके लिये स्थापन करे यह प्रमाण मुनियोंने कहा है ॥ ४९ ॥ शिलाओंका प्रमाण वर्णोंके क्रमसे यह कहा है कि, इक्कीस २१ घन [१७] तेरह १३ नन्द [९] इतने अंगुलोंका विस्तार वर्णोंके क्रमसे जानना और इनसे आधा व्यास होता है ॥ ५० ॥ उससे आधा प्रमाण पिण्डिकाका होता है वह ऊपरको अधिक बनानी अत्यन्त न्यून न बनानी और प्रमाणसे हीन होय तो पुत्रके नाशको

करती है और व्यंग (टूटी) भ्रष्ट और विवर्ण देह (मैली) व्यय अर्थात अधिक खर्च वा नाशको करती है ॥ ५१ ॥ धनकी श्री नष्टता को करती है. विस्तारके घरका जो प्रमाण हो उसके समान शिल्पिजनोंके अनुकूल शिला बनवानी, पत्थरके घरमें शिला पत्थरकी ही बनवानी, शिलाके घरमें शिलाओंसे बनवानी और ईंटके घरमें ईंटकाही पीठ कहा है ॥५२॥ भद्रनामके घरमें मूलपाद शिलास्थापन आदिका कहा है और पक्की ईंटोंके घरमें ईंटोंकाही मूलपाद बनवावे ॥ ५३ ॥ ईंटोंकाही बनवायेहुए घरमें वास्तुके विषे शिलाके प्रमाणको देखना

धनार्त्तिदा प्रस्तरगेहमाने कार्या शिला शिल्पिजनानुकूला। पाषाणगेहे कर्तव्या शिला पाषाणसंभवा। शैलजे शैलजः पीठश्चैष्टके चैष्टकः स्मृतः ॥ ५२ ॥ शिलान्यासादिको भद्रे मूलपादो विधीयते। पक्वेष्टनिर्मिते चैव इष्टकानां च कारयेत् ॥ ५३ ॥ इष्टकानिर्मिते गेहे प्रमाणमिह लक्षयेत्।। अपरेषां गृहाणां तु शिलामानं न चिन्तयेत् ॥ ५४ ॥ आधारभूता तु शिला प्रकल्प्या दृढा मनोज्ञा परिमाणयुक्ता। सल्लक्षणा चापरिमाणमाना न चाधिका न्यूनतरा न कृष्णा ॥५५॥ द्वाराधिपादीन्पतयो गजाश्वाः सम्पूजनीया बलिभिः समंत्रैः। स्नानार्थमानीय सुतीर्थतोयं ततोपहारैः प्रतिपूज्य कुम्भम् ॥५६॥ ध्रुवे शिलायास्तु ततः खनित्वा कुम्भं प्रतिष्ठाप्य शराङ्गुलीयम्। विप्रादिवर्णानुगतः प्रशस्तस्तदर्द्धमानं तु तदर्द्धमानम् ॥ ५७ ॥

और अन्य घरोंमें शिलाके प्रमाणकी चिन्ता न करनी ॥ ५४ ॥ आधारकी जो शिला है वह ऐसी बनवानी जो दृढ मनोहर परिमाणसे युक्त उत्तम जिसके लक्षण हों जो परिमाणके मानसे न अधिक न अत्यन्त न्यून हो और जिसका रंग काला हो ॥ ५५ ॥ द्वारके अधिप आदि स्वामी गज अश्व इनका बलि और मंत्रोंसे भलीप्रकार पूजन करे फिर स्नानके लिये सुन्दर तीर्थके जलको लाकर पूजाकी सामग्रियोंसे कुंभका पूजन कर ॥ ५६ ॥ फिर शिलाके ध्रुवभागमें पांच अगुल खोदकर इस कुंभका स्थापन करे वह कुम्भ ब्राह्मण आदि वर्णोंके अनुसार आधे २ न्यून प्रमाणसे प्रशस्त होता है ॥ ५७ ॥ उस कुंभको जल अक्षत व्रीहि पंचगव्य मधु घृत आदिसे भलीप्रकार पूर्ण करके ॥ ५८ ॥ शिलाके स्थापन समयमें सामग्रियोंको इकट्ठी करे समुद्रमें जितने रत्न हों उनको और सुवर्ण चांदी सर्व बीज गन्ध शर कुशा ॥ ५९ ॥ सफेद पुष्प घी सफेद मधु गोरोचन आमिष (मांस) और मदिरा नानाप्रकारके फल ॥ ६० ॥ नैवेद्यके लिये पक्वान्न और ऐसे भूषण जो सफेद पीले रक्त और कृष्णवर्णके क्रमसे हों ॥ ६१ ॥ गन्धआदि वस्त्र और पुष्प इनको वास्तुविधानके ज्ञाताओंसे बडी सावधानीसे इकट्ठे कर

जलाक्षतव्रीहिसपञ्चगव्यमध्वाज्यजात परिपूर्य्य सम्यक् ॥५८॥ शिलाविन्यासकाले तु सम्भारांश्चोपकल्पयेत्। समुद्रे यानि रत्नानि सुवर्णं रजतं तथा। सर्वबीजानि गन्धाश्च शरा दर्भास्तथैव च ॥५९॥ शुक्लाः सुमनसः सर्पिः श्वेतञ्च मधु रोचना। आमिषञ्च तथा मद्यं फलानि विविधानि च ॥६०॥ नैवेद्यार्थं च पक्वान्नं वस्त्राण्याभरणानि च। श्वेतं पीतं तथा रक्तं कृष्णं वर्णक्रमेण च ॥६१॥ गन्धादींश्चैव वस्त्रं च पुष्पाणि च तथैव च। वास्तुविद्याविधानज्ञैः कारयेत्सुसमाहितः ॥ ६२ ॥ इति वास्तुशास्त्रे गृहादिनिर्माणे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ प्रोक्तं यद्भवता सम्यक्प्रासादानां यथाक्रमम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि वास्तुदेहस्य लक्षणम् ॥ १ ॥ पुरा स भगवान्वास्तुपुरुषः परिकीर्तितः। पूर्वोत्तरमुखो वास्तुपुरुषः परिकल्पितः ॥ २ ॥ देवैः सेन्द्रादिभिस्तस्मिन्काले भूमौ निपातितः। अवाङ्मुखो निपतित ईशान्यां दिशि संस्थितः ॥ ३ ॥

वावे ॥ ६२ ॥ इति पण्डित मिहिरचंद्रकृत भाषाविवृतिसहिते वास्तुशास्त्रे गृहादिनिर्माणवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ जो आपने भली प्रकार प्रासादोंका क्रम कहा वह हमने सुना. अब वास्तुदेहके लक्षणको सुना चाहते हैं ॥ १ ॥ पहिले भगवान् वास्तुपुरुष आपने कहा और पूर्वोत्तरमुख वास्तुपुरुषकी रचना आपने कही ॥ २ ॥ इन्द्र आदि देवताओंने उस कालमें उसे भूमिमें पतन किया और वह नीचेको मुख

किये गिरा और ईशानदिशामें स्थितहुआ ॥ ३ ॥ उसके शिरभागमें अग्नि स्थित है मुखमें जल स्तनमें यम उत्तरभागमें स्थित आपवत्स वामस्तनमें स्थित रहताहै ॥ ४ ॥ पर्जन्य आदि देवता नासिका नेत्र कर्ण उरःस्थल और स्कन्धोंमें स्थित रहते हैं और सम आदि पांच पुरुषो त्तमकी भुजामें स्थित करे और हस्तमें सूर्य सावित्री इनका हाथमें वितथ और गृहक्षत ॥ ५ ॥ इनका पार्श्वमें और जठर (पेट) चारों तरफ विवस्वान् स्थित रहताहै और ऊरू (जंघा) जानु स्फिकू ये यमादिशा आदिसे स्थित रहते हैं ये दक्षिणपार्श्व और वामपार्श्व दोनोंमे स्थित

शिरोभागे स्थितो वह्निर्मुखे आपः स्तने यमः । आपवत्सश्चोत्तरस्यां सव्यमार्गसमाश्रितः ॥४॥ पर्जन्याद्यास्तथा नासादृक्छ्रोरः स्थलांसगाः । सप्ताद्याः पञ्च च भुजे विन्यस्य पुरुषोत्तमे । हस्ते सविता सावित्री वितथोऽथ गृहक्षतः ॥५॥ पार्श्वे जठरे विवस्वाँश्च आस्थितः परितस्सदा । ऊरू जानू जङ्घस्फिचो यमाद्यैः परिवेष्टिताः । एते दक्षिणपार्श्वस्था वामपार्श्वे तथैव च ॥६॥ शेषा दण्डजयन्तौ च मेढ्रे ब्रह्मा हृदिस्थितः ॥ पादे समाश्रित इति पितृभिः परिवारितः । चत्वारिंशत्पञ्चयुक्ताः परितो ब्रह्मणस्तथा ॥ ७ ॥ चतुष्षष्टिपदे वास्तौ देवा ब्रह्मादयस्तथा । कोणे तेषां प्रकर्तव्यास्तिर्यक्कोष्ठगता द्विजाः ॥ ८ ॥ चतुःषष्टिपदो वास्तुः प्रासादे ब्रह्मणा स्मृतः । ब्रह्मा चतुष्पदो ह्यत्र कोणाद्यर्द्धपदाः स्मृताः ॥ ९ ॥

रहते हैं ॥६॥ शेष देवता और दण्ड जयन्त ये लिंगइन्द्रियमें स्थित रहते हैं और चरणोंमें पितरों सहित वास्तुपुरुष रहताहै (४५) पैंतालीस कोष्ठ चारों तरफ ब्रह्माके होते हैं ॥ ७ ॥ चौसठ पदके वास्तुमें ब्रह्मा आदिक देवता रहते हैं और उनके कोणमें तिरछे कोष्ठोंमें द्विज रहते हैं ॥ ८ ॥ ब्रह्माने चौसठ पदका वास्तु प्रासादमें कहा है, ब्रह्मा वास्तुमें चतुष्पद कहा है और कोणके विषे आधे २ पद क हैं ॥९॥ सोलह कोणोंमें सार्द्ध (१॥) पद दोनों भागोंमें स्थित होते हैं और बीस दो दो पदके वास्तुमें कहे हैं ॥ १० ॥ जीर्णोद्धारमें, उद्यानमें, गृहके प्रवेशमें, नवीन प्रासाद, प्रासादके परिवर्तन (बनाना) में ॥ ११ ॥ द्वारके बनवाने और प्रासाद गृहोंमें बुद्धिमान् मनुष्य पहिलेही वास्तुशान्तिको करे ॥ १२॥ वास्तुमण्डलके कोणोंमें ईशानदिशा आदिके प्रदक्षिण क्रमसे शंकुओंका रोपण (रखना) श्रेष्ठ होता है ॥ १३ ॥ 'नाग ! भूतलके विषे प्रवेश करो और समस्त लोकपाल जो आयु और बलके करनेहारे हैं वे सदैव इस ग्रहके विषे टिको' इस मन्त्रको पढकर वास्तुके कोणमें शंकुओंको

षोडशकोणगाः सार्द्धपदाश्चाथोभयस्थिताः । विंशतिर्द्विपदाश्चैव चतुष्षष्टिपदे स्मृताः ॥ १० ॥ जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा गृह निवेशने । नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने ॥ ११ ॥ द्वाराभिवर्तने तद्वत्प्रासादेषु गृहेषु च । वास्तूपशमन कुर्यात्पूर्वमेव विच क्षणः ॥ १२ ॥ वास्तुमण्डलकोणेषु ईशानादिक्रमेण च ॥ शंकूनां रोपणं शस्तं प्रादक्षिण्येन मार्गतः ॥ १३ ॥ विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वशः । अस्मिन्गृहेऽवतिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा ॥ १४॥ प्रासादारामवापीषु कूपोद्यानेषु चैव हि । तन्नाम पूर्विका रौप्या कोणे शङ्कुचतुष्टयम् ॥ १५ ॥ अग्निभ्योऽप्यथ सर्प्पेभ्यो ये चान्ये तत्समाश्रिताः । तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि पुण्य मोदनमुत्तमम् ॥ १६ ॥ एकाशीतिपदं कुर्य्याद्रेखाभिः कनकेन च । पश्चात्पिष्टेन चालिख्य सूत्रेणालोड्य सर्वतः ॥ १७ ॥ दश पूर्वायता रेखा दश चैवोत्तरायताः । सर्वा वास्तुविभागेषु विज्ञेया नवका नव ॥ १८ ॥

रक्खे ॥ १४ ॥ प्रासाद आराम वापी कूप उद्यानमें नामोच्चारणपूर्वक कोणोंमें चार शंकुओंका स्थापन करे ॥ १५ ॥ अग्नि सर्प और जो अन्य दिशामें देवता स्थित हैं उनके लिये पवित्र और उत्तम ओदनकीबलिकोदेताहूं ॥ १६ ॥ सुवर्णकी रेखाओंसे वास्तुके विषे (८१) इक्यासी पद करें फिर सूत्रको चारों तरफ रखकर चूनसे आलेखन करे ॥ १७ ॥ दशरेखा पूर्वको लम्बी और दशरेखा उत्तरको लंबी संपूर्ण वास्तु-

ओंके विभागोंमें नौ ९ नवक जानने ॥ १८ ॥ शान्ता यशोवती कांता विशाला प्राणवाहिनी सती सुमना नंदा सुभद्रा और सुस्थिता ॥ १९ ॥ ये दश १० रेखा पूर्वपश्चिमके गत (गई) होती हैं और उत्तर और दक्षिणके आश्रित ये होती हैं हिरण्या सुव्रता लक्ष्मी विभूति विमला प्रिया ॥ २० ॥ जया काला विशोका और दशमी इंद्रा कही हैं। इक्यासी पदके वास्तुमें ये शिरा कही हैं ॥ २१ ॥ श्रिया यशोवती कांता सुप्रिया परा शिवा सुशोभा सधना और नौमी इभा ॥ २२ ॥ ये नौ शिरा पूर्वसे पश्चिमपर्यंत चौंसठ पदके वास्तुमें होती हैं. धन्या धरा विशाला

शान्ता यशावती कान्ता विशाला प्राणवाहिनी । सती च सुमनानन्दा सुभद्रा सुस्थिता तथा ॥१९॥ पूर्वापरागता ह्येता उदग्या म्याश्रितास्तथा । हिरण्या सुव्रता लक्ष्मीर्विभूतिर्विमला प्रिया ॥२०॥ जया काला विशोका च तथेन्द्रा दशमी स्मृता । एकाशीतिपदे ह्येता शिराश्च परिकीर्तिताः ॥ २१ ॥ श्रिया यशोवती कान्ता सुप्रियापि परा शिवा । सुशोभा सधना ज्ञेया तथेभा नवमी स्मृता ॥ २२ ॥ पूर्वापरा तथा ह्येताश्चतुष्पष्टिपदे स्थिताः । धन्या धरा विशाला च स्थिरा रूपा गदा निशा ॥२३॥ विभवा प्रभवा चान्या सौम्यासौम्याश्रिताः शिराः । पदस्याष्टांशको भागस्तत्प्रोक्तं कर्मसंज्ञकम् ॥२४॥ पदहस्तसंख्यया सम्मितो निवेशोऽङ्गुलानि । विस्तीर्णवंशव्यासोर्द्ध्वं शिरामानं प्रचक्षते ॥२५॥ सपाता अपि वंशानां मध्यमानि समानि च । पदाना पाति तान्विद्यात्सर्वाणि भयदान्यपि ॥ २६ ॥

स्थिररूपा गदा और निशा ॥ २३ ॥ विभवा प्रभवा और सौम्या ये उत्तरदिशामें नौ ९ शिरा होती हैं पदके आठवें अंशको कर्मसंज्ञक भाग कहते हैं ॥ २४ ॥ पदके हाथकी संख्यासे जो निवेश उसे अंगुल कहते हैं. विस्तारकिये वंशका जो ऊर्ध्वभाग उतना शिरका प्रमाण कहते हैं ॥ २५ ॥ बासोंका जो सम्पात उसका भी मध्यम और समभाग जो हो वह भी शिराका मान जानना और उसके मध्यमें जो पद हो उन सबको भयके दाता जाने ॥ २६ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य उन पदोंके शुद्ध भाण्ड और कीलोंसे पीडित न करै. न स्तम्भ और शल्यके दोषोंसे पीडित करै, करै तो गृहके स्वामीको पीडा ॥ २७ ॥ उसी अवयवमें होती है जिस अवयवमें वास्तुपुरुषके हो और जिस वास्तुके अंगमें कण्डूति (खुजली) करै उसी अंगमें घरके स्वामीके कण्डूति होती है ॥ २८ ॥ होमके समयमें यज्ञ और भूमिकी परीक्षामें जहां अग्निका विकार होजाय वहां शल्यको कहै अर्थात् विघ्नकी शंका होती है ॥ २९ ॥ काष्ठके बांसमें धनकी हानि, अस्थिके बांसमें पशुओंमें पीडा और रोगका भय कहा

न तानि पीडयेत्प्राज्ञः शुचिभाण्डैश्च कीलकैः । स्तम्भैश्च शल्यदोषैश्च गृहस्वामिषु पीडनम् ॥ २७ ॥ तस्मिन्नवयवे तस्य बाधा चैव प्रजायते । कण्डूयते यदङ्गं वा गृहस्वामी तथैव च ॥ २८ ॥ होमकाले च यज्ञादौ तथा भूमिपरिक्षणे । अग्नेर्वा विकृतिर्यत्र तत्र शल्यं विनिर्दिशेत् ॥ २९ ॥ धनहानिर्दारुमये पशुपीडास्थिसंभवे । रोगास्यापि भयं प्रोक्तं नागदन्तोऽपि दूषकः ॥ ३० ॥ वंशानिमान्प्रवक्ष्यामि बहूनपि पृथक्पृथक् । वायुं यावत्तथा रोगात्पितृभ्यः शिख्यस्तथा ॥ ३१ ॥ मुख्याद्भृङ्गस्तथाशोका द्वितथं यावदेव तु । सुग्रीवाददितिं यावद्भृङ्गात्पर्जन्यमेव च ॥३२॥ एते वंशाः समाख्याताः क्वचिद्दुर्जय एव तु । एतेषां यस्तु सपातः पदमध्ये समन्ततः ॥३३॥ एतत्प्रवेशमाख्यातं त्रिशूलं कोणकं च यत् । स्तम्भन्यासेषु वर्ज्यानि तुलाबन्धेषु सर्वदा ॥३४॥

है. हाथीदांत भी दूषित है ॥ ३० ॥ इससे इन बहुत प्रकारके बांसोंको पृथक् २ कहता हूं कि, रोगसे वायुपर्यंत और शिखीसे पितरोंतक ॥ ३१ ॥ मुख्यसे भृंगतक, शोकसे वितथपर्यंत, सुग्रीवसे अदितिपर्यंत, भृंगसे पर्जन्यपर्यंत ॥ ३२ ॥ ये बांस शास्त्रकारोंने कहे हैं और कहीं दुर्जयभी कहा है इनका जो पदके मध्यमें चारों तरफका संपात है ॥ ३३ ॥ उसको प्रवेश कहते हैं वह त्रिशूल वा कोणके आकारका जो

होता है वह स्तंभोंको रखने और तुलाके रखनेमें सदैव वर्जित है ॥ ३४ ॥ संपूर्ण कर्मोंमें वास्तुपुरुष दक्षिण और अग्निकोणमें आयत (लम्बा) कहा है, इक्यासी ८१ पदके इस वास्तुमें देवताओंके स्थापनको सुनो ॥ ३५ ॥ उसमें रेखाओंके फलकोभी संक्षेपसे कहताहूं और वर्णोंके क्रमसे श्रेष्ठ अंगके स्पर्शको कहताहूं ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण शिरका स्पर्श करके, क्षत्रिय नेत्रका स्पर्श करके, वैश्य जंघाओंका स्पर्श करके और शूद्र चरणोंका स्पर्श करके वास्तुके पूजनका प्रारंभ करे ॥ ३७ ॥ अंगूठेसे वा मध्यकी अंगुलीसे वा प्रदेशिनीसे अथवा सुवर्ण चांदी आदि धातुसे

सर्वत्र वास्तुनिर्दिष्टः पितृवैश्वानरा यतः । एकाशीतिपदे ह्यस्मिन्देवतास्थापने शृणु ॥ ३५ ॥ रेखाणां च फल तत्र कथयामि समासतः । वर्णानुपूर्व्येण तथा अङ्गस्पर्शनकं परम् ॥३६॥ विप्रः स्पृष्ट्वा तथा शीर्षं चक्षुःक्षत्रियकस्तथा । वैश्यश्चोरू च शूद्रश्च पादौ स्पृष्ट्वासमारभेत् ॥३७॥ अंगुष्ठकेन वा कुर्यान्मध्यांगुल्या तथैव च । प्रदेशिन्या ह्यप तथा स्वर्णरौप्यादिधातुना ॥ ३८ ॥ मणिना,कुसुमैर्वापि तथादध्यक्षतैः फलैः । शस्त्रेण शत्रुतो मृत्युर्बन्धो लोहेन भस्मना ॥३९॥ अग्नर्भय तृणेनापि काष्ठादिलिखितेन च । नृपाद्भयं तथा वक्रे खंडे शत्रुभयं भवेत् ॥ ४० ॥ विरूपा चर्मदंतेन चांगारेणास्थिनापि वा । न शिवाय भवेद्रेखा स्वामिनो मरणं तथा ॥ ४१ ॥ अपसव्यक्रमे वैर सव्ये संपदमादिशेत् । तस्मिन्कर्मसमारंभे क्षुतं निष्ठीवितं तथा ॥ ४२ ॥

पूजनको करे ॥ ३८ ॥ अथवा मणिसे वा पुष्पोंसे वा दही अक्षत फलोंसे पूजन करे और शस्त्रसे पूजन करे तो शत्रुसे मृत्यु होती है. लोहेसे बन्धन और भस्मसे ॥ ३९ ॥ अग्निका भय, तृण और काष्ठ आदिक लिखनेसे राजासे भय होता है, वक्र (टेढा) और खंडित होनेपर शत्रुसे भय होता है ॥ ४० ॥ कुरूप रेखा, चर्म और दांतोंसे बनाई रेखा, कोला और अस्थिसे बनाई रेखा कल्याणक लिये नहीं होती और स्वामीके मरणको करती है ॥ ४१ ॥ अपसव्य (वाम) क्रमसे करै तो वैर. दक्षिणसे करै तो सम्पदा होती है. वास्तुकर्मक प्रारंभम छिका और ष्ठीवन (थूक) इनको वर्जे दे ॥ ४२ ॥ जो कठोरवाणी और जो बुरे शकुन हैं उनको वर्जकर वास्तुकर्मका प्रारंभ करै ॥ ४३ ॥ अ क च ट त प य श श ये वर्ग आठों दिशाओंमें पूर्वदिशासे लेकर स्थित हैं उसके अनन्तर फलको कहै ॥ ४४ ॥ वर्ण प्रश्नके कालमें मध्यमें एक अक्षर जो होता है उससे उसी दिशाके विषे घरमें शल्य (विघ्न) को जाने ॥ ४५ ॥ इनसे परे बाहिरके देशमें यदि दो अक्षरका प्रश्न होय तो तब गृहके मध्यमें शल्यको न जाने यह शास्त्रका निश्चय है ॥ ४६ ॥ वास्तुका ज्ञाता पुरुष सम्पूर्ण वास्तुओंमें ८१ इक्यासी पदके वास्तुको

वाचस्तु परुषास्तत्र ये चान्ये शकुनाधमाः । तान्विवर्ज्य प्रकुर्वीत वास्तुपूजनकर्मणि ॥ ४३ ॥ अकचटतपयशवर्गा इत्यष्टदिक्षु च । प्राचीप्रभृतिषु वर्णास्तत्परं कारयेत्फलम् ॥ ४४ ॥ एते वर्णाः प्रश्नकाले मध्ये पद्मैकमक्षरम् तेन शल्यं विजानीयाद्दिशि तस्यां च वेश्मनः ॥ ४५ ॥ एतेभ्यो वा परं बाह्ये प्रश्न यद्द्व्यक्षरं भवेत् । तदा शल्यं न जानीयाद्गृहमध्ये विनिश्चयः ॥ ४६ ॥ एकाशीतिपदं कुर्याद्वास्तुवित्सर्ववास्तुषु । आदौ सम्पूज्य गणपं दिक्पालान् पूजयेत्ततः ॥ ४७ ॥ धरित्र्यां कलशं स्थाप्य मातृकाः पूजयेत्ततः । नांदीश्राद्धं ततः कुर्यात्पुण्यानभ्यर्चयेत्ततः ॥ ४८ ॥ अग्निसस्थापनार्थन्तु मेखलात्रयसंयुतम् । कुण्डं कुर्याद्विधानेन योन्याकारं विशेषतः ॥४९॥ स्थंडिलं वा प्रकुर्वीत मतिमान्सर्वकर्मसु । पदस्थान्पूजयेत्सर्वान्पञ्चत्रिंशत्तथैव च ॥५०॥

करै, प्रथम गणेशजीका पूजन करके फिर दिक्पालोंका पूजन करै ॥ ४७ ॥ भूमिपर कलशका स्थापन करके फिर मातृकाओंका पूजन करै फिर नान्दीमुख श्राद्धको करे फिर उसके अनन्तर पवित्र ब्राह्मण और देवता आदिका पूजन करै ॥ ४८ ॥ अग्निकी स्थापनाके लिये तीन मेखलाओंसे युक्त विशेषकर योनिके आकारका कुण्ड बनावे ॥ ४९ ॥ अथवा बुद्धिमान् मनुष्य सम्पूर्ण कर्मोंमें स्थण्डिलकोही करै और पदमें स्थित

सम्पूर्ण देवताओंका और ३५ पैंतीस देवताओंका पूजन करै ॥ ५० ॥ शिखी देवता एक पदका कहा है और पर्जन्य भी एकही पदका होता है. जयन्त दो पदका और सूर्यभी दो पदका सत्य भृश ये दोनों दो कोष्ठके होते हैं ॥ ५१ ॥ अन्तरिक्ष एक पदका और वायु भी एक पदका है ॥ ५२ ॥ पूषा एक पदका और वितथ दो पदका होता है. दक्षिणदिशामें स्थित गृहक्षत और यम ये दोनों दो पदके होतें हैं ॥ ५३ ॥ गन्धर्व और मृगराज ये भी दो पदके कहे हैं. मृग पितृगण और दौवारिक ये एकपदके होते हैं ॥ ५४ ॥ सुग्रीव पुष्पदन्त और वरुण ये दो पदके

शिखी चैकपदं प्रोक्तः पर्जन्यश्च तथैव च । जयन्तो द्विपदः सूर्यः सत्यभृशौ द्विकोष्ठकौ ॥५१॥ पदैकमन्तरिक्षस्तु वायुश्चैकपदः स्मृतः ॥ ५२ ॥ पूषा चैकपदो ह्यस्मिन्द्विपदो वितथस्तथा । द्विपदौ दक्षिणाशास्थौ गृहक्षतयमावुभौ ॥ ५३ ॥ गन्धर्वमृगराजौ तु द्विपदौ परिकीर्तितौ । मृगः पितृगणश्चैव दौवारिकश्चैकपादकः ॥ ५४ ॥ सुग्रीवपुष्पदन्तौ च द्विपदौ वरुणस्तथा । असुरश्च तथा शोको द्विपदाः परिकीर्तिताः ॥५५॥ पापो रोगस्तथा सर्पस्त्रयश्चैकपदा मताः । मुख्यभल्लाटसोमाख्यास्त्रिपदास्ते त्रयः स्मृताः ॥ ५६ ॥ सर्पश्च द्विपदः प्रोक्तो ह्यदितिश्च तथैव च । दितिश्चैकपदा प्रोक्ता द्वात्रिंशद्बाह्यतः स्थिताः ॥५७॥ ईशानादिचतुष्कोणे संस्थितान्पूजयेद्बुधः । आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च ॥ ५८ ॥

असुर अशोक ये भी दो पदके कहे हैं ॥ ५५ ॥ पाप रोग और सर्प ये तीनों एक पदके कहे हैं, मुख भल्लाट और सोम ये तीनों भी एक एक पदके कहे हैं ॥ ५६ ॥ सर्प और आदिति ये दोनों दोदो पदके कहे हैं, दिति एक पदकी कही है, और बत्तीस ३२ देवता कोष्ठोंसे बाहिर स्थित हैं ॥ ५७ ॥ ईशानआदिचारों कोणोंमें जो स्थित हैं इनका पूजन बुद्धिमान् मनुष्य करै जल और सावित्र जय और रुद्र ॥ ५८ ॥ इनके अन्तमें स्थित जो हैं इन सबको एक एक पदमें ईशान आदि दिशाओंमें स्थित करे, अर्यमा तीन पदका और सविता एक पदका होता है ॥ ५९ ॥ विवस्वान् तीनपदका दक्षिण दिशामें होता है इंद्र एक पदका नैर्ऋतमें और मित्र एकपदका पश्चिममें कहा है ॥ ६० ॥ वायव्यमें एक पदका राजयक्ष्मा कहा है, उत्तरमें त्रिपदा और धराय एक पदके कहे हैं ॥ ६१ ॥ मध्यमें नौ ९ पदका ब्रह्मा पीत श्वेत और चतुर्भुजी कहा

तदंतगांश्चैकपदानीशानादिषु विन्यसेत् । अर्यमा त्रिपदः पूर्वे सविता च तथैकपात् ॥ ५९ ॥ विवस्वांस्त्रिपदो याम्ये इन्द्रश्चैकपदस्तथा । नैर्ऋते पश्चिमे मित्रस्त्रिपदः परिकीर्तितः ॥ ६० ॥ वायव्ये राजयक्ष्मा च एकपादः प्रकीर्तितः । उत्तरे त्रिपदाः पृथ्वीधरायश्चैकपात्तथा ॥ ६१ ॥ मध्ये नवपदो ब्रह्मा पीतः श्वेतश्चतुर्भुजः । आब्रह्मन्ब्राह्मण इति मंत्रोऽयं समुदाहृतः ॥६२॥ अर्यमा कृष्णवर्णश्च अर्यम्णा च बृहस्पतिः । सविता रक्तवर्णस्तु उपयामगृहीतकम् ॥६३॥ विवस्वाञ्छुक्लवर्णश्च विवस्वन्नादित्यमन्त्रतः । इंद्रो रक्तेन्द्रसुत्रामा मंत्रोऽयं समुदाहृतः ॥ ६४ ॥

है, उसकी पूजाका मन्त्र आब्रह्मन्ब्राह्मणः० यह कहा है ॥ ६२ ॥ अर्यमा कृष्णवर्णका और अर्यमणं बृहस्पतिम् यह उसका मंत्र कहा है, सविता (सूर्य) रक्त वर्ण और उपयाम गृहीतः० यह उसका मंत्र कहा है ॥ ६३ ॥ विवस्वान् शुक्ल वर्ण और विवस्वन्नादित्य० यह उसका मंत्र रक्त और इंद्र सुत्रामा० यह उसका मन्त्र कहा है ॥ ६४ ॥

---

१ आब्रह्मन् ब्राह्मणा ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामेनिकामेनः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् । २ अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानायचोदय । वाचं विष्णु सरस्वतीं सवितारे च वाजिनम् स्वाहा ॥ ३ उपयाम गृहीतोसि इत्यादिमंत्राः ॥ ४ विवस्वन्नादित्यैषते सोमपीथस्तस्मिन्मत्स्वाश्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पतीवाममश्नुतः। पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधाविश्वाहारप एधते गृहे ॥ ५ इन्द्रस्सुत्रामा स्ववां २ अवोभिस्सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः । बाधन्तां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥

मित्र श्वेत और तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे॰ यह उसका मंत्र कहा है और राजयक्ष्मा रक्तवर्ण और अभिगोत्राणि॰ यह उसका मन्त्र कहा है ॥ ६५ ॥ पृथ्वीधर रक्तवर्ण और पृथ्वीछन्द यह उसका मन्त्र कहा है आपवत्स शुक्र वर्ण और भवतन्न॰ यह उसका मन्त्र कहा है ॥ ६७ ॥

मित्रः श्वेतश्च तन्मित्रं वरुणस्याभिचक्षे त्विति । राजयक्ष्मा रक्तवर्णो ह्यभिगोत्राणि मन्त्रतः ॥६५॥ पृथ्वीधरो रक्तवर्णः पृथ्वी छन्दमन्त्रतः । आपवत्सः शुक्लवर्णो भवतन्नेति मन्त्रतः ॥ ६६ ॥ आपः शुक्लवर्णश्च तद्बाह्ये आपो अस्मान्मातरेति च सवि त्राग्नेयदिग्भागे शुक्लवर्णैकपात्तथा॥६७॥उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोसीतिमन्त्रतः।जयन्तः श्वेतो नैर्ऋत्ये मर्माणितेति मन्त्रतः॥६८॥

और उसके बाह्य देशमें आप शुक्र वर्ण और आपोस्मान्मातरः यह उसका मंत्र कहा है और सवित्रा॰ अग्निकोणके दिग्भागमें शुक्लवर्णका एकपद कहा है ॥ ६७ ॥ और उपयाम गृहीतोसि॰ और सवितात्वा ये उसके मंत्र कहे हैं और जयंत श्वेत मर्माणि॰ इस मंत्रसे कहा है ॥ ६८ ॥

---

१ तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरुपस्थे । अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितस्सम्भरन्ति ॥ २ अभिगोत्राणि सहसा गाहमानोदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः । दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माक ॰ सेना अवतु प्रयुत्सु ॥३पृथिवीच्छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक्छन्दो मनश्छदः कृषिश्छन्दो हिरण्यछन्दो गौश्छन्दोऽजाश्छन्दोऽश्वश्छन्दः॥४ भवतन्नस्समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञ ॰ हि॰ सिष्ट मा यज्ञपति जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः॥ ५ आपो अस्मान्मातरश्शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । विश्व॰ हिरिप्रं प्रवहन्ति देवी रुदिदाभ्यः शुचिरापूत एमि । दीक्षा तपसोस्तनूरसि तान्त्वा शिवा ॰ शग्मां परिदधे भद्रं वर्ण पुष्यन्॥ ६ सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ॥ उपयाम गृहीतोसि सावित्रोसि चनोधाश्चनोधा असि चनोमयि धेहि । जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपति भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ८ मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम् । उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयतन्त्वानुदेवामदन्तु ॥

रुद्र रक्त वायव्यदिशामें सुत्रामाणम् इस ऋचासे कहा है ईशानमें रक्तवर्णका शिखी तमीशानम्॰इस मंत्रसे कहा है॥६९॥ पीतवर्णका पर्जय महां इंद्र॰ मंत्रसे कहाहै जयंत पीतवर्णका धन्वनागा॰ इस मंत्रसे कहाहै ॥ ७० ॥ कुलिशायुध पीत वर्णकामहांइंद्र॰ इस मंत्रसे कहाहै सूर्य रक्तवर्णका

रुद्रो रक्तश्च वायव्ये सुत्रामा इति मन्त्रतः । ईशाने रक्तवर्णश्च तमीशानेति वै शिखि ॥ ६९ ॥ पर्जन्यः पीतवर्णश्च महाँ इन्द्रेति वै तथा । जयन्तः पीतवर्णश्च धन्वनागा इति स्मृतः ॥ ७० ॥ कुलिशायुधः पीतवर्णो महाँइन्द्रेति वै तथा । सूर्यो रक्तः सूर्यरश्मि र्हरिकेशेति मन्त्रतः ॥ ७१ ॥ सत्यश्च शुक्लो व्रतेन दीक्षामाप्नोति मन्त्रतः । भृशः कृष्णो मन्त्रमस्य भद्रङ्कर्णेभिरेव च ॥७२॥ अन्तरिक्षः कृष्णवर्णो वयं सोमश्च इत्यपि । वायुर्धूम्रस्तथा वर्ण आवायोरिति मन्त्रतः ॥ ७३ ॥

और सूर्यरश्मि हरिकेश इस मंत्रसे कहा है ॥ ७१ ॥ सत्य शुक्लवर्णका व्रतेनदीक्षामाप्नोति॰ इस मंत्रसे कहा है, भृश कृष्णवर्णका और इसका मंत्र भद्रं कर्णोभिः॰ यह कहा है ॥ ७२ ॥ अंतरिक्ष कृष्णवर्णका और वयंसोम॰ यह उसका मंत्र कहा है, वायु धूम्रवर्णका और आवायो॰

---

१ सुत्रामाणंपृथिवी द्यामनेहस॰सुशर्माणमदितिं॰सुप्रणीतिम् । दैवीं नाव॰स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥ २ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पति न्धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषानो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ३ महाँ २ इन्द्रो नृवदाचर्षणिप्रा उतद्विबर्हा अमिनः सहोभिः । अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुःसुकृतः कर्तृभिर्भूत् । उपयाम गृहीतोसि महेन्द्राय त्वैषते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ४ धन्वना गा धन्वनाजिञ्जयेम धन्वना तीव्राःसमदा जयेम । धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जमेय ॥ ६ महाँ २ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । हन्तु पाप्मानं योऽस्मान्द्वेष्टि । उपयाम गृहीतोसि महेन्द्राय त्वैषते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ६ सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ २ अजस्रम् । तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्संपश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥७ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दक्षियाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणाश्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ८ भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयामदेवाभद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ॰ सस्तनू भिर्व्यशेमदेवहितं यदायुः ॥ ९ वय ॰ सोमव्रतेतवमनस्तनूषु बिभ्रतः । [illegible]

यह उसका मंत्र कहा है ॥ ७३ ॥ पूषा रक्तवर्णका और पूषनतव० यह उसका मंत्र कहा है, वितथ शुक्लवर्ण सविता प्रथम० यह उसका मन्त्र कहा है ॥ ७४ ॥ गृहक्षत पीतवर्णका सवितात्वा० यह उसका मन्त्र कहा है और यम दक्षिणमें कृष्णशरीर यमाय त्वा मखाय० इस मंत्रसे कहा

पूषाच रक्तवर्णश्च पूषन्तव इतीरितः । शुक्लवर्णश्च वितथ सविता प्रथमेति च ॥ ७४ ॥ गृहक्षतः पीतवर्णः सविता त्वेति मन्त्रतः । यमः कृष्णवपुर्याम्ये यमाय त्वा मखाय च ॥ ७५ ॥ गन्धर्वो रक्तवर्णश्च पृतद्वोवेति मन्त्रतः । भृङ्गराजः कृष्णवर्णो मृत्युः सुपर्णेति वा तथा ॥ ७६ ॥ मृगः पीतश्च तद्विष्णोर्मन्त्रेण निर्ऋतिस्थितः । पितृगणा रक्तवर्णाः पितृभ्यश्चेति पूजयेत् ॥ ७७ ॥ दौवारिको रक्तवर्णो द्रविणोदाः पिपीषति । शुक्लवर्णश्च सुग्रीवः सुषुम्नः सूर्यरश्मिना ॥ ७८ ॥

है ॥ ७५ ॥ गन्धर्व रक्तवर्णका और पृतद्वोव० इस मन्त्रसे कहा है, भृंगराज कृष्णवर्णका (मृत्युः) सुपर्ण० इस मंत्रसे कहा है ॥ ७६ ॥ मृगपीतवर्णका तद्विष्णोः० इस मंत्रसे नैर्ऋत दिशामें स्थित है पितरोंके गण रक्तवर्णके पितृभ्यश्च० इस मन्त्रसे पूजित करने ॥ ७७ ॥ दौवारिक रक्तवर्ण

१ पूषन्तवव्रते वयं नरिष्येम कदाचन । स्तोत रस्त इहस्मसि ॥ २ सविता प्रथमेहन्नग्निर्द्वितीयो वायुस्तृतीय आदत्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः प्रश्चमः ऋतुःषष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे । मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वदेवा द्वादशे ॥ ३ सवितात्वासवाना सुवताग्निर्गृहपतीना सोमो वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्वाच इन्द्रोज्यैष्ठयाय रुद्रः पशुभ्यो मित्रस्सत्यो वरुणो धर्म तीनाम् ॥ ४ यमायत्वा मखायत्वा सुर्यस्य त्वा तपसे । देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि । अर्चिरसि शोचिरसि तपोसि ॥ ५ घृतद्रिष्णुस्तवते वीर्यायाद सुपर्णः पाजन्य आतिवाहसोदर्विदाते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पङ्कराजोलज आन्तरित्तः प्लवोमद्गुर्मत्स्यस्तेनदीपतये द्यावापृथिवीयःकूर्मः ॥७ तद्विष्णोः परमं पद सदा पश्यंति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवा सस्समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥८ । पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः अक्षन्पितरोऽमीमदन्त पितरोतीतृपन्तपितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥ द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्रचतिष्ठत । नेष्टादृतुभिरिष्यत ॥ १० सुषुम्णस्सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयोनाम । सनइदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ॥

द्राविणोदाः पिपीषति० यह उसका मंत्र कहा है सुग्रीव शुक्लवर्ण सुषुम्नः सूर्यरश्मि० इस मंत्रसे पूजित करना ॥ ७८ ॥ पुष्पदन्त रक्त वर्ण नक्षत्रेभ्यः० इस मत्रसे पूजित करना, वरुण शुक्ल इतरो मित्रावरुणाभ्यां० इस मंत्रसे पूजित करना ॥ ७९ ॥ आसुर पीतरक्त ये रुपाणि०

पुष्पदन्तो रक्तवर्णो नक्षत्रेभ्येति मन्त्रतः । वरुणः शुक्ल इतरो मित्रास्यवरुणास्यतः ॥ ७९ ॥ आसुरः पीतरक्तश्च येरूपाणीति मन्त्रतः । शोकः कृष्णवपुर्मन्त्रमसवेस्वाहेत्यावाहयेत् ॥ ८० ॥ पापयक्ष्मा पीतवर्णः सूर्यरश्मीति मन्त्रतः । रक्तवर्णस्तथा रोगः शिरो मे इतिकोणके ॥८१॥ द्विपदोऽहिर्वायुकोणे रक्तो नमोऽस्तुसर्पेभ्यश्च । मुख्यो रक्तवपुः कार्य इषेत्वा इति पूजयेत् ॥ ८२ ॥

इस मन्त्रसे पूजित करना, शोक कृष्णवर्णका उसका असवे स्वाहा इस मंत्रसे आवाहन करे ॥ ८० ॥ पापयक्ष्मा पीतवर्णका सूर्य रश्मि० इस मन्त्रसे पूजित करना, कोणमें स्थित रोग रक्तवर्ण है उसकी पूजा शिरो मे० इस मन्त्रसे करनी ॥ ८१ ॥ वायु कोणमे द्विपद रक्त उसकी पूजाका

१ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यस्स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहाऽर्धमासेभ्यः स्वाहामासेभ्यः स्वाहाऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहाचन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहाविश्वेभ्यो देवेभ्य स्वाहा मूलेभ्यःस्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यःस्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥ २ मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रायत्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यंः यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ ३ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति । परापुरोनिपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥४ असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहा भिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूराय स्वाहा स सर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवापतये स्वाहा ॥५ सूर्यरश्मिर्हरि केशः पुरस्तात्सविताज्यौतिरुदयाꣳअजस्रम् । तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्संपश्यन्विश्वाभुवनानि गोपाः ॥ ६ शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि । राजा मे प्राणो अमृत सम्राट्चक्षुर्विराट्श्रोत्रम् ॥ ७ नमोस्तु सर्पेभ्यो ये केच पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ इषेत्वोर्जित्वावायवस्थदेवोवः सविताप्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्रायभोगं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मामावस्तेन ईशतमाघश꣡सोध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यातबह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥

मन्त्र नमोस्तु सर्पेभ्यः० यह है मुख्य रक्तशरीर बनाना और इषेत्वा० इस मंत्रसे पूजना ॥ ८२ ॥ भल्लाटक कृष्णवर्ण बण्महां असि० इस मन्त्रसे पूजना। श्वेतवर्णका सोम उत्तरमें स्थित होता है उसका वयं सोम० इस मंत्रसे पूजन करना ॥ ८३ ॥ सर्प कृष्णवर्णका उसका उदुत्य जातवेदसं० इस मंत्रसे पूजन करना। अदिति पीतवर्णकी उसकी उतनोहिर्बुध्न्य० इस मंत्रसे पूजा करनी ॥ ८४ ॥ दिति पीत वर्णकी उसकी पूजा अदितिर्द्यौ० इस मंत्रसे ईशानकोणमें करनी. ईशान आदि क्रमसे ही इनका स्थापन और पूजन अपने अपने

भल्लाटकः कृष्णवर्णो बण्महाँअसि मन्त्रततः। सोमः श्वेतश्चोत्तरे च वयंसोमेति मन्त्रतः ॥८३॥ सर्प्पः कृष्णवपुः पूज्य उदुत्य जातवेदसम्। अदितिः पीतवर्णा तु उतनोऽहिर्बुध्न्यमन्त्रतः ॥ ८४ ॥ दितिः पीता अदितिर्द्यौर्मन्त्रेणेशानकोणके। ईशान क्रमेणैव स्थाप्याः पूज्याः स्वमन्त्रतः ॥ ८५ ॥ नाममन्त्रेन वा स्थाप्याः पूज्याश्चैव यथाक्रमम्। भूर्भुवः स्वेति मन्त्रेण प्रण वाद्येन नावकैः ॥ ८६ ॥ ईशाने चरकी स्थाप्या धूम्रवर्णाथ बाह्यगाः ईशावास्येति मन्त्रेण स्थाप्याः पूज्याः प्रयत्नतः ॥८७॥ विदारिका रक्तवर्णा अग्निदूतेति मन्त्रतः। पूतना पीतहरिता नमः स्वस्त्याय मंत्रतः ॥ ८८ ॥

मन्त्रसे करना ॥ ८५ ॥ अथवा नाममंत्रसेही स्थान पूजन क्रमसे करना अथवा ॐकार है आदिमें जिनके ऐसे भूर्भुवः स्वः इस मंत्रसे नाम ले लेकर पूजन करना ॥ ८६ ॥ रेखाओंसे बाह्य देशमें ईशानकोणके विषे चरकी स्थापन कर और उसका स्थापन और पूजन बडे यत्नसे ईशावास्य० इस मंत्रसे करे ॥ ८७ ॥ विदारिका रक्तवर्ण उसका अग्निन्दूतम्० इस मंत्रसे पूजन करे, पूतना पीली और हरितवर्णकी उसका नमस्तुत्याय० इस मंत्रसे पूजन करे ॥ ८८ ॥ पापराक्षसी कृष्णवर्णकी उसके पूजन वायव्यैः इस मंत्रसे करे और बहिर्देशमें पूर्वआदि क्रमसे उसके अनन्तर पूजन करे ॥ ८९ ॥ स्कन्धघटी रक्त और कृष्णवर्ण एह्यत्रमय० इस मंत्रसे पूजित करनी, अर्यमा दक्षिणमें कृष्णवर्णकी अर्यम्णा च बृहस्पति० इस मंत्रसे दक्षिण दिशामें पूजित करना ॥ ९० ॥ पश्चिममें रक्त वर्णका जम्भक कहा है उसका पूजन सरोभ्यो भैरवं० इस मंत्रका उच्चारण करके करे ॥ ९१ ॥ पिलिपिच्छिक पीत वर्णका उसका पूजन कारंभमर० इस मंत्रसे करे, ईशानमें भीमरूप रक्त वर्णका उसका

पापराक्षसी कृष्णाभा वायव्यैरिति मन्त्रतः। बहिरेव च पूर्वादिक्रमेण च ततोऽर्चयेत् ॥८९॥ रक्तकृष्णस्कन्धघटी एह्यत्र मयमं त्रतः। अर्यमा दक्षिणे कृष्ण अर्यम्णा च बृहस्पतिः॥९०॥पश्चिमे रक्तवर्णस्तु जम्भकः परिकीर्तितः। सरोभ्यो भैरवं मंत्र समुच्चार्य प्रपूजयेत् ॥ ९१ ॥ पिलिपिच्छिकः पीतवर्णः कारम्भमरेति मंत्रतः। भीमरूपस्तथेशाने यमाय त्वेति रक्तकः ॥ ९२ ॥ त्रिपुरारिः कृष्णवर्णस्त्र्यंबके त्वग्निकोणके। अग्निजिह्वस्तु नैर्ऋत्य असुन्वंतेति पीतकः ॥९३॥ कराला रक्तवर्णा तु वातोहत्वाहणास्थितः। हेतुकः पूर्वदिक्कृष्णो हेमन्ते ऋतुना तथा ॥ ९४ ॥ अग्निवेतालके याम्ये कृष्णोऽग्निं दूतमित्यपि। कालाख्यः पश्चिमे कृष्णो वरुणस्थात्तभन तथा ॥ ९५ ॥ एकपादः पीतवर्णः कुविदङ्गेति चोत्तरे। ईशानपूर्वयोर्मध्ये गन्धमाल्यश्च पीतकः ॥ ९६ ॥

पूजन यमायत्वा० इस मंत्रसे करे ॥९२॥ त्रिपुरारि कृष्णवर्ण है उसका त्र्यम्बक० इस मंत्रसे अग्निकोणमें पूजन करे, नैर्ऋतमें पीतवर्णका अग्नि जिह्व उसका पूजन 'असुन्वन्त०' इस मंत्रसे करे ॥९३॥ कराल रक्त वर्ण उसका पूजन'वातोहत्वाहणास्थितः०' इस मंत्रसे करे हेतुक पूर्व दिशामें कृष्णवर्णका उसका पूजन ' हेमन्ते ऋतुना०' इस मन्त्रसे करे ॥ ९४ ॥ अग्निवेताल दक्षिण दिशामें उसका पूजन दक्षिणदिशामें अग्निंदूतम्०

१ बण्महाँ२ असि सूर्यस्यबडादित्यमहा असि। महांस्ते सतो महिमापनस्यतेद्धा देवमहाँ २ असि ॥ वय ँसोमव्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ३ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतव। दृशे विश्वाय सूर्य ँ स्वाहा ॥ ४ उतनोहिर्बुध्न्यः शृणोत्वजएकपात्पृथिवी समुद्रः। विश्वेदेवा ऋतावृधो हुवानास्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ ५ अदितिर्द्यौरन्तरिक्षमदितिर्माता सपितासपुत्रः। विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥

इस मन्त्रसे करे, काल पश्चिम दिशामें कृष्णवर्णका उसका 'वरुणस्योत्तम्भनमासि०' इस मंत्रसे पूजन करे ॥ एकपाद उत्तरमें पीतवर्णक उसका 'कुविदंग' इस मंत्रसे पूजन करे, ईशान और पूर्व दिशाके मध्यमें पीत वर्णका गन्धमाल्य होता है ॥९५॥९६॥ उसका पूजन अन्तरिक्षमें 'गंधद्वारा०' इस मंत्रसे करे नैर्ऋति दिशामें बुद्धिके मध्यमें स्थित श्वेतरूपधारी ज्वालास्य है ॥ ९७ ॥ विधिसे उसका पूजन 'महीद्यौः०' इस मंत्रसे करे जो बाह्य देवता कहे हैं उनके पूजन प्रासादमें करै ॥ ९८ ॥ दुर्ग और देवालय और शल्योद्धारमें विशेषकर पूजन करे और चतुष्षष्टि हैं पद

गंधद्वारेति मन्त्रेण पूज्यमानोऽन्तरिक्षके । नैर्ऋत्यां बुद्धिमध्यस्थो ज्वालास्यः श्वेतरूपधृक् ॥ ९७ ॥ महीद्योरितिमंत्रेण पूजनीयो विधानतः । या बाह्यदेवताः प्रोक्ता प्रासादे ताः प्रपूजयेत् ॥९८॥ दुर्गे देवालये चैव शल्योद्धारे तथैव च । विशेषेणैव पूज्याश्च चतुःषष्टिपदं तथा ॥९९॥ कलशे स्थापयेदेव वरुणं वरुणो ततः । कलशं पूरयेत्तीर्थवारिणा सर्वबीजकैः ॥ १०० ॥ सर्वौषधैः सत्र रत्नगन्धैश्च विविधैस्तथा । पल्लवैः पञ्चकाषायैर्मृदा शुद्धोदकेन वा ॥ १०१ ॥ ग्रहाणां पूजनं तत्र कारयेद्वेदिकोपरि । मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् ॥१०२॥ शुंठी चम्पकमुस्ता च सर्वौषधिगणःस्मृतः । अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधसंभवाः ॥१०३॥

जिसमें ऐसे वास्तुकोभी बनावे ॥ ९९ ॥ कलशके विषे वरुणदेवका स्थापन करै और उस कलशको तीर्थके जल और सर्व बीजोंसे पूरित करै ॥१००॥ सर्वौषधि सर्वरत्न और अनेक प्रकारके गन्ध पंच कषाय और पल्लव और मिट्टी इनसे पूर्ण करे वा शुद्ध जलसे पूर्ण करे ॥१०१॥ वह वेदीके ऊपर ग्रहोंका पूजन करै मुरा जटामांसी वच कूट चंदन दोनों हलदी ॥१०२॥ शुंठी चम्पा नागरमोथा यह सर्वौषधियोंका गण कहा है. पीपल गूलर पिलखन आम्र और वड इनमें उत्पन्नहुए ॥ १०३ ॥ पंचपल्लव कहे हैं. ये सब कर्मोंमें श्रेष्ठ होते हैं. तुलसी सहदेवी विष्णुक्रान्ता शतावर ॥ १०४ ॥ यदि सौ औषधि न मिलैं तो इन मूलोंको ग्रहण करे. वड गूलर बैत ॥ १०५ ॥ अश्वत्थ (पीपल) और मूल ये पंच कषाय कहे हैं. अश्वस्थान गजस्थान बमई दो नदियोंका संगम ॥ १०६ ॥ राजद्वारका प्रवेश इनसे मिट्टी मँगाकर कलशमें डारे. सपूर्ण समुद्र नदी तलाव और जल देनेवाले नद ॥ १०७ ॥ ये सब यजमानके पापनाशक कलशमें आओ ॥ १०८ ॥ और कलशमें शिखी आदि पैंतालीस

पञ्चभंगा इमे प्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभनाः । तुलसी सहदेवी च विष्णुक्रांता शतावरी ॥ १०४ ॥ मूलान्येतानि गृह्णीयाच्छतालाभे विशेषतः । वटीवंटोदुम्बरस्य वेतसस्य तथैव च ॥ १०५ ॥ अश्वत्थश्चैव मूलश्च पञ्चकाषायकाः स्मृताः । अश्वस्थानाद्गजस्थाना द्वल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदात् ॥ १०६ ॥ राजद्वारप्रवेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् । सर्वे समुद्राःसरितः सरांसि जलदा नदाः ॥१०७॥ आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥१०८॥ शिख्यादिपञ्चचत्वारिंशद्देवांस्तत्र प्रपूजयेत् ॥ १०९ ॥ वेदमन्त्रैर्नाममन्त्रैः प्रणव व्याहृतिभिस्तथा । होमस्त्रिमेखले कार्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके ॥ ११० ॥ यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत्समिद्भिः क्षीरवृक्षकैः । पालाशैः खादिरैर्वापामार्गोदुम्बरसंभवैः ॥ १११ ॥ कुशदूर्वामयैवापि मधुसर्पिःसमन्वितैः । कार्यस्तु पञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्वैबीजैरथापि वा ॥ ११२ ॥ होमान्ते भक्ष्यभोज्यैश्च वास्तुदेशे बलि हरेत् । नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन सर्वतः ॥ ११३ ॥

४५ देवोंका पूजन करै ॥ १०९ ॥ वह पूजन वेदके मंत्र वा नामके मंत्र ॐकार वा व्याहृतियोंसे करना और हस्तभर प्रमाणके तीन मेखला वाले कुण्डमें होम करना ॥ ११० ॥ जौ कालेतिल समिध और क्षीरवृक्ष पालाश खदिर अपामार्ग गूलर इनसे होम करै ॥ १११ ॥ अथवा सहत मिलीहुई कुशा और दूबसे घृत मिलाकर करै अथवा पांच बेल वा बलकी बीजोंसे करैं ॥ ११२ ॥ होमके अन्तमें भक्ष्य और भोज्योंसे

१ कुविदङ्गयवमंतो यवश्चिद्यथादान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहषा कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राणे ॥
२ शठी इतिपाठान्तरे (कपूरकाचरी) इति भाषार्थः

वास्तुदेशमें, नमस्कार जिसके अंतम ॐकार जिसकी आदिमें हो ऐसे मंत्रसें बलिको दे ॥ ११३ ॥ क्रमसे वेदोक्तमंत्रोंसे देवताओंका पूजनकरै फिर व्याहृतियोंसे होम करै और स्विष्टकृत् होमको करै ॥ ११४ ॥ फिर पूर्णाहुतिका हवन करै और संस्रवका प्राशन अर्थात् स्रुवेके घीका भक्षण करै और विधिसे वास्तुमण्डलदेवताओंको बलि दे ॥ ११५ ॥ शिखिको घृतान्न दे, पर्जन्यको घृतान्न और कमलकी बलि दे फिर जयन्त आदि वास्तुमण्डलदेवताओंको बलि दे ॥ ११६ ॥ कुलिशायुधको पंचरत्न और पुष्टिके पदार्थ दे सूर्यको कुशा और धूम्र रक्त चंदोवा

वेदोक्तेनैव मन्त्रेण संपूज्या देवताः क्रमात् । ततो व्याहृतिभिर्होमः स्विष्टकृद्धोममेव च ॥११४॥ पूर्णाहुतिश्च जुहुयात्संस्रवप्राशनं ततः । वास्तुमण्डलदेवेभ्यो बलिं दद्याद्विधानतः ॥ ११५ ॥ घृतान्नं शिखिने दद्यात्पर्जन्याय च सोत्पलम् । जयन्तादिवास्तुमण्डलदेवेभ्यो बलिं ततः ॥ ११६ ॥ कुलिशायुधाय पञ्चरत्नं पौष्टिकसंभवम् । कौशं सूर्याय धूम्ररक्तविनापूपसक्तवैः ॥ ११७ ॥ सत्याय घृतगोधूम मत्स्यान्नञ्च भृशाय च । अन्तरिक्षाय शष्कुली मांसं वापि च शाकुनम् ॥११८॥ वायसे सक्तवः प्रोक्ताः पूष्णे लाजाः स्मृता बुधैः । वितथाय चणकान्नं मध्वन्नं च गृहक्षते ॥११९॥ यमाय पिशितान्नं तु गन्धर्वाय गन्धौदनम् । भृंगराजाय मेषस्य जिह्वायाश्च बलिं हरेत्॥१२०॥मृगाय यावकं दद्याद्बलिं नीलपदस्तथा।पितृभ्यः कृशरान्नंच तथा दौवारिकाय च॥१२१॥

अपूप और सत्तु दे ॥ ११७ ॥ सत्यको घी और गेहूं दे. भृशको मत्स्य और अन्न दे अन्तरिक्षको शष्कुलि (पूरी) और पक्षियोंका मांस दे ॥ ११८ ॥ वायसको सत्तु और पूषाको लाजा (खील) बुद्धिमान् मनुष्योंने कही हैं. वितथको चणकान्न, गृहक्षतको मध्वन्न दे ॥ ११९ ॥ यमको पिशितान्न (मांस) गन्धर्वको गन्धौदन, भृंगराजको मेंढके जिह्वाकी बलि दे ॥ १२० ॥ मृगको और नीलपदको जौकी बलि दे पितर और दौवारिकको कृशरान्न (खिचडी) की बलि दे ॥ १२१ ॥ सुग्रीवको दतोन कृष्णचूर्ण दंतकाष्ठ पूडे और जौं इनकी बलि दे ॥ १२२ ॥ पुष्पदन्त और वरुणको पायस (खीर) की बलि दे. और यमकी कुशाका स्तंभ पीठी और सुवर्णकी बलि दे ॥ १२३ ॥ असुरको मदिराकी बलि, शोषको घृतौदनकी बलि कही है, पापयक्ष्माको गोहकी और रोगको घी और ओदनकी बलि दे ॥ १२४ ॥ अहिको फल पुष्प नागकेसरकी बलि दे . मुख्यको घी और गेहूंकी, भल्लाटको मूंगओदनकी बलि दे ॥ १२५ ॥ सोमको पायस और घीकी, नागको पुष्टिके

दन्तकाष्ठ कृष्णपिष्टं दन्तधावनमेव च ॥ सुग्रीवाय अनूपं च यावकं तु तथैव च ॥१२२॥ पुष्पदन्ताय पायसं वरुणाय तथैव च । कुशस्तम्भं च यमं च पैष्ट हैरण्यमयं तथा॥१२३॥ असुराय सुरा प्रोक्ता शोषाय च घृतौदनम् । गोधाया वै यक्ष्मणे च रोगाय घृतमोदनम् ॥ १२४ ॥ अहये फलपुष्पाणि नागकेशर इत्यपि । मुख्याय घृतगोधूमं भल्लाटे मुद्गमोदनम् ॥ १२५ ॥ सोमाय पायसघृतं नागे पौष्टिकशालकम् । अदित्यै पोलिका दित्यै पूरिकाया बलिः स्मृतः ॥ १२६ ॥ अद्भ्योऽपि क्षीरं च तथा सवित्रे च कुशौदनम् । लड्डुकामरिचश्चैव जयाय घृतचन्दनम् ॥१२७॥ रुद्राय पायसगुडमर्यम्णे शर्करान्वितम् । पायस च सवित्रे तु गुडापूपबलिः स्मृतः ॥१२८॥ विवस्वते तथा देयं रक्तचन्दनपायसम् । इन्द्राय सघृतं देयं हरितालौदनं तथा ॥ १२९ ॥

पदार्थ और शालियोंकी, अदितिको पोलियोंकी अर्थात् रोटियोंकी, दितिको पूरियोंकी बलि कही है ॥ १२६ ॥ जलको दूध, सविताको कुशौदन देना, जयको लड्डू और मिर्च, घृत और चंदन ॥ १२७ ॥ रुद्रको दे पायस और गुड अर्यमाको, और खांड मिला हुआ पायस भी अर्यमाको दे और सविताको गुड और अपूपोंकी बलि कही है ॥ १२८ ॥ विवस्वानको रक्तचंदन और पायसकी बलि दे और इंद्रको घी

सहित हरिताल और ओदनकी बलि दे ॥ १२९ ॥ मित्रको घृतौदन कच्चे मांस और सहतकी बलि दे. राजयक्ष्मा पृथ्वीधर और मितौजस इनको ॥ १३० ॥ मांस कूष्माण्डकी बलि दे. आपवत्सको दधिकी बलि दे. ब्रह्माको पंचगव्य जौ तिल अक्षत दधि इनकी बलि दे ॥१३१॥ अनेक प्रकारकेभक्ष्य भोज्य और अनेक प्रकारकेफल सम्पूर्णदेवताओंको दे,इस पूर्वोक्त रीतिसे भलीप्रकार बलि देकर सम्पूर्ण देवताओंकोसुवर्ण दे॥१३२॥ य संपूर्ण ॐकार जिनकी आदिमें और चतुर्थीबिभक्ति जिनके अन्तमें ऐसे नाममन्त्रोंसे मन्त्रके ज्ञाताको देने और सब देवताओंको सुवर्ण देना

घृतौदनं च मित्राय आममांसमधुस्तथा । राजयक्ष्मणे च पृथ्वीधराय च मितौजसे ॥१३०॥ मांसानिकूष्माण्डमिति आपवत्साय वै दधि । ब्रह्मणे पञ्चगव्यं च यवं तिलाक्षतं दधि ॥१३१॥ विविधान्भक्ष्यभोज्यांश्च फलानि विविधानि च । यवं दत्त्वा बलिं सम्यग्ददद्यात्तेभ्यो हिरण्मयम् ॥१३२॥ प्रणवाद्यैश्चतुर्थ्यन्तैर्नाममन्त्रेण मन्त्रवित् । सर्वेभ्योऽपि हिरण्यं च ब्रह्मणे गां पयस्विनीम् ॥ १३३ ॥ अथवा पायस दद्यात्सर्वेभ्यश्च सदीपकम् । ततो बाह्यस्थितानां तु बलिं दद्याद्विधानतः ॥ १३४ ॥ चरक्यै माषभक्तं च सघृत पद्मकेशरम् । हविश्चैव तथाग्नेये वितानकविदारिके ॥ १३५ ॥ माषभक्तं सरुधिरं हरिद्राभक्तमेव च । नैर्ऋत्यां च पूतनायै माषभक्तेन संयुतम् ॥१३६॥ रुधिरास्थिपीतरक्तं बलिं देव्यै निवेदयेत । वायव्ये पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरासवम् ॥१३७॥

और ब्रह्माको दूध देती हुई गौको दे ॥१३३॥ अथवा सब देवताओंको दीपक सहित पायस दे फिर विधिसे बाह्यमें स्थित देवताओंको बलि दे ॥१३४॥ चरकीको उडदोंका भक्त और घीसहित पद्मकेशर और हवि दे और अग्निकोणमें विदारिकाको चन्दोवा ॥१३५॥ माष भक्त रुधिर और हरिद्राभक्त दे और नैर्ऋतमें पूतनाको माषभक्तसे मिले हुए ॥ १३६ ॥ रुधिर अस्थि और पीतः रक्तकी बलि निवेदन करै और वायव्यमें पाप राक्षसीको मत्स्यका मांस और सुरासवका निवेदन करै ॥ १३७ ॥ फिर पूर्व आदि दिशाओंमें स्कन्दको रुधिर और सुरा दे, दक्षिणमें अर्यमाको माषभक्त निवेदन करै ॥ १३८ ॥ पश्चिममें जंभकको मांस और रुधिर दे. उत्तरमें पिलिपिच्छको रुधिरको बलि कही है ॥ १३९ ॥ इन पूर्वोक्त देवताओंको विधिसे बलि दे और तिसी प्रकार प्रसाद आदिमें इनको भलीप्रकार बलि दे ॥ १४० ॥ ईशानमें भीम रोगको कपोत और सुराकी बलि दे और वसा रुधिर मांस और कृशर अन्नकी बलिभी दे ॥ १४१ ॥ आग्नेयमें अदिति सन्धारि

ततः प्रागादितो दिक्षु स्कन्दाय रुधिरं सुरा । अर्यम्णे माषभक्तं च दक्षिणे विनिवेदयेत् ॥ १३८॥ जंभकाय तथा मांसं रुधिरं पश्चिमे न्यसेत् । पिलिपिच्छकायोत्तरे च असृग्यमबलिः स्मृतः ॥१३९॥ इत्येतेषां देवतानां बलिं दद्याद्विधानतः । प्रासादादौ तथैतेषां बलिं दद्यात्प्रयत्नतः ॥१४०॥ भीमरूपाय ईशाने कपोतकसुरा बलिः । वसारुधिरमांसानां कृशरायास्तथैव च ॥१४१॥ आग्नेयादितिसन्धारी त्रिपुरान्तकरूपधृक् । अग्निजिह्वस्तु नैर्ऋत्ये दुग्धं सैन्धवसंयुतम् ॥ १४२ ॥ मांसं च रुधिरं देयं तस्मै दिक्पालिने नमः । करालिके पक्वमांसं रुधिरं सैन्धवं पयः ॥१४३॥ हेतुके पूर्वदिग्भागे बलि स्यात्पायसं ह्यसृक् । अग्निवैतालिके याम्ये रुधिरं मांसमेव च ॥१४४॥ कालाख्ये पश्चिमे दद्याद्बलिं मांसौदनस्य च । एकपादे उत्तरस्यां कृशराया बलिस्तथा ॥१४५॥

त्रिपुरान्तक रूपधृक और नैर्ऋतमें अग्निजिह्वको सैन्धव मिले दूधकी बलि दे ॥ १४२ ॥ और मांस रुधिरको बलि उस दिक्पालको नमस्कार है यह कह कर दे. करालिकको पकाया हुआ मांस रुधिर सैन्धव और दूधकी बलि दे ॥ १४३ ॥ हेतुकको पूर्व दिशामें पायस और रुधिरकी बलि होती है. अग्नि वैतालिकको दक्षिणमें रुधिर मांसकी बलि है ॥ १४४ ॥ पश्चिममें कालाख्यको मांसौदनकी बलि दे, उत्तरमें

एकपादको कुशराकी बलि दे ॥ १४५ ॥ अग्नि और पूर्वके मध्यमें वितानकको गन्धमाल्य दे नैर्ऋत और पश्चिमके मध्यमें ज्वालास्य देवता कहा है ॥ १४६ ॥ उसको दही अक्षतोंसे युक्त मोदकोंको दे, दिक्पालोंको बलि देकर फिर क्षेत्रपालको आगमोक्तमंत्र वा वेदोक्त मंत्रसे बलि दे ॥ १४७ ॥ क्षेत्रपालकी बलिका मत्र यह है कि, भगवान् क्षत्रपालको नमस्कार है और तेतीसकोटिदेवताओंके अधिपतिको और भारके जेताको प्रकाशमान् त्रिनेत्रको अपने अंगमें किंकिणी ज्वालामुख भैरवको तुरु मुरुमुरुललषषषषषकेंकार दुरित दिङ्मुख

आग्नेयपूर्वयोर्मध्ये गन्धमाल्यैर्वितानकम्। नैर्ऋत्यपश्चिमान्तस्थौ ज्वालास्यः परिकीर्तितः ॥१४६॥ तस्मै दध्यक्षतयुतमोदकानि च दापयेत् ।दिक्पालानां बलिं दत्त्वा क्षेत्रपालबलिं ततः ॥१४७॥ आगमोक्तेन मन्त्रेण वेदमंत्रेण वै तथा॥नमो भगवते क्षेत्रपालाय त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवाधिदेवाय निर्जितभाराय भासुरित्रिनेत्राय स्वांगकिङ्किणिज्वालामुखभैरवरूपिणे तुरुमुरुमुरुललषषषषषकेङ्कादुरित दिङ्मुखमहाबाहो अद्यकर्तव्ये वास्तुकर्मणि अमुक यजमानं पाहिपाहि आयुष्कर्ताक्षेमकर्ताभव अमु पशुदीपसहितंमुण्डमाषभक्त बलिं गृह्णगृह्ण स्वाहा॥१४८॥इतिबलिं दत्त्वा नैर्ऋत्यां दिशिभूतेभ्यो सन्ध्याकालेविशेषतः।बलिं दद्याद्विधानेन मन्त्रविन्नक्तभुग्यमी। पुरोहितस्तथा याज्यं गुडो दनमथापि वा॥१४९॥कुल्माषेण तु सम्मिश्रैर्यावकापूपसंयुतैः।बहुपक्वान्नसंयुक्तैर्बालक्रीडनकैस्तथा १५०

रूप हे महाबाहो ! आज करने योग्य वास्तुकर्ममें अमुक नाम यजमानकी रक्षा करो, आयुका कर्ता कुशलका कर्ता और दीपक सहित इस पशुको और माषभक्त बलिको ग्रहण करो स्वाहा० इस मन्त्रसे क्षेत्रपालको बलि देकर ॥ १४८ ॥ सन्ध्याके समयमें नैर्ऋत्य दिशामें भूतोंको शास्त्रोक्त विधानसे बलिको मन्त्रका ज्ञाता द और रात्रिमें भोजन करै संयमसे रहै. पुरोहित यजमान गुडौदन ॥ १४९ ॥ कुल्माष (रनास जिसमें मिलाहो) ऐसे जो अपूप और बहुतसे पक्वान्न जिनमें हों और बालकोंको खिलोने ॥ १५० ॥

फल अनारके बीज और मनोहर समयके फूल इनकी मात्रा जो भोजनके योग्य न हों अर्थात् अल्प अल्प बलिकर्ममें कही हैं ॥ १५१ ॥ उनके मन्त्र ये हैं कि, देवी देवता मुनींद्र त्रिभुवनके पति दानव सर्व सिद्ध यक्ष राक्षस नाग गरुड हैं मुख्य जिनमें ऐसे पक्षी गुह्यक देवताओंके देव डाकिनी देवताओंकी वेश्या हरि समुद्रके पति मातर विघ्ननाथ प्रेत भूत पिशाच श्मशान और नगर आदिके अधिपति और क्षेत्रपाल ॥ १५२ ॥ गन्धर्व और संपूर्ण किन्नर जटाधारी पितर ग्रह कूष्माण्डपूतना रोग ज्वर वैतालिक शिव ॥१५३॥ रुधिरसे युक्त और पिशुन (चुगल)

फलैश्च दाडिमीबीजैः कालपुष्पैर्मनोरमैः । मात्राननाशनमिता बलिकर्मणि चोदिताः ॥१५१॥ मन्त्राः—देव्यो देवामुनीन्द्रास्त्रिभुवनपतयो दानवाः सर्वसिद्धा यक्षा रक्षांसि नागा गरुडमुखखगा गुह्यका देवदेवाः। डाकिन्यो देववेश्या हरिदधिपतयो मातरोविघ्ननाथाः प्रेता भूताःपिशाचाः पितृवननगराद्याधिपाःक्षेत्रपालाः ॥ १५२ ॥ गन्धर्वाः किन्नरास्सर्वे जटिकाः पितरो ग्रहाः । कूष्माण्डाः पूतना रोगा ज्वरा वैतालिकाः शिवाः ॥ १५३ ॥ असृक्प्लुताश्च पिशुना भक्षमांसास्त्वनेकशः । लम्बक्रोडास्तथा ह्रस्वा दीर्घाः शुक्लास्तथैव च ॥१५४॥ खञ्जाः स्थूलास्तथैकाक्षा नानापक्षिमुखास्तथा । व्यालास्या उष्ट्रवक्त्राश्च अवक्त्राः क्रोडवर्जिताः ॥ १५५ ॥ धमनाभास्तमालाभा । द्विपाभा मेघसन्निभाः । बगलाभाः क्षितिनिभा अशनिस्वनसन्निभाः ॥ १५६ ॥

और अनेक प्रकारके मांसके भक्षक लम्बक्रोड दीर्घ शुक्ल ॥ १५४ ॥ खञ्ज (लँगडे) स्थूल एकाक्ष अनेक प्रकारके वे जिनके पक्षियोंके समान मुख हों सर्पके समान जिनके मुख हों और उष्ट्रमुख और मुखसे हीन और क्रोड (छाती) से हीन ॥ १५५ ॥ धमनके समान जिनकी कान्ति और तमालके समान जिनकी कान्ति है हाथीके समान और मेघकी समान जिनकी कान्ति बगलेके समान और क्षितिके तुल्य वज्रके

शब्दके समान हैं शब्द जिनका ॥ १५६ ॥ शीघ्रगामी पवनके समान जिनका वेग और वायुके तुल्य जिनका वेग है जिनके अनेक मुख हैं अनेक शिर हैं और अनेक भुजाओंसे जो युक्त हैं ॥ १५७ ॥ जिनके बहुत पाद हैं और जिनके बहुत नेत्र हैं जो संपूर्ण भूषणोंसे भूषित हैं जिनका विकट रूप है और जो मुकुटके धारी हैं और जो रत्नके धारी हैं ॥ १५८ ॥ जिनका कोटियों सूर्यके समान तेज है और जिनका विजलीके समान तेज है, जिनका कपिल रंग है और अग्निके समान वर्ण हैं ऐसे जो अनेक रूपके प्रमथ हैं ॥ १५९ ॥ वे संपूर्ण बलिको

द्रुतगाश्च मनोगाश्च वायुवेगसमाश्च ये । बहुवक्त्रा बहुशिरा बहुबाहुसमन्विताः ॥ १५७ ॥ बहुपादा बहुदृशः सर्पाभरणभूषिताः । विकटा मुकुटाः केचित्तथा वै रत्नधारिणः ॥१५८॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशा विद्युत्सदृशवर्चसः । कपिला हुतभुग्वर्णाः प्रमथा बहुरूपिणः॥१५९॥गृह्णन्तु बलयस्सर्वे तृप्ता यान्तु बलिर्नमः । आचार्यस्तु ततो नीत्वा कलशं मंत्रमंत्रितम् ॥१६०॥ स्वयं प्रत्यङ्मुखो भूत्वा प्राङ्मुखं यजमानकम् । स्वशाखोक्तेन मंत्रेण आगमोक्तेन वा तथा ॥ १६१ ॥ स्नापयेत्कुम्भतोयेन मंत्रैः पौराणिकैस्तथा वैदिकैर्वा तथा मन्त्रैः सवस्त्रस्थः कुटुम्बवान् ॥१६२॥ सदारपुत्रमेतस्य यजमानस्य ऋत्विजः । सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः ॥ १६३ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च शंभुश्च साध्याश्च समरुद्गणाः । आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ ॥ १६४ ॥

ग्रहण करो. तृप्त होकर जाओ उनके प्रति नमस्कार है फिर आचार्य मन्त्रोंसे अभिमंत्रित किये हुए कलशको लेकर ॥ १६० ॥ आप पश्चिमको मुख करके पूर्वाभिमुख बैठे हुए यजमानको अपनी शाखामें कहे वेदके मन्त्रोंसे ॥ १६१ ॥ अथवा पौराणिक मन्त्रोंसे वस्त्रपर स्थित कुटुम्बसहित पूर्वोक्त यजमानको घटके जलसे स्नान करवावे ॥ १६२ ॥ स्त्री और पुत्रसहित यजमानको ऋत्विजभी स्नान करवावे देवता और जो पुरातन सिद्ध हैं वे भी हे यजमान ! आपका अभिषेक करो ॥ १६३ ॥ ब्रह्मा विष्णु शंभु साध्य मरुद्गण आदित्य वसु रुद्र और वैद्योंमें उत्तम अश्विनीकुमार ॥ १६४ ॥ देवताओंकी माता अदिति स्वाहा सिद्धि सरस्वती कीर्ति लक्ष्मी दिति श्री सिनीवाली और कुहू ॥ १६५ ॥ दिति सुरसा विनता कद्रू और जो देवताओंकी पत्नी शास्त्रोंमें कही हैं और देवताओंकी माता ॥ १६६ ॥ भो यजमान ! ये सब आपका अभिषेक करो और शुभ अप्सराओंके गण नक्षत्र मुहूर्त और अहोरात्रकी संधि ॥ १६७ ॥ संवत्सर जिनके स्वामी कला काष्ठा क्षण और

अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती । कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ॥ १६५ ॥ दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च । देव पत्न्यश्च याः प्रोक्ता देवमातर एव च ॥ १६६ ॥ सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु शुभाश्चाप्सरसां गणाः । नक्षत्राणि मुहूर्त्ताश्च याश्चाहोरात्रसन्धयः ॥ १६७ ॥ संवत्सरा दिनेशाश्च कलाकाष्ठाक्षणा लवाः । सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः ॥ १६८ ॥ एते चान्ये च मुनयो वेदव्रतपरायणाः । सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदानाश्च तपोधनाः ॥ १६९ ॥ वैमानिकाः सुरगणाः सरवैः सागरैः सह । मुनयश्च महाभागा नागाः किम्पुरुषाः खगाः ॥ १७० ॥ वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायनाश्च ये । सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च ॥ १७१ ॥ मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः । भृगुः सनत्कुमारश्च सनकोऽथ सनन्दनः ॥ १७२ ॥

लव शुभदायी कालके अवयव भो यजमान ! ये सब आपका अभिषेक करो ॥ १६८ ॥ ये देवता और अन्य जो वेदव्रतमें परायण मुनि हैं वे शिष्योंसहित दानी और तपोधन भो यजमान ! आपका अभिषेक करो ॥ १६९ ॥ विमानमें स्थित देवताओंके गण शब्दायमान समुद्र महाभागी मुनि नाग किंपुरुष खग ॥ १७० ॥ महाभागी वैखानस आकाशगामी पक्षी स्त्रियोंसहित सप्त ऋषि और जो ध्रुवस्थान हैं ॥१७१ ॥ मरीचि

अत्रि पुलह पुलस्त्य क्रतु अंगिरा भृगु सनत्कुमार सनक सनन्दन ॥ १७२ ॥ सनातन दक्ष जैगीषव्य भलन्दन एकत द्वित त्रित जाबालि और कश्यप ॥ १७३ ॥ दुर्वासा दुर्विनीत कण्व कात्यायन और दीर्घतपा मार्कण्डेय शुनःशेफ और विदूरथ ॥ १७४ ॥ और्व संवर्तक च्यवन अत्रि पराशर द्वैपायन यवक्रीत और अनुजसहित देवराज ॥ १७५ ॥ पर्वत वृक्ष वल्ली और पुण्यस्थान प्रजापति दिति और विश्वकी माता गौ ॥ १७६ ॥ दिव्य वाहन और संपूर्ण चराचर लोक अग्नि पितर मेघ आकाश दिशा जल ॥ १७७ ॥ ये और वेदके व्रतमें

सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्यो भलन्दनः । एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जाबालिकश्यपौ ॥ १७३ ॥ दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा । मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनशेफो विदूरथः ॥ १७४ ॥ और्वः संवर्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः । द्वैपायनो यवक्रीतो देवराजः सहानुजः ॥१७५॥ पर्वतास्तरवो वल्लयः पुण्यान्यायतनानि च । प्रजापतिर्दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः ॥ १७६ ॥ वाहनानि च दिव्यानि सर्वे लोकाश्चराचराः । अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम् ॥ १७७ ॥ एते चान्ये च बहवो वेदव्रतपरायणाः । सेन्द्रा देवगणाः सर्वे पुण्यश्रवणकीर्तनाः ॥ १७८ ॥ तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणे । यथाभिषिक्तो मघवानेतैर्मुदितमानसैः ॥१७९॥ इत्येतैश्चार्थकल्पैस्तु सहितैः समरुद्गणैः । अभिषेकं प्रकुर्वीत मन्त्रैः पौराणिकैस्तथा ॥ १८० ॥ ततः शुद्धोदकैः स्नानं यजमानस्य कारयेत् । वास्तुमण्डलमध्ये तु ब्रह्मस्थानेप्रपूजयेत् ॥ १८१ ॥

परायण अन्य बहुतसे ऋषि इन्द्रसहित देवताओंके गण और जिनका पुण्य यश कीर्तन है वे सब ॥ १७८ ॥ सम्पूर्ण उत्पातोंकी शान्तिके लिये जलोंसे आपका उस प्रकार अभिषेक करो जैसे प्रसन्न मनसे इन्होंने इन्द्रका अभिषेक किया है ॥ १७९ ॥ अर्थके जाननेमें समर्थ इन देवताओंका नाम लेकर मरुद्गण सहित पुराणके मन्त्रोंसे अभिषेक करे ॥ १८० ॥ फिर शुद्धजलोंसे यजमानको अभिषेक करावे फिर वास्तुमण्डलले विप्र ब्रह्माके स्थानमें उस पृथ्वीका पूजन करे ॥ १८१ ॥ जिसका सुन्दररूप जो दिव्यरूप और आभरणोंसे युक्त है जो स्त्रीरूप है और प्रमदावेषको धारण कररही है और जो भली प्रकार मनोहर है ॥ १८२ ॥ महाव्याहृति है पूर्व जिसके ऐसे उस मंत्रसे पृथ्वीका पूजन करे और धारय०--इस मन्त्रसे भली प्रकार प्रार्थना करके ॥ १८३ ॥ वास्तु सब देवतारूप है वास्तु देवतारूप परमेश्वर है फिर अपने अपने नाममन्त्रोंसे ध्यान करके पूजन करे ॥ १८४ ॥ प्रजाके ईश्वर चतुर्मुख देवका आवाहन करे फिर गन्धआदिसे उसका बारम्बार

सुरूपां पृथुवीं दिव्यरूपाभरणसयुताम् ॥ स्त्रीरूपां प्रमदावेषधारिणीं सुमनोहराम् ॥ १८२ ॥ महाव्याहृतिपूर्वेण पूजयेत्तां धरां पुनः । धारयेति च मन्त्रेण सम्प्रार्थ्य च पुनः पुनः ॥ १८३ ॥ सर्वदेवमयं वास्तु वास्तुदेवमयं परम् । ततःस्वनाममन्त्रेण ध्यात्वा तत्र च पूजयेत् ॥ १८४ ॥ ततश्चतुर्मुखं देवं प्रजेशं चाह्वयेत्ततः गन्धादिभिश्च तं पूज्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥१८५॥ वास्तुपुरुष नमस्तेस्तु भूमिशय्यारत प्रभो । मद्गेहे धनधान्यादिसमृद्धिं कुरु सर्वदा ॥ १८६ ॥ वाचयित्वा ततः स्वस्ति कर्कस्थं परिगृह्य च । सूत्रमार्गेण तोयस्य धारां प्रादक्षिणेन च ॥ १८७ ॥ पातयेत्तेन मार्गेण सर्वबीजानि चैव हि । सर्वबीजे जलैरेव तन्मार्गेणापि संचरेत् ॥ १८८ ॥ इति वास्तुविधानन्तु कृत्वा तां स्नानमण्डपात् ॥ १८९ ॥

पूजन और प्रणाम करके कहै ॥ १८५ ॥ हे वास्तुपुरुष ! हे भूमिशय्यामें रत ! हे प्रभो ! आपको नमस्कार है मेरे घरमें धन धान्य आदिकी वृद्धिको सदैव करो ॥ १८६ ॥ फिर स्वस्तिवाचन कराकर और कर्क (करवा) को ग्रहण करके सूत्रके मार्गसे और प्रदक्षिण क्रमसे जलकी धारको ॥ १८७ ॥ यजमानसे गिरावे उसीमार्गसे सर्व बीजोंको गिरवावे और सर्व बीजके जलोंको भी उसी मार्गसे गिरवावे और यजमानभी उसी मार्गसे गमन करे ॥ १८८ ॥ इस प्रकार वास्तुविधानको गुणोंसे युक्त सूत्रधार उस शिलाको शिलामण्डपसे भली प्रकार लाकर

भलीप्रकार साधन कियेहुए घरके मध्यमें दिशाका साधन करें अर्थात् शिलास्थापनके देशका निश्चय करे, ईशान आदि दिशाओंके क्रमसे सुवर्णके कुद्दाल (खुदाला) से ॥ १८९--१९१ ॥ कोणभागमें और विशेषकर मध्यभागमें खोदकर नाभिपर्यन्त गर्तमें शिलाका स्थापन शुभ है ॥ १९२ ॥ शिलास्थापन समयमें सूत्रका छेद हो जाय तो मृत्यु और कीलका अधोमुख होजाय तो रोग, स्कंधसे गिरे तो शिरका रोग, हाथसे गिरजाय तो गृहके स्वामीका नाश होता है ॥ १९३ ॥ यदि गृहके स्वामी और स्थपतिको स्मरणका लोप होजाय

समानीय शिलां तत्र सूत्रधारो गुणान्वितः ॥१९०॥ तत्र दिक्साधनं कुर्याद्गृहमध्ये सुसाधिते । ईशानादिक्रमेणैव स्वर्णकुद्दालकेन तु ॥ १९१ ॥ खनित्वा कोणभागे तु मध्ये चैव विशेषतः । नाभिमात्रे तथा गर्तें शिलानां स्थापनं शुभम् ॥ १९२ ॥ सूत्रच्छेदे भवेन्मृत्युः कीले चार्वाङ्मुखे गदः । स्कंधाच्च्युते शिरोरोगः करादृगृहपतेः क्षयः ॥ १९३ ॥ गृहेशस्थपतीनां च स्मृतिलोपोऽथ मृत्युदः । भग्ने कीर्तिवधः कुम्भे कुम्भस्योत्सर्गवर्जिते ॥१९४॥ सूत्रे प्रसार्यमाणे तु गर्दभो यदि रौति चेत् । तत्रास्थि शल्य जानीयाच्छ्वश्रृगालादिलंघितम् ॥१९५॥ रविदीप्ता दिशा यातु तत्र चेत्परुषो रवः । संस्पृष्टाङ्गसमाने च तस्मिञ्छल्यं विनिर्दिशेत् ॥ १९६ ॥ शिलाविन्यासकाले तु वाशन्ते द्विरदादयः । तस्मिंस्तद्देहसंभूतमस्थिशल्यं विनिर्दिशेत् ॥ १९७ ॥

तो मृत्युको देता है यदि विसर्जनसे पहिले घटका भंग होजाय तो कुलकी कीर्तिका नाश होता है ॥ १९४ ॥ यदि सूत्रके फैलाने समयमें गर्दभ शब्द करे तो उस स्थानमें शल्यको जाने. कुत्ता श्रृगाल सूत्रको लंघ जाय तोभी दुःखको जाने ॥ १९५ ॥ सूर्यसे प्रकाशित जो दिशा है उसमें कठोर शब्द होय तो जिस अंगसे सूत्रका स्पर्श होय उसके समान अंगमें शल्यको कहे ॥ १९६ ॥ शिलाके स्थापनके समयमें हस्ती आदि शब्द करे तो वास्तुके देहमें उत्पन्न हुए अस्थिका शल्यको कहै ॥ १९७ ॥ कुब्ज वामन भिक्षु वैद्य रोगी सूत्र रखनेके समयमें इनके दर्शनको भी लक्ष्मीका अभिलाषी मनुष्य त्यागकरे ॥ १९८ ॥ हुलहुल शब्दोंके सुननेपर, मेघके गर्जनेपर गर्जतेहुए सिंहोंका जो शब्द है ये सूत्र रखनेके समयमें होंय तो धनका दाता होता है ॥ १९९ ॥ सूत्रके फैलानेके समयमें यदि जलती हुई अग्नि दीखे अथवा घोटक (घोडे) पर चढाहुआ पुरुष दीखे तो निष्कंटक राज्य होता है ॥ २०० ॥ शंख और तूर्य्य आदिकोंका शब्द होय तो गृह वस्तुओंसे विपुल रहता है,

कुब्जं वामनकं भिक्षुं वैद्यं रोगातुरानपि । दर्शनं सूत्रकाले तु वर्जयेच्छ्रियमिच्छता ॥ १९८ ॥ श्रुतौ हुलहुलानां च मेघानां गर्जितेन च । गर्जतामपि सिंहानां स्वनितं धनदं भवेत् ॥ १९९ ॥ ॥ सूत्रे प्रसार्यमाणे तु दीप्तोऽग्निर्यदि दृश्यते । पुरुषो घोटकारूढो भवेद्राज्यमकण्टकम् ॥ २०० ॥ शंखतूर्यादिनिर्घोषे वस्तुभिर्विपुलं गृहम् । योषितां कन्यकानां च क्रीडनं वित्तवर्द्धनम् ॥ २०१ ॥ प्रारम्भे च शुभा गेहगोपने मृत्युरोगदा । स्तम्भाद्यारोपणे मध्या प्रवेशे वृष्टिरुत्तमा ॥ २०२ ॥ दारूणां छेदने चैव दुःखशोकामयप्रदा । परीक्षासमये चैव न तु सौख्यप्रदा स्मृता ॥ २०३ ॥

स्त्री और कन्याओंकी जो क्रीडा है वह सूत्र रखनेके समयमें होय तो धनकी वृद्धि होती है ॥ २०१ ॥ ये गृहके प्रारंभमें शुभ हैं और गृहके छाबनेमें मृत्यु और रोगको देती है. स्तंभ आदिके रखनेमें मध्यम और प्रवेशके समयमें होय तो उत्तम वृष्टि होती है ॥ २०२ ॥ काष्ठके छेदनेमें दुःख शोक रोगको देती है और परीक्षाके समयमेंभी सुखदायी नहीं कही है ॥ २०३ ॥

यदि सूत्र रखनेके समयमें छत्र ध्वजा पताकाओंका दर्शन होय तो निधि (खजाना) का संभव जानना यदि घट जलसे पूर्ण रहे तो श्रेष्ठ प्राप्ति और पूर्ण घट और कलकल शब्द होय तो स्थिरता होती है ॥ २०४ ॥ घरकी सब कोणोंमें विधिसे पूजाको करके ईशान दिशासे लेकर प्रदक्षिणा क्रमसे सूत्रको रक्खे ॥ २०५ ॥ इसी विधिसे स्तंभ और द्वारआदिका आरोपण करै और भली प्रकार सावधानीसे वास्तु विद्याकी विधिको करै ॥ २०६ ॥ नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा नाम्नी जो क्रमसे शिला हैं उनमें नन्दामें पद्मको लिखे और भद्रामें सिंहा

छत्रध्वजपताकानां दर्शने निधिसम्भवः । पूर्णकुम्भे तु सम्प्राप्तिः स्थैर्यं कलकलध्वनौ ॥ २०४ ॥ गृहकोणेषु सर्वेषु पूजां कृत्वा विधानतः । ईशानमादितः कृत्वा प्रादक्षिण्येन विन्यसेत् ॥२०५॥ अनेनैव विधानेन स्तम्भद्वारादिरापणम् । वास्तुविद्याविधानं तु कारयेत्सुसमाहितः ॥ २०६ ॥ नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा नाम्नी यथाक्रमम् । नन्दायां पद्ममालिख्य भद्रा सिंहासनं तथा ॥२०७॥ जयायां तोरणं छत्रं रिक्तायां कर्म एव च । पूणायां च चतुर्बाहुं विष्णुं सलेखयेद्बुधः ॥२०८॥ ॐभूर्भुवः स्वरिति तथा सर्वानावाहनं स्मृतम् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईशानश्च सदाशिवः॥२०९॥ एते पञ्चैव पञ्चेषु भूतानावाहयेत्पुनः । स्नपनंच ततः कुर्याद्विधिदृष्टेन कर्मणा॥२१०॥पञ्चभिःकलशैर्युक्तास्तासां नामान्यतः शृणु । पद्मं चैव महापद्मं शङ्खं च विजयं तथा ॥ २११ ॥

सनको ॥ २०७ ॥ जयामें तोरण, रिक्तामें छत्र और कर्मको करै और पूर्णामें चार भुजावाले विष्णुको यत्नसे स्थापन करै ॥ २०८ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः इस मंत्रको पढकर सबका आवाहन कहा है ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईशान और सदाशिव ॥ ॥२०९ ॥ इन पांचोंका आवाहन करै और पांचोंके स्थानमें फिर भूतोंका आवाहन करै फिर शास्त्रकी विधिमें देखेहुए कर्मसे स्नान करावे ॥ २१० ॥ सावधानहुए ऋत्विज पांच कलशोंसे स्नान करावैं उनके नाम श्रवण करो पद्म महापद्म शंख विजय ॥ २११ ॥ और पांचवां सर्वतोभद्र होता है मंत्रसे उनका आवाहन करै अग्निर्मूर्द्धा इस मंत्रको पढकर मिट्टीसे यज्ञायज्ञ इस मंत्रको पढकर जलोंसे ॥ २१२ ॥ अश्वत्थ इस मंत्रसे पंच कषायों और पत्तोंके जलसे गायत्रीको पढकर गोमूत्रसे गन्धद्वारां इस मन्त्रको पढकर गोमयसे ॥ २१३ ॥ आप्यायस्व इस मन्त्रको पढकर दुग्धसे और दधिक्राव्णः इस मन्त्रको पढकर दधिसे, घृतंमि० इस मन्त्रको पढकर घृतसे, मधुवाता इस मन्त्रको पढकर मधुसे ॥ २१४ ॥

पञ्चमं सर्वतोभद्रो मन्त्रेणावाहयेत्तु तम् ॥ * अग्निर्मूर्द्धेति च मृदा यज्ञायज्ञेति वारुणैः ॥ २१२ ॥ अश्वत्थेति कषायेण पल्लवेन जलेन च । गायत्र्या च गवां मूत्रैर्गन्धद्वारेति गोमयैः ॥२१३॥ आप्यायस्वेति क्षीरेण दधिक्राव्णेति वै दधि । घृतवतीति घृतेन च मधुवातेति वै मधु २१४ ॥ पयः पृथिव्यामिति च पञ्चगव्येन संस्नपेत् । देवस्यत्वेति च कुशैःकाण्डात् काण्डाच्च दूर्वया ॥ २१५ ॥ गन्धद्वारेति गन्धेन पञ्चगव्येन वै तथा । या औषधीरोषधीभिर्याः फलिनीति फलोदकैः ॥ २१६ ॥ नमस्तेति वृक्ष शृङ्गमृदा धान्यमसीति च । धन्यादीज्ञिग्रमिति च कलशेन तथैव च ॥ २१७ ॥

पयः पृथिव्यां इस मन्त्रको पढकर पंचगव्यसे, देवस्यत्वा इस मन्त्रको पढकर कुशाओंसे, काण्डात्काण्डात इस मन्त्रको पढकर दूबसे ॥ २१५ ॥ गन्धद्वारां इस मन्त्रको पढकर गन्धसे और पंचगव्यसे और या औषधीः इस मंत्रसे औषधियोंसे और याः फलिनी इस मंत्रको पढकर फलके जलोंसे ॥ २१६ ॥ नमस्ते इस मंत्रको पढकर बैलके सींगकी मिट्टीसे और धान्यमसि--इस मंत्रको पढकर

---

* ' अग्निर्मूर्धा इत्यादिमन्त्राः स्वस्तिपुण्याहप्रयोगेषु प्रसिद्धाः ।

धान्यके जलोंसे और आजिघ्रकलशम्०--इस मन्त्रसे कलशके जलोंसे ॥ २१७ ॥ ओषधयः०--इस मन्त्रको पढकर अक्षतोंसे यवोऽसि०--इस मन्त्रको पढ़कर जवके जलोंसे तिलोऽसि०--इस मन्त्रको पढकर तिलोंसे, पंचनद्यः०--इस मन्त्रको पढकर नदीके जलोंसे ॥२१८॥ इमं मे गंगे०--इस मन्त्रको पढकर तीर्थके जलोंसे, नमोस्तु रुद्रेभ्यः०--इस मन्त्रको पढकर नग (पर्वत) और हस्ति शालाकी मिट्टीसे स्नान करावे ॥ २१९ ॥ स्योनापृथिवी०--इस मन्त्रको पढकर हलकी मिट्टी सहतमिली मिट्टीसे और हिरण्यगर्भ०--इस मन्त्रको पढकर सुवर्णके जलोंसे स्नान करावे

ओषधय इत्यक्षतैश्च यवोऽसीति यवोदकैः । तिलोऽसीति तिलैः पंचनद्येति च नदीजलैः ॥ २१८ ॥ इमं मे गङ्गेति च तथा तीर्थानामुदकेन च । नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो मृदा नगदन्तिसमुद्भवात् ॥ २१९ ॥ स्योना पृथिवी च मृदा सीतया मधुमिश्रया । हिरण्यगर्भ इति वा सुवर्णोदकसंभवैः ॥ २२० ॥ रूपेणेति रौप्येण पदस्यायेति वस्त्रजैः । संस्नाप्य तीर्थपयसा ततः शुद्धोदकेन च ॥ २२१ ॥ सम्मार्ज्य शुभ्रवस्त्रेण गन्धेनालिप्य सर्वतः । ब्रह्मादीन् पूजयेत्तत्र नाममन्त्रेण वा तथा ॥ २२२ ॥ उपचारैः षोडशभिर्मूलमध्मशिरःस्वपि । स्नपन चाभिषेकन्तु वेदमन्त्रैश्च कारयेत्॥२२३॥आब्रह्मन्निति नन्दायां भद्रं कर्णेति वै तथा । जातवेदसेति तथा यमाय त्वेति मंत्रकैः ॥ २२४ ॥

॥ २२० ॥ रूपेण--इस मन्त्रको पढकर चांदीके जलोंसे, पदस्याय०--इस मन्त्रको पढ़कर वस्त्रके जलोंसे और तीर्थके जलोंसे स्नान कराकर फिर शुद्ध जलोंसे स्नान करावे ॥ २२१ ॥ फिर सफेद वस्त्रसे समार्जन करके और सब अंगोंमें गन्धका लेपन करके वास्तुमण्डलमें नाममंत्रोंसे ब्रह्माआदिका पूजन करे ॥ २२२ ॥ वह पूजन षोडश उपचारोंसे करे और मूल मध्य शिरके ऊपर स्नान और अभिषेक वेदके मन्त्रोंसे करावे ॥ २२३ ॥ आब्रह्मन्० भद्रंकर्णेभिः इन मन्त्रोंको और जातवेदस० यमाय त्वा० इन मन्त्रोंको पढकर नंदा भद्रा जया रिक्तासे स्नान करावे ॥ २२४ ॥ और पूर्णादर्वि०--इस मन्त्रको पढकर पूर्णा शिलाको क्रमसे स्नान करावे. मूल मध्यमें तिसी प्रकार नामके मन्त्रोंसे स्नान करावे ॥ २२५ ॥ और ब्रह्मजज्ञानं०--नमस्ते रुद्र०--विष्णोरराट०--इमं देवा०--इन मन्त्रोंको भलीप्रकार जपै ॥ २२६ ॥ और शिरके ऊपर तद्विष्णोः परमं पदम्० इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्० इन मन्त्रोंसे विष्णुका ॥ २२७ ॥ समख्ये देव्या-धिया०--और त्र्यम्बकं यजामहे० इन मंत्रोंसे शिवका आवाहन करे. मूर्द्धानन्दिवो० इस ऋचासे भलीप्रकार विधिसे पूजा करके ॥ २२८ ॥

पूर्णादर्वीति पूर्णायां क्रमेणापि समाचरेत् । मूलमध्येऽपि च तथा नामभिर्मतमंत्रकैः ॥ २२५ ॥ ब्रह्मजज्ञानमिति च विष्णोरराटमेव च । नमस्ते रुद्र इति च इमं देवेति संजपेत् ॥ २२६ ॥ शीर्षे चावाहनं कार्यं तद्विष्णोः परमम्पदम् । इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ॥ २२७ ॥ समख्ये देव्या धिया इति च त्र्यम्बकं यजामहेति च । मूर्द्धानं दिवेत्यृचया सम्पूज्य च यथाविधि ॥ २२८ ॥ तेभ्यो हिरण्यं दत्त्वा च वस्त्रालङ्कारवाससी । ततस्तु पुण्यघोषेण शिलान्यास प्रकल्पयेत् ॥ २२९ ॥ ततस्तु लग्ने सम्प्राप्ते पञ्चवाद्यानि वादयेत् । नन्दां प्रगृह्य च शिलां तत्राधारशिलां न्यसेत् ॥ २३० ॥ तत्रोपरि न्यसेत्सप्तकलशं मन्त्रमन्त्रितम् । सर्वौषधिजलोपेत पारदाज्यमधुप्लुतम् ॥ २३१ ॥

उनको सुवर्ण वस्त्र और अलंकार वस्त्रोंको देकर और पुण्याहवाचन करके शिलाके स्थापनको कर ॥ २२९ ॥ श्रेष्ठ लग्नकी प्राप्तिके समयमें पांच प्रकारके वाद्योंको बजवावे नंदा नामकी शिलाको ग्रहण करके आधार शिलाका स्थापन करे ॥ २३० ॥ फिर उस शिलाके ऊपर मंत्रोंको पढकर ऐसे सातकलशोंको रक्खे जो सर्वौषधि जल पारा घी और सहत इनसे युक्त हों ॥ २३१ ॥

जो ढकेहुएहों जिनमें रत्न पडाहुआहो और जो तेजके समूहसे युक्त हों और सदाशिवके स्वरूपका ध्यान करके पँचोपचारोंसे पूजन कर ॥२३२॥ बांये भागमें कियेहुए गर्तमें दीपकको रखकर उसके ऊपर नन्दानामकी शिलाको रखदे ॥ २३३ ॥ नाभिमें० इस मन्त्र और स्थिरो भव० इस वाक्यसे मन्त्रका ज्ञाता तिसके अनंतर शास्त्रोक्त विधिसे प्रार्थना करे ॥ २३४ ॥ हे नन्दे ! तू पुरुषको आनंद देनेहारी है मैं तेरा यहां स्थापन करताहूं इस प्रासादमें प्रसन्नहुई तबतक टिक, जबतक चन्द्रमा सूर्य तारागण हैं ॥ २३५ ॥ हे नन्दिनि ! हे देववासिनि ! आयु कामना और

पिहितं रत्नगर्भं च तेजोराशिभिरन्वितम् । सदाशिवस्वरूपी च ध्यात्वा पञ्चोपचारकैः ॥ २३२ ॥ सम्पूज्य दीपं विन्यस्य वाम भागेऽथ गर्तकैः । तत्रोपरि न्यसेन्नन्दां संपूज्य च यथाविधि॥२३३॥नाभिमेंति च मन्त्रेण स्थिरो भवेति वै तथा। प्रार्थनां च ततः कुर्यादागमोक्तेन मन्त्रवित् ॥२३४॥ नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम् । प्रासादे तिष्ठ संहृष्टा यावच्चन्द्रार्कतारकाः ॥२३५॥आयुष्कामाञ्छ्रियं देहि देववासिनि नन्दिनि । अस्मिन्रक्षा त्वया कार्या प्रासादे यत्नतो मम ॥२३६॥ महापद्मं न्यसेत्तत्र पूजयेद्रत्नगर्भितम् । तत्र भद्रां च संस्थाप्य पूजयेन्नाममंत्रकैः॥२३७॥ भद्रंकर्णेति ऋचया स्थापयेद्वारुणैस्तथा । भद्रे त्व सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि॥२३८॥आयुर्दाकामदा देवि सुखदा च सदा भव। त्वामत्रस्थापयाम्यद्यगृहेऽस्मिन्भद्रदायिनी ॥२३९॥

लक्ष्मीको दे इस मेरे प्रासादमें यत्नसे रक्षा कर ॥ २३६ ॥ उस शिलापर रत्न हैं गर्भमें जिसके ऐसे महापद्मको रक्खे. उस पद्मपर भद्रनामकी शिलाको रखकर नामके मन्त्रोंसे पूजन करे ॥ २३७ ॥ अथवा भद्रंकर्णेभिः० इस ऋचासे वा वरुणके मन्त्रोंसे स्थापन करे. हे भद्रे ! हे काश्यपि तू सदैव लोकोंमें कल्याण कर ॥ २३८ ॥ हे देवि ! तू आयु, कामना और सुखकी दाता सदैव हो, हे भद्रके देनेहारी ! तेरा इस घरमें आज स्थापन करताहूं ॥ २३९ ॥ आधारके ऊपर शंखनामके कलशको रखकर और कोणमें उसका विधिसे भलीप्रकार पूजनकरके फिर जया नामकी शिलाका भलीप्रकार पूजन करे ॥ २४० ॥ गर्ग गोत्रमें उत्पन्न त्रिनेत्रा और चतुर्भुजी सुंदरनेत्रवाली जयाका इस प्रासादमें आज मैं स्थापन करत हूं ॥ २४१ ॥ हे भार्गव ! तू सदैव गृहके स्वामीको जय और भूतिके लिये हो, जातवेदसे० इस और पूर्वोक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित ॥२४२॥ विजय नामके कलशके आधारके ऊपर रखकर फिर मन्त्रका ज्ञाता इस मन्त्रसे रिक्तानामकी शिलाका स्थापन करे ॥२४३॥ त्र्यम्बकं यजामहे० इससे

आधारोपरि विन्यस्य कलशं शंखसञ्ज्ञकम् । कोणे सपूज्य विधिवज्जयां संस्थापयेत्ततः ॥ २४० ॥ गर्गगोत्रसमुद्भूतां त्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम् । प्रासादे स्थापयाम्यद्य जयां चारुविलोचनाम्॥२४१॥ नित्यंजयाय भूत्यै च स्वामिनो भव भार्गवि । जातवेदसेति मन्त्रेण पूर्वोक्तेन च मन्त्रतः ॥ २४२ ॥ आधारोपरि विन्यस्य विजयं कलशं ततः ॥ रिक्तां सस्थापयेत्तत्र मंत्रेणानेन मन्त्रवित् ॥२४३॥ त्र्यम्बकं यजामहेति तथा वारुणमंत्रकैः । स्थापयेत्प्रार्थयेत्तद्वद्रिक्तां रिक्तार्तिहारिणीम् ॥ २४४ ॥ रिक्ते त्वं रिक्तदोषघ्ने सिद्धिभुक्तिप्रदे शुभे । । सर्वदोषघ्नि तिष्ठास्मिंस्तत्र नन्दिनि ॥२४५॥ आधारे विन्यसेन्मध्ये सर्वतोभद्रसञ्ज्ञकम् । पूर्णरत्नान्वितं पुष्टं सर्वमंत्राभिमन्त्रितम्॥२४६॥तां च संपूज्य विधिवद्ध्यात्वा तत्र सदाशिवम्।तत्रोपरि न्यसेत्पूर्णां पूर्णानन्दप्रदायिनीम्॥२४७॥

और वरुणके मन्त्रसे रिक्ता (खाली) की हरनेहारी रिक्ताका स्थापन और प्रार्थना करे ॥ २४४ ॥ हे रिक्ते ! रिक्त (खाली) के दोषकी नाशक है और हे शिव ! सिद्धि और भुक्तिकी दाता है. हे सब दोषोंकी नाशक हे नन्दिनि ! इस स्थानमें तू सर्वदा टिक ॥२४५॥ आधारके विषे मध्यमें पूर्ण रत्नों युक्त पुष्ट और संपूर्ण मन्त्रोंसे अभिमंत्रित सर्वतोभद्र नामके कलशको रक्खे ॥ २४६ ॥ पूर्णा नामकी शिलाका पूजन करके और उसके

नाभिमें चित्तं विद्धानं वायुमेवचितिर्भवत । आनन्दावाण्डी मे भगस्तौभाग्यंपक्षः । जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशिराजाप्रतिष्ठितः ॥

ऊपर सदाशिवका ध्यान करके उस कलशके ऊपर पूर्णा आनंदकी दाता पूर्ण नामकी शिलाको रक्खे ॥ २४७ ॥ हे पूर्णे ! हे काश्यपि ! तू लोकोंको सदैव पूर्ण कर. हे देवि ! तू आयु कामना और धन सुतकी दाता हो ॥ २४८ ॥ तू गृहकी आधार वास्तुरूप है और वास्तुदीपकसे युक्त है, हे जगत्प्रिये ! तेरे विना जगत्का आधार नहीं ॥ २४९ ॥ पूर्णादर्वि० इस मंत्रसे इमं मे देव० इस मंत्रसे ॥ २५० ॥ मूर्द्धानं दिव० इस मंत्रसे और शांतिके मंत्र और सहस्रशीर्षा० इन १६ मंत्रोंसे और अग्निमीले० इस मंत्रसे ॥ २५१ ॥ इषेत्वोर्जे० इस मंत्रसे अग्न आयाहि

पूर्णे त्वं सर्वदा पूर्णं लोकानां कुरु काश्यपि । आयुर्दा कामदा देवि धनदा सुतदा तथा ॥२४८॥ गृहाधारा वास्तुमयी वास्तुदीपेन संयुता । त्वामृते नास्ति जगतामाधारश्च जगत्प्रिये ॥ २४९ ॥ पूर्णादर्वीति मन्त्रेण इमं मे देवेति वै तथा ॥२५०॥ मूर्द्धानन्दिवेति च तथा शांतिमन्त्रैस्तथैव च । सहस्रशीर्षेति षोडशभिरग्निमीलेति वै तथा ॥२५१॥ इषे त्वोर्जेत्यग्न आयाहीति तथा पुनः । शन्नोदेवीति मंत्रेण स्थापयेत्प्रयतः शुचिः ॥ २५२ ॥ मृदादिना दृढीकृत्य प्रादक्षिण्येन सर्वतः । ईशानादिक्रमेणैव स्थाप्या सर्वार्थसिद्धये ॥ २५३ ॥ आग्नेयी चैव वर्णानामाग्नेयादिक्रमेण च । सर्वेषामपि वर्णानांकेचिदिच्छन्ति सूरयः ॥२५४॥ यान्तु देवगणास्सर्वे पूजामादाय पार्थिवीम् इष्टकामसमृद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ २५५ ॥

इस मन्त्रसे और वारम्वार शन्नो देवी० इस मन्त्रसे शुद्धहुआ यजमान आधारशिलाका स्थापन किया करे ॥ २५२ ॥ मिट्टी आदिसे दृढकरके प्रदक्षिण रीति संपूर्ण दिशाओंमें ईशानआदिके क्रमसे संपूर्ण अर्थकी सिद्धिके लिये अन्यशिलाओंकाभी स्थापन करै ॥ २५३ ॥ कोई पण्डित जन यह मानते हैं--सब वर्णोंके मध्यमें आग्नेयी शिलाओंका आग्नेयादि क्रमसे स्थापन करै ॥ २५४ ॥ राजाकी पूजाको लेकर सब देवगण इष्टकी सिद्धि और आगमनके लिये जावो ॥ २५५ ॥ फिर पूर्वाभिमुख होकर यजमान पूजाकी सामग्री आचार्यको निवेदन करै और तिसी प्रकार अपने धनके अनुसार ब्रह्माको दक्षिणा दे ॥२५६॥ उत्तराभिमुख बैठेहुए ब्रह्माको यह कहै-क्षमा करो सुवर्णसे युक्त और दो वस्त्रोंसे युक्त सवत्सा गौको ॥ २५७ ॥ और यज्ञके अन्तमें धुलेहुए वस्त्रोंको आचार्यके अर्थ निवेदन करे फिर ज्योतिषी और स्थपति और वैष्णव इनका सन्तोष करिके ॥ २५८ ॥ उनको भी दक्षिणा दे घृतमें अपने मुखकी छायाको देखे फिर रक्षाबन्धन मन्त्रपाठ और त्र्यायुष

ततस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा आचार्याय निवेदयेत् । दक्षिणां ब्रह्मणे तद्वद्यथावित्तानुसारतः ॥२५६॥ उदङ्मुखाय च ततः क्षमस्वेति पुनः पुनः । गां सवत्सां स्वर्णयुतां तथा वासोयुगान्विताम् ॥ २५७ ॥ यज्ञान्ते आप्लुतान् वस्त्रानाचार्याय निवेदयेत् । दैवज्ञश्च ततस्तोष्यः स्थपतीन् वैष्णवानपि ॥ २५८ ॥ दक्षिणां च तयोर्दद्याद् घृतच्छायां विलोकयेत् । रक्षाबन्धो मन्त्रपाठस्त्र्यायुषं च समाचरेत् ॥ २५९ ॥ ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याच्छिष्टेभ्यश्च स्वशक्तितः । दीनान्धकृपणेभ्यश्च दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ २६० ॥ शिल्पिवर्गास्तु संतोष्य दानमानैस्तथैव च ॥ २६१ ॥ सम्प्राप्नोति नरो लक्ष्मीं पुत्रपौत्रधनान्विताम् ॥ २६२ ॥

इति वास्तुशास्त्रे शिलान्यासो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

करे अर्थात् स्रुवेसे भस्मको लगावे ॥ २५९ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार ऋत्विज और शिष्टोंको दक्षिणा दे और अपने धनके अनुसार दीन अन्ध और कृपणोंकोभी कुछ दे ॥ २६० ॥ दान मानसे शिल्पियोंका जो वर्ग है उनके भी सन्तोषको करके॥ २३१ ॥ मनुष्य पुत्र पौत्रोंसे युक्त लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥ २६२ ॥ इति पं० मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते वास्तुशास्त्रे शिलान्यासो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर प्रासादोंकी विधिको कहताहूं--रुद्रदेवता और विष्णु देवता और देवताओंमें उत्तम ब्रह्मा आदि ॥ १ ॥ इनका शुभस्थानमें स्थापन करना योग्य है अन्यथा ये भयके दाता होते हैं, गर्तआदिका चिह्न जिसमें हो और जिसका गन्ध और स्वाद श्रेष्ठ हो वह पृथिवी ॥२॥ और जिसका वर्ण श्रेष्ठ हो वह पृथिवी सब कामनाओंकी दाता होती है. अपने पितामहसे पूर्वके जो आठ कुल हैं ॥ ३ ॥ अपने सहित उन सबको विष्णुका मन्दिर बनवानेवाला तारता है और जो हमारे कुलमें कोई विष्णुका भक्त हो ॥ ४ ॥ ऐसा और हम विष्णुका मन्दिर बनवा

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रासादानां विधानकम् । देवो रुद्रस्तथा विष्णुर्ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः ॥ १ ॥ प्रतिष्ठाप्याः शुभे स्थाने अन्यथा ते भयावहाः । गर्तादिलक्षणा धात्री गन्धस्वादेन या भवेत् ॥ २ ॥ वर्णेन च सुरश्रेष्ठा सा मही सर्वकामदा । पितामहस्य पुरतः कुलान्यष्टौ तु यानि वै ॥ ३ ॥ तारयेदात्मना सार्द्धं विष्णोर्मन्दिरकारकः अपि नः सत्कुले कश्चिद्विष्णुभक्तो भविष्यति ॥ ४ ॥ ये ध्यायन्ति सदा भक्त्या करिष्यामो हरेर्गृहम् । तेषां विलीयते पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम् ॥ ५ ॥ सुरवेश्मनि यावन्तो द्विजेन्द्राः परमाणवः । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ६ ॥ प्रासादे मृन्मये पुण्यं मयैतत्कथितं पुरा । तस्माद्दशगुणं पुण्यं कृते शैलमये भवेत् ॥ ७ ॥ ततो दशगुणं लौहे ताम्रे शतगुणं ततः । सहस्रगुणितं रौप्ये तस्माद्रौक्मे सहस्रभम् ॥ ८ ॥

वेंगे ऐसा जो सदैव भक्तिसे ध्यान करते हैं उनके भी पूर्व लोकका १००सौ जन्मोंका किया पाप नष्ट होता है ॥ ५ ॥ भो द्विजेन्द्रो ! देवताके मन्दिरमें जितने परमाणु होते हैं उतने सहस्रवर्षपर्यन्त कर्ता स्वर्गलोकमें वसता है ॥ ६ ॥ जो यह मैंने पुण्य कहा वह मिट्टीसे बनाये हुए मन्दिरमें होता है और उससे दश गुणा पुण्य पत्थरसे बनाये हुएमें होता है ॥ ७ ॥ उससे भी दशगुणा लोहेसे बनायेमें और उससे भी सौ१०० गुणा तांबेके बनाये हुएमें और उससे भी हजार गुणा चांदीके और उससे भी हजार गुणा सुवर्णके मन्दिरमें होता है ॥ ८ ॥

रत्नोंसे जडित मनोहर (रमणीय) मन्दिरके बनानेसे अनन्तफल होता है , कनिष्ठ मध्यम और श्रेष्ठ विष्णुके मन्दिर बनानेसे ॥ ९ ॥ स्वर्गलोक विष्णुलोक और मोक्षको प्राप्त होता है और बाल्य अवस्थामें पांसु (धूलि) से खेलते हुए बालक जो वासुदेव हरिके भवनको ॥१०॥ करते हैं वे भी विष्णुलोकमें जाते हैं, जो भूमि घरके बनानेमें श्रेष्ठ है वही प्रासादकी भूमिमें भी श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ जो विधि घरके बनानेमें और शिलाके स्थापन करनेमें है वही प्रासाद आदिमेंभी जाननी. चार ४ शिला ॥ १२ ॥ नन्दा भद्रा जया पूर्णा नामकी आग्नेय आदि दिशा

अनन्तं फलमाप्नोति रत्नचित्रे मनोहरे । कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं कारयित्वा हरेर्गृहम् ॥ ९ ॥ स्वर्गं च वैष्णवं लोकं मोक्षं च लभते क्रमात् । बाल्ये च क्रीडमाना ये पांसुभिर्भवनं हरेः ॥ १० ॥ वासुदेवस्य कुर्वन्ति तेऽपि तल्लोकगामिनः । या भूमिः शस्यते गेहे सा प्रासादविधौ तथा ॥ ११ ॥ यो विधिर्गृहनिर्माणे शिलान्यासस्य कर्मणि । प्रासादादिषु संज्ञेयाश्चतस्रस्तु शिलास्तथा॥१२॥ नन्दा भद्रा जया पूर्णा आग्नेयादिषु विन्यसेत् । चतुष्षष्टिपदं वास्तुं प्रासादादिषु विन्यसेत् ॥१३॥ ब्रह्मा चतुष्पदो ह्यत्र शेषाः स्वस्वपदे स्थिताः । वास्तुपूजाविधिश्चात्र गृहस्थापनकर्मवत् ॥ १४ ॥ सम्पूज्य वास्तुं विधिवच्छिलान्यासं ततश्चरेत् । आदावेव समासेन शिलालक्षणमुत्तमम्॥ १५॥शिलान्यासविधानन्तु प्रोच्यतेतदनन्तरम् । शिला वाऽपीष्टका वापिचतस्रोलक्षणान्विताः ॥ १६॥

ओंमें प्रासादमें भी स्थापन करै. प्रासाद आदिमें वास्तु चतुःषष्टि (६४) पदका होता है ॥ १३ ॥ चतुःषष्टिपद वास्तुमें ब्रह्मा चतुष्पद होता है और शेष देवता अपने अपने पदमें स्थित होते हैं. और इसमें वास्तुपूजाकी विधि गृहस्थापन कर्मके तुल्य होती है ॥ १४ ॥ विधिसे वास्तुका भलीप्रकार पूजन करके फिर शिलाका स्थापन करै, प्रथम संक्षेपसे शिलाका उत्तम लक्षण देखे ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर शिला

स्थापनविधिको कहते हैं--शिला हो वा ईट हो चारों लक्षणसे युक्त ॥ १६ ॥ भलीप्रकार मनोहर और समान और चारों तरफसे हाथभर बनवा कर प्रासादअ दिमें विधिसे ॥ १७ ॥ विस्तारके विभाग और बाहुल्यके तुल्य शिला और ईटोंका प्रमाण और लक्षण कहाहै ॥ १८ ॥ नंदा आदि शिलाओंके अधिष्ठान (नीचे) की शिला अथवा ईट जाननी और शिलाओंके रूपको जानना और नंदा आदि इष्टका कहीहै ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण शिलाओंका तल श्रेष्ठ हो और सब चिकनी समान लक्षणोंसे युक्त होयँ और सब कुशा और दूर्वासे चिह्नित ध्वजा छत्र चँवरसे युक्त

प्रासादादौ विधानेन न्यस्तव्याः सुमनोहराः । चतुरस्राः समाः कृत्वा समन्ताद्धस्तसम्मिताः ॥ १७ ॥ विस्तारस्य त्रिभागेन बाहुल्येन सुसंमिताः । शिलानामिष्टकानां च प्रमाणं लक्षणं स्मृतम् ॥ १८ ॥ नन्दाद्यधिष्ठिता ज्ञेया शिला वाप्यथवेष्टका । शिलारूपाण्यथो विद्यान्नन्दाद्याश्चेष्टकाः स्मृताः ॥ १९ ॥ संपूर्णाः सुतलाः स्निग्धाः सुसमा लक्षणान्विताः । कुशदूर्वाङ्किता धन्याः सध्वजच्छत्रचामराः ॥ २० ॥ सकुशास्तरणोपेता कूर्ममत्स्यफलान्विताः । हस्तिदर्पणवज्राङ्काः प्रशस्तद्रव्यलाञ्छिताः ॥ २१ ॥ शस्तपक्षिमृगाङ्काश्च वृषाङ्कास्सर्वदा हिताः । स्वस्तिका वेदिकायुक्ता नन्दावर्ताङ्कलाञ्छिताः ॥२२॥ पद्मादिलक्षणोपेताः शिलाः सर्वार्थसिद्धिदाः । तथा गोवाजिपादाङ्काः शिला धन्याः सुखावहाः ॥ २३ ॥

होय तो धन्य होतीहैं ॥ २० ॥ कुशाके आस्तरणसे युक्त कूर्म मत्स्य और फलसे युक्त और जिनमें हस्ती दर्पण और वज्र इनका चिह्न अथवा श्रेष्ठ द्रव्यका चिह्न हो ॥ २१ ॥ जिनमें श्रेष्ठपक्षी और मृगका चिह्न हो अथवा वृषका चिह्न हो व सब कालमें स्थित हैं स्वस्तिक (सथिया) और वेदीसे युक्त और नंदावर्तके चिह्नसे युक्त ॥ २२ ॥ पद्मआदि लक्षणोंसे युक्त शिला सम्पूर्ण अर्थकी सिद्धिको देती है तिसी प्रकार गौ और अश्वके चरणका जिसमें चिह्न हो ऐसी शिला सुखकी दाता होती है ॥ २३ ॥ मांसभक्षक पक्षी मृग इनके चरणोंसे चिह्नित और पाक्षियोंसे चिह्नित दिङ्मुख और बहुत दीन और दीर्घ ह्रस्व फटी शिला श्रेष्ठ नहीं होती ॥ २४ ॥ विरुद्धवर्ण फटी और टूटी और लक्षणोंसे हीन शिला त्यागनेके योग्य है और जिनमें श्रेष्ठ प्राणियोंके रूपका वा उत्तम द्रव्यका चिह्न हो ॥ २५ ॥ और जो शास्त्रमें उक्त लक्षणोंसे युक्त हो ऐसी शिला सदैव सुखदायी होती है । अब संक्षेपसे ईटोंके लक्षणोंको सुनो ॥ २६ ॥ जो एक वर्णकी हो और

क्रव्यादमृगपादाङ्का न शस्ताः पक्षिणस्तथा । दिङ्मुखा बमुदीनाश्च दीर्घा ह्रस्वाः क्षतान्विताः ॥२४॥ विवर्णाः स्फुटिता भग्नाः सन्त्याज्या लक्षणच्युताः । प्रशस्तप्राणिरूपाङ्काः प्रशस्तद्रव्यलाञ्छिताः ॥२५॥ यथोक्तलक्षणोपेताः शिलाः नित्यं सुखावहाः इष्टकानां समासेन लक्षणं शृणु साम्प्रतम् ॥२६॥ एकवर्णाः सुपक्काश्च बहुजीर्णाश्च वर्जिताः । अप्यङ्गारान्विता नेष्टाः कृष्णवर्णा सशर्कराः ॥२७॥ भग्नाश्च विभ्रमैर्हीना वर्जनीयाः प्रयत्नतः । सुप्रमाणा रक्तवर्णाश्चतुरस्रा मनोरमाः ॥ २८ ॥ नन्दाद्यागृहमानेन अङ्गुलैःपरिकल्पिताः । शिलान्यासः प्रकर्तव्यः प्रासादे तु शिलामये ॥२९॥ इष्टकानां तु विन्यासः प्रासादे चेष्टकामये । तस्याः पीठं प्रकुर्वीत तावदेव प्रमाणतः ॥ ३० ॥

भलीप्रकार पकी हो वे श्रेष्ठ होती हैं और जो अत्यंत जीर्ण अर्थात् पुरानी वा भुरभुरी हों वे वर्जित हैं और अंगारोंसे युक्त (जली) और कृष्णवर्णकी और कंकरों सहित ईट श्रेष्ठ नहीं होतीं ॥ २७ ॥ भग्न विभ्रमसे हीन (ऊंची नीची) वे भी यत्नसे वर्जने योग्य हैं और श्रेष्ठप्रमाण सहित रक्तवर्णको चतुरस्र (चौकोर) और मनोरम ईट श्रेष्ठ होती हैं ॥ २८ ॥ नंदा आदि शिला गृहके मानके अनुसार अंगुलोंसे युक्त होनी चाहिये और शिलाओंसे बनेहुए प्रासादमें शिलाओंका न्यास करना ॥ २९ ॥ ईटोंसे बनेहुए प्रासादमें ईटोंका

विन्यास (लगाना) और उतनेही प्रमाणसे उसके जो पीठ वह भी करवाना ॥ ३० ॥ आधार नामकी जो शिला है वह भली प्रकार दृढ और अच्छी मनोहर हों शैलके मंदिरमें शैलका और ईंटोंकेमें ईंटका पीठ कहा है ॥ ३१ ॥ शिलाओंका न्यास आदि जो है उसको भद्र-नामके मंदिरमें मूलपाद कहते हैं चार वेदियोंसे युक्त गर्तोंको चारों कोणमें बनवाकर ॥ ३२ ॥ उनके ऊपर शुक्ल तण्डुलोंका पूरण करे और आग्नेयआदि क्रमसे उनके स्थानोंकी कल्पना करै ॥ ३३ ॥ वहां आधारशिलाको रखकर और स्थिरो भव० इस मन्त्रसे उसकी प्रतिष्ठा करके

आधारनामा तु शिला सुदृढा सुमनोहरा । शैलजे शैलजः पीठश्चैष्टकेचैष्टकः स्मृतः ॥ ३१ ॥ शिलान्यासादिको भद्रे मूलपादो विधीयते । गर्तान् विधाय कोणेषु चतुर्वेदिसमन्वितान् ॥३२॥ तत्रोपरि च शुक्लानां तण्डुलानां च पूरणम् । आग्नेयादिक्रमेणैव तासां स्थानानि कल्पयेत् ॥ ३३ ॥ तत्राधारशिलां न्यस्य स्थिरो भवेति मन्त्रतः । प्रतिष्ठाप्य चतुर्ष्वेव कोणेषु च निधाय च ॥३४॥ तेषां क्रमेण तन्मध्ये कलशं स्थापयेत् क्रमात् । पद्मश्चैव महापद्मः शंखो मकरकस्तथा ॥ ३५ ॥ चत्वारः कलशा ह्येते दिव्या मंत्रेण मंत्रिताः । पल्लवैस्सर्वगन्धैश्च सर्वौषधिभिरन्विताः ॥३६॥ रत्नैः समुद्रजैर्युक्ताश्चाष्टधातुभिरन्विताः । पुण्यतीर्थोदकैर्युक्ताः कृत्वोदुम्बरसम्भवाः ॥३७॥ तत्रोपरि न्यसेन्नन्दां सुलग्ने च शुभे दिने । संस्नाप्य पूर्णतोयेनास्त्रायफडिति मन्त्रतः ॥३८॥

और चारों कोणोंमें शिलाओंको रखकर ॥ ३४ ॥ उनके मध्यमें और रखनेके क्रमसे कलशका स्थापन करे उनके और पद्म महापद्म शंख और मकर ॥ ३५ ॥ ये सुंदर चार कलश मन्त्रोंसे अभिमंत्रित और पंचपल्लव पंचगंध और सर्वौषधियुक्त हों ॥ ३६ ॥ समुद्रसे पैदाहुये रत्न और श्रेष्ठ धातुओंसे और पवित्र तीर्थोंके जलोंसे युक्त हों और गूलरके पत्ते भी उनमें हों॥३७॥ उन कलशोंके ऊपर शुभ दिन और शुभ लग्नमें नन्दानामकी शिलाका स्थापन करै और पूर्णजलसे अस्त्राय फट् इस मन्त्रको पढकर और स्नान कराकर ॥ ३८ ॥ फिर स्नान करके और मन्त्रसे संमार्जन करके चारोंतरफसे पूर्ण करदे । ॐ नन्दायै नमः इस मन्त्रको पढ करके गन्ध आदि पूजाकी सामग्रियोंको चढावे ॥ ३९ ॥ गीत वादित्रके शब्द और वेदकी ध्वनिसे युक्त पूर्व और उत्तरको है शिर जिसका ऐसी उस शिलाका शुद्ध होकर स्थापन करे ॥ ४० ॥ फिर अस्त्रके जलको लेकर अस्त्रायफट् इसको पढकर फिर पूजन करै, सुन्दर रूपवाली सुवर्णकीसी जिसकी कान्ति संपूर्ण आभूषणोंसे

पुनः स्नात्वाथ मन्त्रेण समार्ज्य परिपूरयेत् । ॐ नन्दायै नमो गन्धाद्युपचारान् प्रदापयेत् ॥३९॥ गीतावादित्रघोषेण वेदध्वनियुतेन च । प्रागुत्तरशिरस्कां तां स्थापयेत् प्रयतः शुचिः ॥४०॥ ततोऽस्त्रतोयं संगृह्य फडिति पूजयेत्पुनः । दिव्यरूपां सुवर्णाभां सर्वाभरणभूषिताम् । सर्वलक्षणसंपूर्णां परितुष्टां स्मिताननाम् ॥ ४१ ॥ ध्यात्वा स्वमंत्रमुच्चार्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ४२ ॥ आवाहयेत्ततो नन्दां मन्त्रैर्वैदिकतांत्रिकैः । सपूजयेत्पुनस्तां च वस्त्रगन्धादिनामतः ॥ ४३ ॥ धूपयित्वाथ सामान्यमुद्रां बद्ध्वाथ मंत्रवित् । कल्पयेच्चैव नैवेद्यं दधिमांसादिसयुतम् ॥ ४४ ॥ नन्दायै नम एह्येहि पूजयेच्छुद्धमानसः । ॐ नन्दे त्वं नदिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम् ॥ ४५ ॥

सुशोभित समस्त उत्तम लक्षणोंसे युक्त प्रसन्नहुई और कुछ हँसतासा है मुख जिसका ॥ ४१ ॥ ऐसी उन शिलाका ध्यान करे और उसी शिलाके मंत्रको उच्चारण करके वारम्वार नमस्कार करै ॥ ४२ ॥ फिर वेद और शास्त्रोंके मन्त्रसे नंदानामकी शिलाका आवाहन करे और उसका वस्त्र गन्ध आदिसे पूजन करे ॥ ४३ ॥ अष्टगन्ध आदिकी धूपको देकर मन्त्रका जाननेवाला सामान्य मुद्रा (बद्धांजलि) से दधि मांस आदि सहित नैवेद्यका ॥ ४४ ॥ अर्पण करे नन्दानामकी शिलाको नमस्कार है तू यहां आकर प्राप्त हो २ ऐसा कहकर शुद्धमनसे पूजन

करे हे नन्दे ! तू मनुष्योंको सदैव आनन्दकी देनेवाली है तेरा इस जगह स्थापन करताहूं ॥ ४५ ॥ तू इस प्रासादमें जबतक चन्द्रमा और तारागण हैं तबतक स्थिर रहिये और जिससे तू मनुष्योंको सदैव आयु वांछित फल और लक्ष्मीको देती है ॥ ४६ ॥ इससे तू इस प्रासादकी रक्षा यत्नसे सदैव रख इनही मन्त्रोंसे फिर आग्नेयीदिशामें उसका स्थापन करे ॥ ४७ ॥ फिर उसी प्रकार नाममंत्र (भद्रायै नमः) से भद्रा शिलाका पूजन करै और हे भद्रे ! हे कश्यपकी पुत्रि ! तू लोकोंको सदा भद्र (कल्याण) कर ॥ ४८ ॥ हे देवि ! तू लोकोंको अवस्था

प्रासादे तिष्ठ सहृष्टा यावद्वै चन्द्रतारकम् । आयुष्कामं श्रियं नन्दे ददासि त्वं सदा नृणाम् ॥ ४६ ॥ अस्मिन्रक्षा त्वया कार्या प्रासादे यत्नतः सदा । इति मन्त्रं समुच्चार्य आग्नेये तु ततः परम् ॥४७॥ भद्रां संपूजयेत्तद्वन्नाममन्त्रेण पूर्ववत् । भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि ॥ ४८ ॥ आयुष्कामप्रदा देवि लोकानां चैव सिद्धिदा । नैर्ऋत्ये स्थापयेत्तां च जयां तद्वत्प्रपूजयेत ॥ ४९ ॥ नाममन्त्रेण पूर्वोक्तमन्त्रेण च तथा पुनः । ॐ जये त्वं सर्वदा भद्रे सन्तिष्ठ स्थापयाम्यहम् ॥ ५० ॥ नित्यं जयावहा दिव्या स्वामिनः शीघ्रदा भव । वायव्ये स्थापयेत्तां च जयां सर्वार्थसिद्धये ॥ ५१ ॥ ईशाने स्थापयेत्पूर्णां पूर्ववत्संप्रपूज्य च । ॐ पूर्णे त्वं तु महाविद्ये सर्वसंदोहलक्षणे ॥ ५२ ॥

कामना और सिद्धिकी देनेवाली है इस प्रकार मन्त्रको पढकर नैर्ऋतदिशामें स्थापन करै और उसके अनन्तर तिसी प्रकार जया शिलाका ॥ ४९ ॥ नाममंत्र और पूर्व कहेहुए मन्त्रोंसे नैवेद्य आदिका अर्पण और पूजन करके हे जये ! तू सदा कल्याणरूप है तुझे स्थापन करताहू सदा स्थिर रहिये ॥ ५० ॥ अपने स्वामीको सदैव शीघ्र जयके देनेवाली हो इस मन्त्रको पढकर उस जया नामकी शिलाको सब अर्थोंकी सिद्धिके लिये वायव्यदिशामें स्थापन करै ॥ ५१ ॥ पूर्वकी समान पूजन करके हे पूर्णे ! तू महाविद्यारूप है, संपूर्ण कामनाओंको देनेवाला तेरा स्वरूप है ॥५२॥ इस प्रासादमें सब कार्यको संपूर्णकर इस मन्त्रसे ईशानमें स्थापन करै फिर उसके पीछे घरके स्वामीके शुभकी इच्छा करनेवाला पुरुष शिला और इष्टिकाओंके स्तुतिवाक्योंको पढै और बछडा सुवर्ण सहित गौको आचार्यके लिये दे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार ऋत्विज और शिष्टजनोंको दक्षिणा दे और ज्योतिषी और स्थपतिका विशेषकर पूजन करै ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन करावै, दीन और अन्धोंको अन्न आदि देकर प्रसन्न करै इस प्रकार वास्तुबलिको करके षोडशभागको लेकर ॥ ५६ ॥ उसके

संपूर्णे सर्वमेवात्र प्रासादे कुरु सर्वदा । शिलानामिष्टकानां तु वाचनं तदनन्तरम् ॥ ५३ ॥ न कर्तव्यं तु मनसा पितुस्तु शुभमिच्छता । आचार्याय च गां दद्यात्सवत्सां हेमसंयुताम् ॥ ५४ ॥ ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याच्छिष्टेभ्यश्च स्वशक्तितः । दैवज्ञं पूजयेच्छक्त्या स्थपतिं च विशेषतः ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दीनान्धांश्चैव तोषयेत् । एवं वास्तुबलिं कृत्वा भजेत् षोडशभागिकाम् ॥ ५६ ॥ तस्य मध्ये चतुर्भागं तस्मिन् गर्भं च कारयेत् । भागद्वादशकं सार्द्धं ततस्तु परिकल्पयेत ॥ ५७ ॥ चतुर्भागेन भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात्प्रमाणतः । द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायाच्च मानतः ॥ २८ ॥ शिरोर्द्धार्धस्य चार्द्धेन विधेया तु प्रदक्षिणा । चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयो निर्गमेषु तथा बुधैः ॥ ९ ॥

मध्यमें चार भागके उसमें गर्भकोकरै और ॥ १२ ॥ साढेबारह भाग उसके चारोंतरफ कल्पना करै ॥ ५७ ॥ और स्थानके चौथाई भागके प्रमाणसे भित्तियोंको ऊंचाईका प्रमाण रक्खै और भित्तियोंकी ऊंचाईसे दुगुना प्रमाण कितनी शिखरोंकी ऊंचाई रक्खै ॥ ५८ ॥ और शिरके आठवें भागसे प्रदक्षिणा बनवानी और चारों दिशाओंमें जो निर्गमके स्थान हैं उनमें वह प्रदक्षिणा जाननी ॥ ५९ ॥

भागके दो गर्भ सूत्र मण्डपके विस्तारमें होते हैं उनका आय विभागके अंशोंसे भद्रसे युक्त और अत्यन्त शोभन होता है, गर्भके मानको पांचमें भागसे बुद्धिमान् मनुष्य विभाग करके ॥ ६० ॥ उनमेंसे एकभाग ग्रहण करके बुद्धिमान् मनुष्य प्राग्जीव (द्वार) की कल्पना करे भागोंमें गर्भरूपके समान उसके आगे मुखमण्डप होता है इस ग्रन्थमें यह प्रासादका सामान्य लक्षण कहा ॥ ६१ ॥ इसके अनंतर और भी लिंग और प्रासादके लक्षणको कहताहूं--लिंग पूजाके प्रमाणसे पीठिका बनवावे ॥ ६२ ॥ पीठिकाके आधेभागके प्रमाणसे भित्ति बनवानी और

गर्भसूत्रद्वयं भागे विस्तारे मंत्रपस्य तु । आयस्तस्य विभागांशैर्भद्रयुक्तः सुशोभनः । पञ्चभागेन संभज्य गर्भमानं विचक्षणः ॥ ६० ॥ भागमेक गृहीत्वा तु प्राग्जीवं कल्पयेद्बुधः । गर्भसूत्रसमो भागादग्रतो मुखमण्डपः । एतत्सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्ये ह लक्षणम् ॥६१॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि प्रासादं लिङ्गमानतः । लिङ्गपूजाप्रमाणेन कर्तव्या पीठिका बुधैः ॥६२॥ पीठिकार्द्धेन भागे स्यात्तन्मानेन तु भित्तयः । बाह्यभित्तिप्रमाणेन उत्सेधस्तु भवेत्ततः ॥६३॥ भित्त्युच्छ्रायाचु द्विगुणः शिखरस्य समुच्छ्रयः । शिखरस्य चतुर्भागाः कर्तव्यास्स्युः प्रदक्षिणाः ॥६४॥ प्रदक्षिणायास्तु समस्त्वग्रतो मण्डपो भवेत् । तस्य चार्द्धेन कर्तव्यस्त्व ग्रतो मुखमण्डपः ॥६५॥ प्रासादान्निर्गतौ कार्यौ कपोतौ गर्भमानतः । उर्ध्वं भित्त्युच्छ्रयौ तस्य मञ्जरीं तु प्रकल्पयेत् ॥ ६६ ॥

बाहरकी भित्तिके प्रमाणसे ऊंचाई होती है ॥ ६३ ॥ भित्तिके ऊंचाईसे दूनी शिखरकी ऊंचाई होती है और शिखरसे चौथे भागोंकी प्रदक्षिणा बनवानी ॥ ६४ ॥ प्रदक्षिणाके समान आगेका मण्डप होता है और उससे आधा अग्रभागमें मुखमण्डप बनवाना ॥ ६५ ॥ प्रासादसे निकसते हुए गर्भके प्रमाणसे दो कपोत बनवावे और वे ऊपरको भित्तिके समान ऊंचे हों और उनकी मंजरीभी बनवानी ॥ ६६ ॥

मंजरीभी प्रमाणसे डेढगुणी शुकनासिकाको बनवावे और उसके ऊपर उससे आधा वेदीबंध होता है ॥ ६७ ॥ वेदीके ऊपर जो शेष कण्ठ है वह आमलकसार कहाता है इस प्रकार विभाग करके बुद्धिमान् मनुष्य शोभन प्रासादको बनवावै ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर और भी प्रासादका लक्षण हम कहते हैं--हे द्विजो ! गर्भोंके प्रमाणसे उस प्रासादके प्रमाण तुम सुनो ॥ ६९ ॥ नौभागमें प्रासादके गर्भको अर्थात् मध्यकी सम्पूर्ण भूमिको विभाग करके मंदिरके सुंदर ८ आठ पादोंकी चारों तरफ पीठिकाकी कल्पना करे ॥ ७० ॥ इसी मानसे भित्तियोंका विस्तार

मञ्जर्या सार्द्धमानेन शुकनासं प्रकल्पयेत् । ऊर्द्ध्वं तथार्द्धभागेन वेदीबन्धो भवेदिह ॥ ६७ ॥ वेद्याश्चोपरि यच्छेषं कण्ठमामल सारकम् । एवं विभज्य प्रासादं शोभनं कारयेद्बुधः ॥६८॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि प्रासादस्येह लक्षणम् । गर्भमानेन प्रासाद प्रमाणं शृणुत द्विजाः ॥६९॥ विभज्य नवधा गर्भं मध्ये लिङ्गस्य पीठिका । पादाष्टकं तु रुधिरं पार्श्वतः परिकल्पयेत् ॥७०॥ मानेनानेन विस्तारो भित्तीनां तु विधीयते । पादे पञ्चगुणं कृत्वा भित्तीनामुच्छ्रयो भवेत् ॥ ७१ ॥ स एव शिखरस्यापि द्विगुणः स्यात्समुच्छ्रयः । चतुर्धा तु शिरो भज्य अर्द्धं भागद्वयस्य वा ॥७२॥ शुकनासं प्रकुर्वीत तृतीये वेदिका मता । कण्ठमामलसारं च चतुर्थं परिकल्पयेत् ॥ ७३ ॥ कपोलयोस्तु संहारो द्विगुणोऽस्य विधीयते । शोभनैर्वप्रवल्लीभिरण्डकैश्च विभूषितः ॥ ७४ ॥

कहा है. एक पादकी पांच गुणा करके भित्तियोंकी ऊंचाई होती है ॥ ७१ ॥ वही दूनी शिरकी ऊँचाई होती है. शिखरकी चौथाई अथवा दो भागका जो अर्ध भाग उसके प्रमाणकी ॥ ७२ ॥ शुकनासिकाको बनवावै. अमलसार नामका जो कण्ठ है वह चौथा भागका बनवावै ॥ ७३ ॥ उसके कपोलोंका संहार (प्रमाण) दूना कहा है. वह शोभन वप्रवल्ली और अण्डकोंसे विभूषित होता है ॥ ७४ ॥

प्रासादके विषे जो तीसरा प्रमाण है वह तुम्हारे प्रति कहा. तिसी प्रकार प्रासादके विषे अन्य प्रमाणको भी सामान्यरीतिसे तुम सुनो ॥ ७५ ॥ जिसमें देवता टिकते हैं उस प्रासादके भेदके तीन विभाग करले. प्रमाणसे रथको बनवाकर उसके वामभागमें चलावे ॥ ७६ ॥ प्रासादके चारों तरफ एकपादकी नेमि बनवावे गर्भको दूना करके जो प्रमाण हो वही नेमिका मान होता है ॥ ७७ ॥ यही भित्तियोंकी ऊँचाई होती है, उससे दूना शिखर होता है, उसके पांचवें भागका पूर्वको है ग्रीवा जिसकी ऐसा निःश्वास कहाता है ॥ ७८ ॥ प्राकारके शिखरको

प्रासादे यस्तृतीयस्तु मया तुभ्यं निवेदितः । सामान्यमपर तद्वत्प्रासादं शृणुत द्विजाः ॥७५॥ त्रिभेद कारयेत्क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः । रथं कृत्वा तु मानेन बाह्यभागविनिर्गतम् ॥ ७६ ॥ नेमी पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः । गर्भं तु द्विगुणं कुर्यान्नेमिमानं भिवेदिह ॥७७॥ स एव भित्तीनामुत्सेधो द्विगुणः शिखरो मतः । प्राग्ग्रीवं पञ्चभागेन निःश्वासस्तस्य चोच्यते ॥७८॥ कारयेच्छिखरं तद्वत्प्राकारस्य विधानतः । प्राग्ग्रीवं तस्य मानेन निष्कांशेन विशेषतः ॥ ७९ ॥ कुर्याद्वा पञ्चभागेन प्राग्ग्रीवं कर्णमूलतः । कारयेत्कनकं तत्र गर्भान्ते हारमूलतः ॥ ८० ॥ एवं तु त्रिविधं कुर्याज्ज्येष्ठमध्यकनीयसम् । लिंगमानानुभेदेन रूपभेदेन वा पुनः ॥ ८१ ॥ एते सामान्यतः प्रोक्ता नामतः शृणुताधुना ॥ मेरुमन्दरकैलासकुम्भसिंहमृगास्तथा ॥ ८२ ॥

भी विधिसे बनवावे. उनके विशेषकर निष्क अंशके प्रमाणसे शिखरकी ग्रीवाको पूर्वदिशाको रक्खै ॥ ७९ ॥ अथवा कर्णमूलके पांचवें भागसे पूर्वको जिसकी ग्रीवा हो ऐसा शिखर बनवावै. उसमें गर्भके अन्तमें हारके मूलसे लेकर कनक बनवावे ॥ ८० ॥ इस प्रकार ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठके भेदसे लिंगमान वा रूपभेदसे तीन प्रकारके शिखरको बनवावै ॥ ८१ ॥ ये शिखर सामान्यसे कहे, अब शिखरोंके नामोंको तुम सुनो- मेरु मन्दर कैलास कुम्भ सिंह और मृग ॥ ८२ ॥ विमानछन्दक और चतुरस्र [चौकोर) अष्टास्र (अठकोना) और षोडशास्र (सोलह कोना) वर्तुल (गोल) सर्वभद्रक ॥ ८३ ॥ सिंहनन्दन और नन्दिवर्द्धन सिंह वृष सुवर्ण पद्मक और समुद्रक ॥ ८४ ॥ ये नामसे कहे हैं. हे द्विजो ! इनके विभागको तुम सुनो--शतशृंग हों और चार जिसके द्वारहों भूमिकाके सोलह भागसे ऊंचा हो ॥ ८५ ॥ नानाप्रकारकी जिसकी विचित्र शिखर हों उसको मेरुप्रासाद कहते हैं. जो बारह चौकका हो वा जिसकी बारह शिखर हों उसको मन्दर कहते हैं. जिसमें नौ

विमानच्छन्दकस्तद्वच्चतुरस्रस्तथैव च । अष्टास्रः षोडशास्रश्च वर्तुलः सर्वभद्रकः ॥ ८३ ॥ सिंहश्च नन्दनश्चैव नन्दिवर्द्धन एव च । सिंहो वृषः सुवर्णश्च पद्मकोऽथ समुद्रकः ॥८४॥ प्रासादा नामतः प्रोक्ता विभागं शृणुत द्विजाः । शतशृङ्गश्चतुर्द्वारो भूमिकाषोडशोच्छ्रितः ॥ ८५ ॥ नानाविचित्रशिखरो मेरुप्रासाद उच्यते । मन्दरो द्वादशः प्रोक्तः कैलासो नवभूमिकः ॥८६॥ विमानच्छन्दकं तद्वदनेकशिखरानतः । स चाष्टभूमिकस्तद्वत्सप्तभिर्नन्दिवर्द्धनः ॥ ८७ ॥ विंशाण्डकसमायुक्तो नन्दनः समुदाहृतः । षोडशास्रकसंयुक्तो नानारूपसमन्वितः ॥८८॥ अनेकशिखरस्तद्वत्सर्वतोभद्र उच्यते । चन्द्रशालासमोपेतो विज्ञेयः पञ्चभूमिकः ॥८९॥ वलभीच्छन्दकस्तद्वच्छुकनासस्त्रयान्वितः । वृषस्योच्छ्रायतस्तुल्यो मण्डितश्चित्रवर्जितः ॥ ९० ॥

९ भूमि हो उसे कैलास कहते हैं ॥ ८६ ॥ अनेक शिखरोंसे जिसका विस्तार हो उसे विमानच्छन्दक कहते हैं और उसकी भूमि (चौक) आठ होती है. जिसकी सात भूमि हों वह नन्दिवर्द्धन होता है ॥ ८७ ॥ बीस जिसकी कोन समान हों वह नन्दन कहा है. जिसकी सोलह १६ कोनहों और जो नानारूपसे युक्त हो ॥ ८८ ॥ अनेक जिसकी शिखरहों उसको सर्वतोभद्र कहते हैं. और वह चंद्रशालासे युक्त होता है उसकी भूमि पांच होती हैं ॥ ८९ ॥ तिसी प्रकार शुककी (तोताकी) नासिकाके समान जो कोनोंसे युक्तहो और वृषकी ऊँचाईके तुल्य

हो मण्डितहो चित्रोंसे वर्जितहो वह वलभीच्छन्दक कहाता है ॥ ९० ॥ सिंहके समान जो दीखै वह सिंह और गजके समान जो दीखै वह गज कहाता है. कुम्भके समान जिसका आकारहो वह कुंभ कहाता है उसकी ऊँचाई भूमिके नवम भागकी होती है ॥ ९१ ॥ अंगुलीके पुटके समान जिसकी स्थितिहो पांच अण्डकोशसे जो भूषित हो और चारों तरफसे जिसकी सोलह कोन हों उसको सामुद्रिक कहते हैं ॥ ९२ ॥ जिसके दोनों पार्श्वभागोंमें चन्द्रशालाके समान मुख हों और ऊंचाहो दो जिसकी भूमिहों जो उतनाही ऊंचा हो और दोही जिसकी भूमि हों वह पद्मक कहा है ॥ ९३ ॥ जिसकी सोलह अस्र और विचित्र शिखर होती हैं वह मन्दिर शुभदायी होता है. जो चन्द्र

सिंहः सिंहगतिर्ज्ञेयो गजो गजसमस्तथा । कुम्भः कुम्भाकृतिस्तद्वद्भूमिकानवकोच्छ्रयः ॥ ९१ ॥ अङ्गुलीपुटसंस्थानपञ्चाण्डकविभूषितः षोडशास्रः समन्तात्तु विज्ञेयः ससमुद्रकः॥९२॥ पार्श्वयोश्चन्द्रशालस्य उच्छ्रायो भूमिकाद्वयम् । तथैव पद्मकः प्रोक्त उच्छ्रायो भूमिकाद्वयम् ॥९३॥ षोडशास्रः स विज्ञेयो विचित्रशिखरः शुभः । मृगराजस्तु विख्यातश्चंद्रशालाविभूषितः ॥ ९४ ॥ प्राग्ग्रीवेण विशालेन भूमिकासषड्डुन्नता । अनेकचन्द्रशालस्तु गजप्रासाद उच्यते॥९५॥पर्यङ्कगृहराजो वै गरुडो नामनामतः । सप्तभूम्युच्छ्रयस्तद्वच्चन्द्रशालात्रयान्वितः॥९६॥ भूमिकास्तु षडशीतिर्बाह्यतः सर्वतो भवेत् । तथान्यो गरुडस्तद्वदुच्छ्रायो दशभूमिकः ॥ ९७ ॥

शालासे विशेषकर भूषित हो वह मृगराजनामसे प्रसिद्ध है ॥ ९४ ॥ जिसकी विशाल पूर्वको ग्रीवाहो भूमिके छठेभागकी ऊंचाई हो वह मृगराज कहाता है. अनेक जिसमें चन्द्रशाला हों वह गजप्रासाद कहाता है ॥ ९५ ॥ पर्य्यंक गृहराज वा नामसे जिसे गरुड कहते हैं जिसकी सातभूमिके भागकी ऊंचाई हो और जिसमें तीन चन्द्रशाला हों ॥ ९६ ॥ जिसके चारों तरफ बाह्यदेशमें छियासी गज वा हाथ भूमिहो वहभी एक प्रकारका गरुडमंदिर कहा है. जिसकी ऊंचाइ भूमिके दशभागको होती है ॥ ९७ ॥

जिसकी सोलह अस्रहों और दो भूमि जिसमें अधिक हों वह पद्मक कहाता है. पद्मकके तुल्य जिसका प्रमाण हो वह श्रीतुष्टक कहाता है, पांच जिसके अण्डहों, तीन जिसकी भूमि हों, गर्भमें जिसके चार हाथ हों ॥ ९८ ॥ वह वृष नामसे होता है. वह प्रासाद सब कामनाओंको देता है, सप्तक और पंचकनामसे जो प्रासाद हमने कहे हैं वे सिंह नामके प्रासादके समान जानने. जो अन्य प्रासाद अन्य प्रमाणसे ॥ ९९ ॥ चन्द्रशालाओंके युक्त कहे हैं, वे सब प्राग्ग्रीवके युक्त होते हैं ईंटोंके वा काष्ठके वा पत्थरके होते हैं. तोरणोंसहित होते हैं मेरु नामका मन्दिर

पद्मकः षोडशास्रस्तु भूमिद्वयमथाधिकः । पद्मतुल्यप्रमाणेन श्रीतुष्टक इति स्मृतः । पञ्चांडकस्त्रिभूमिस्तु गर्भे हस्तचतुष्टयम् ॥ ९८ वृषो भवति नाम्ना यः प्रासादः सर्वकामिकः । सप्तकाः पञ्चकाश्चैव प्रासादा ये मयोदिताः । सिंहस्य ते समा ज्ञेया ये चान्येऽन्यप्रमाणतः ॥ ९९ ॥ चंद्रशालैस्समोपेताः सर्वे प्राग्ग्रीवसंयुताः । ऐष्टिका दारवाश्चैव शैलजाश्च सतोरणाः । मेरुः पञ्चाशद्धस्तः स्यान्मन्दारः पञ्चहीनकः ॥ १०० ॥ चत्वारिंशत्तु कैलासश्चतुस्त्रिंशद्वितानकः । नंदिवर्द्धनकस्तद्वद्द्वात्रिंशत्समुदाहृतः । त्रिंशद्भिर्नन्दनः प्रोक्तः सर्वतोभद्रकस्तथा ॥ १०१ ॥ एते षोडशहस्ताः स्युश्चत्वारो देववल्लभाः । कैलासो मृगराजस्तु वितानच्छंदको गजः ॥१०२॥ एते द्वादशहस्ताः स्थुरेतेषां सिंहनादकः । गरुडोऽष्टकरो ज्ञेयः सिंहो दश उदाहृतः ॥ १०३ ॥

५० पचास हाथका और मन्दर ४५ पैंतालीस ॥ १०० ॥ कैलास ४० चालीस हाथका, वितानक ३४ चौतीस हाथका, बत्तीस ३२ हाथका नन्दिवर्द्धन कहा है. तीस ३० हाथका नन्दन और सर्वतोभद्रक कहा है ॥ १०१ ॥ ये चारों १६ सोलह हाथके देवताओंको प्यारे होते हैं. कैलास मृगराज वितानच्छन्दक और गज ॥ १०२ ॥ ये बारह हाथके होते हैं. इनमें सिंहनादक गरुडके आठ कोन होते हैं. सिंहके दश

१० कोन कहे हैं ॥ १०३ ॥ इसी प्रमाणसे शुभ है लक्षण जिनका ऐसे शुभ प्रासाद बनाने, यक्ष राक्षस नाग इनका आठ ८ हाथका मन्दिर श्रेष्ठ होता है ॥ १०४ ॥ तैसेही मेरु आदि सात ज्येष्ठ (उत्तम) लिंगके शुभदायी कहे हैं. जो मध्यमें श्रीवृक्षक आदि आठ ८ कहे हैं ॥ १०५ ॥ हंस आदि जो पांच कहे हैं वे सब शुभदायी होते हैं, इसके अनन्तर शक्ति सहित लिंगके लक्षणको कहते हैं ॥ १०६ ॥ लिंगकी लम्बाईके अंगुलोंसे बुद्धिमान् मनुष्य लिंगके विस्तारको गिने और लिंगके विस्तारका जितना मानहो उससे तिगुना विस्तार पीठका होता है ॥ १०७ ॥

एवमेव प्रमाणेन कर्तव्याः शुभलक्षणाः । यक्षराक्षसनागानामष्टहस्तः प्रशस्यते ॥१०४॥ तथा मेर्वादयः सप्त ज्येष्ठलिङ्गाः शुभावहाः । श्रीवृक्षकादयश्चाष्टौ मध्ये यस्य उदाहृताः ॥ १०५ ॥ तथा हंसादयः पञ्च उक्तास्ते शुभदा मताः । अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शक्त्या लिंगस्य लक्षणम् ॥१०६॥ लिङ्गदैर्घ्याङ्गुलैर्लिङ्गं विस्तारं गणयेद् बुधः । लिङ्गविस्तारमानेन त्रिगुणं पीठविस्तरम् ॥१०७॥ गर्भगेहप्रविस्तारं त्रिभागं परिकल्पयेत् । तेषु भागेषु चैकेन पीठविस्तारमाचरेत् ॥ १०८ ॥ दीर्घं कुर्वन्ति पीठानां विष्णुभागावसानकम् । मूले मध्ये तथोर्ध्वे च ब्रह्मविष्णुहरांशकम् ॥ १०९ ॥ पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः । पीठोच्छ्राये यथावच्च भागान् षोडश कारयेत्॥११०॥ भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगती मता । वृत्तो भागस्तथैकः स्याद्वृत्तादूर्द्ध्वस्तु भागतः ॥१११॥

गर्भगेहका जो विस्तार है उसके तीन भागकी कल्पना करे उन भागोंमें एक भागसे पीठका विस्तार करे ॥ १०८ ॥ विष्णुके भागपर्यन्त पीठोंकी दीर्घताको करे, मूल मध्य ऊर्ध्व भागमें ब्रह्मा विष्णु और शिव इनके अंशोंको रक्खे ॥ १०९ ॥ अब क्रम क्रमसे पीठिकाके यथार्थ लक्षणको कहता हूं--पीठकी ऊंचाईमें यथायोग्य सोलह भागोंको करे ॥ ११० ॥ उनमेंसे १ एक भाग भूमिमें प्रविष्ट होता है. चार भागोंकी जगती कहाती है एक भागका वृत्त होता है. वृत्तके भागसे ऊर्ध्वभाग होता है ॥ १११ ॥ तीन भागोंसे कण्ठ होता है, कण्ठके तीसरे भागका पद होता है ऊर्ध्वमें जो एक भाग है उसके शेषभागकी पट्टिका होती है ॥ ११२ ॥ जहांतक जगती है वहांतक एक भाग भूमिमें प्रविष्ट होता है. उस जगतीका अर्थात् जलके प्रवाहका निर्गम शेषपट्टिका पर्य्यंत होता है अर्थात् मकानके पुस्तेतक जगती बनावे. जलके निकसनेके लिये वह प्रमाणसे बनवानी ॥ ११३ ॥ लिंग बाण आदिकोंको सात अंश वा तीन भागसे बनवावे अथवा ५ पांच भाग वा दो भाग जिस प्रकार

भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठं पदं कण्ठत्रिभागतः । भागैकमूर्ध्वके यश्च शेषभागेन पट्टिका ॥ ११२ ॥ प्रविष्टं भागमेकं तु जगती यावदेव तु । निर्गमस्तु पुनस्तस्या यावद्वै पोषपट्टिका । वारिनिर्गमनार्थस्तु तत्र कार्यं प्रमाणतः ॥ ११३ ॥ बाणलिङ्गादिकं कुर्यात् सप्तांशं वा त्रिभागितम् ॥ पञ्चभागं द्विभागं वा यथायोग्यं यथास्थिरम् । सप्तभागकृते लिङ्गे चतुरंशान्निवेदयेत् ॥११४॥ पीठमध्यगते गर्तं त्रिभागं चैकभागकम् । पञ्चभागे तु भागांस्त्रीन्द्विभागेऽर्द्धं यथाक्रमम् ॥११५॥ एवं बाणादिलिङ्गानां प्रवेशः शंकरोदितः । स्थूलं शिरः कृशं मूलमुन्नते तन्मुखं शिरः ॥ ११६ ॥ निम्नपृष्ठमिति ख्यातं बालगेहादिलिङ्गके । अज्ञातमुखपृष्ठानां कन्यास्पृष्टं मुखं शिरः ॥ ११७ ॥

शिर रहे उस प्रकार यथायोग्य बनवावे सातभागसे बनाये लिंगमें चार अंशोंको बनवावे ॥ ११४ ॥ पीठके मध्यमें जो गर्त है उसस तीसरा वा एक भागका और पांच भागके गर्तमें तीन भाग और दो भागके गर्तमें आधाभाग क्रमसे रक्खे ॥ ११५ ॥ इसी प्रकार बाणआदि लिंगोंका प्रवेश शिवजीने कहा है, शिर स्थूल हो, मूल कृश हो और उन्नत (ऊंचे) में उसके मुखमें शिर हो ॥ ११६ ॥ जिसका पृष्ठभाग

१ 'लिङ्गवाणादिकम्' इति पाठान्तरम् ।

नीचा हो ऐसा चिह्न बाण गेह आदि लिंगमें होता है. जिनके मुख और पृष्ठभाग आदिका ज्ञान न हो उनका शिर ऐसा होना चाहिये जिसके मुखका स्पर्श कन्या करसके ॥ ११७ ॥ ज्येष्ठ मध्यम कनिष्ठ भेदसे तीन प्रकारकी ब्रह्माकी शिला होती है उससे तीन गुने विस्तारसे वा अन्य प्रकारसे प्राकार (परकोटा) बनवावे ॥ ११७ ॥ पूर्वोक्त पीठोंके विस्तारसे अधिक अंगुलोंसे तीन भाग पीठके विस्तारको करके उसके एक भागके प्रमाणसे ॥ ११९ ॥ दीर्घ (लंबाई) करे और प्रणाल (पन्नाला) को उसके त्रिभागके एक विस्तारसे बनवावे और ब्रह्मसूत्रके चतु

ज्येष्ठा मध्या कनिष्ठा च त्रिविधा ब्रह्मणशिलाः । त्रिगुण विस्तृत कुर्यादन्यथा वा प्रकारकः ॥ ११८ ॥ उक्तानामपि पीठानां विस्तारादधिकाङ्गुलैः । त्रिभागपीठविस्तारं कृत्वा तत्रैकभागतः ॥ ११९ ॥ दीर्घं कुर्यात्प्रणालं च तं त्रिभागैकविस्तरम् । ब्रह्म सूत्रचतुष्के तु स्थाप्य कूर्मशिलां ततः । तद्गर्भे विन्यसेत्कूर्मं सौवर्णं द्वादशं मुखम् ॥१२०॥ तत्र रत्नादिभिस्सार्द्धं भूमिं च हृदये न्यसेत् । तत्तद्गर्भे हि तस्यैव नीरन्ध्रं वज्रलेपकैः । लिप्तोऽथ शांतितोयेन प्रोक्ष्योल्लिख्योक्तवत्ततः ॥१२१॥ ततस्तेजोभि (वि) धां शक्तिं कलितासनरूपिणीम् । स्थापयेच्च सुलग्ने तु दैवज्ञोक्ते मुहूर्तके ॥ १२२ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि मण्डपानां च लक्षणम् मण्डपान् प्रवरान् वक्ष्ये प्रासादस्यानुरूपतः ॥ १२३ ॥

ष्कमें कूर्मशिलाके स्थापन करनेके अनन्तर कूर्मशिलाके गर्भमें द्वादश मुख सोनेके कूर्मका स्थापन करे और उस कूर्मके ऊपर॥ १२०॥ रत्नआदि सहित भूमिको हृदयके ऊपर स्थापन करे तिसकेही उस उस गर्भकोवज्रलेपसे नीरंध्र करे अर्थात् छिद्र रहित करदे फिर लीपकर शांतिपाठके जलसे छिड़के और फिर उल्लेखन करै अर्थात् ऊँचे नीचेको एकरस करदे ॥ १२१ ॥ फिर तेज नामकी शक्ति जो कलिताके आसनरूप हो उसका ज्योतिषियोंके बताये हुए श्रेष्ठ मुहूर्तके श्रेष्ठलग्नमें स्थापन करै ॥ १२२ ॥ इसके अनन्तर मंडपोंका लक्षण कहता हूँ, प्रासादके अनुसार उत्तम मंडपोंको कहता हूं ॥ १२३ ॥ श्रेष्ठ मध्यम कनिष्ठ भेदसे अनेकप्रकारके मंडप बनवावे उनको मैं नाम लेलेकर कह ताहूं--हे द्विजोंमें श्रेष्ठो ! तुम सुनो ॥ १२४ ॥ पुष्पक, पुष्पभद्र, सुवृत्त, अमृतनंदन, कौशल्य, बुद्धिसंकीर्ण, गजभद्र, और जयावह ॥ १२५ ॥ श्रीवृक्ष, विजय, वास्तुक, अर्णश्रुतंधर, जयभद्र, विलास, सश्लिष्ट, शत्रुमर्दन ॥ १२६ ॥ भाग्यपंच, नंदन भानव, मानभद्र, सुग्रीव, हर्षण, कर्णि कार, पदाधिक ॥ १२७ ॥ सिंह, यामभद्र और शत्रुघ्न ये सत्ताईस मंडप शास्त्रकारोंने कहे हैं अब हे ब्राह्मणो ! इनक लक्षणोंको श्रवण करो

विविधा मण्डपाः कार्याः श्रेष्ठमध्यकनीयसः । नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥ १२४ ॥ पुष्पकः पुष्पभद्रश्च सु वृत्तोऽमृतनन्दनः । कौशल्यो बुद्धिसङ्कीर्णो गजभद्रो जयावहः ॥ १२५ ॥ श्रीवृक्षो विजयश्चैव वास्तुकोऽर्णश्रुतन्धरः । जयभद्रो विलासश्च सश्लिष्टः शत्रुमर्दनः॥१२६॥भाग्यपञ्चो नन्दनश्च भानवो मानभद्रकः । सुग्रीवो हर्षणश्चैव कर्णिकारः पदाधिकः॥१२७॥ सिंहश्च यामभद्रश्च शत्रुघ्नश्च तथैव च । सप्तविंशतिराख्याता लक्षणं शृणुत द्विजाः ॥ १२८ ॥ स्तम्भा यत्र चतुष्षष्टिः पुष्पकः स उदाहृतः । द्वाषष्टिः पुष्पभद्रस्तु षष्टिस्तु वृत्त उच्यते ॥ १२९ ॥ स्तंभोऽष्टपञ्चाशद्यापि कथ्यतेऽमृतनन्दनः । कौशल्योऽथ द्विपञ्चाशच्चतुःपंचशतात्पुनः॥१३०॥नाम्ना तु बुद्धिसंकीर्णो द्विहीनो राजभद्रकः।जयावहस्त्रिपंचाशच्छ्रीवत्सस्तु द्विहीनकः॥१३१॥

॥ १२८ ॥ जिसमें चौसठ ६४ स्तंभ हों उसको पुष्पक कहते हैं, जिसमें बासठ ६२ स्तम्भ हों उसे पुष्पभद्र और जिसमें साठ ६० स्तम्भ हों उसे वृत्त कहते हैं ॥ १२९ ॥ जिसमें अठावन ५८ स्तम्भ हों उसको अमृतनंदन कहते हैं. जिसमें बावन स्तम्भ हों उसे कौशल्य कहते हैं, चौवन ५४ स्तम्भवालेको ॥ १३० ॥ बुद्धिसंकीर्ण कहते हैं.

जयावह, इक्यावन ५१ स्तंभवालेको श्रीवत्स कहते हैं ॥ १३१ ॥ बत्तीस ३२ स्तंभका मण्डप हर्षण जानना. बीस २० स्तंभका कर्णिकार होता है अट्ठाईस २८ स्तम्भ जिसमें हों वह पदाधिक होता है. सोलह स्तम्भ जिसमें हों वह सिंह होता है ॥ १३२ ॥ उससे दो न्यूनके स्तम्भको याम और शत्रुघ्न कहते हैं. किसी ग्रंथमें बारह १२ स्तम्भोंसे युक्त यामभद्र कहा है ॥ १३३ ॥ ये पूर्वोक्त मण्डप लक्षणोंसे युक्त यथायोग्य कहे✻ त्रिकोण वृत्तके मध्यमें अष्टकोण षोडशकोण ॥ १३४ ॥ वा चतुष्कोण मण्डपका स्थान बनावे. राज्य विजय अवस्थाकी वृद्धि ॥ १३५ ॥ पुत्र

द्वात्रिंशद्धर्षणो ज्ञेयः कर्णिकारश्च विंशतिः । पदद्विकोऽष्टाविंशतिभिर्द्विरष्टो सिंह उच्यते ॥ १३२ ॥ द्विहीनो यामभद्रस्तु शत्रुघ्नश्च निगद्यते । यामभद्रः क्वचित्प्रोक्तो द्वादशस्तम्भसंयुतः ॥ १३३ ॥ मण्डपाः कथिता ह्येते यथावल्लक्षणान्विताः । त्रिकोणवृत्त मध्ये तु अष्टकोणं द्विरष्टकम् ॥ १३४ ॥ चतुष्कोणं च कर्तव्यं संस्थानं मण्डपस्य तु । राज्यं च विजयं चैव आयुर्वर्द्धनमेव च ॥ १३५ ॥ पुत्रलाभः श्रियः पुष्टिः स्त्रीपुत्रादि क्रमाद्भवेत् । एवन्तु शुभदः प्रोक्तः अन्यथा तु भयावहः ॥ १३६ ॥ इति वास्तुशास्त्रे प्रासादविधानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ अथातः शृणु विप्रेन्द्र द्वारलक्षणमुत्तमम् । द्वाराणां चैव विन्यासाः पक्षाः पञ्चदश स्मृताः ॥ १ ॥ त्रिषु त्रिषु च मासेषु नभस्यादिषु वै क्रमात् । यद्दिङ्मुखो वास्तुनरस्तन्मुखं सदनं शुभम् ॥ २ ॥

लाभ लक्ष्मी स्त्री पुत्र आदिकोंका पोषण क्रमसे पूर्वोक्त मण्डपोंमें होता है. इस प्रकारका मण्डप शुभदायी होता है और अन्यथा भयका दाता होता है ॥ १३६ ॥ इति पं० मिहि० विप्र० वास्तुशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणोंमें इन्द्र ! उत्तम द्वारके लक्षणोंको सुनो द्वारके विन्यासमें पन्द्रह १५ पक्ष कहे हैं, अर्थात् पन्द्रह प्रकारके होते हैं ॥ १ ॥ वे नभस्य (भाद्रपद) आदि तीन तीन मासोंमें क्रमसे होते हैं वास्तु पुरुषका मुख जिस दिशामें हो उसी दिशामें स्थानका द्वार शुभदायी होता है ॥ २ ॥ अन्यदिशाके मुखका घर दुःख शोक भयका दाता होता है तिससे वास्तुपुरुषके मुखकी दिशाका द्वारही श्रेष्ठ है अन्य दिशाका नहीं ॥ ३ ॥ अब दूसरे प्रकारको कहते हैं-- कन्या आदि राशियोंपर तीन तीन राशियोंपर सूर्यके स्थित होनेके समय पूर्व आदि दिशाओंमें द्वारको न बनवावे ॥ ४ ॥ अब तीसरे प्रकारको कहते हैं--कर्क और सिंहके सूर्यमें पूर्व और पश्चिममें मुख होता है, मेष और वृश्चिकके सूर्यमें उत्तर दक्षिणमें मुख होता है ॥ ५ ॥

अन्यदिङ्मुखगेहं तु दुःखशोकभयप्रदम् । तस्मात्तद्दिङ्मुखद्वारं प्रशस्तं नान्यदिङ्मुखम् ॥ ३ ॥ अथ द्वितीयः ॥ त्रिषु त्रिषु च राशीनां कन्यादीनां स्थिते रवौ । पूर्वादिषु न कर्तव्यं द्वारं चैव यथाक्रमम् ॥४॥ अथ तृतीयः ॥ कर्ककुम्भगते सूर्ये मुखं स्यात् पूर्वपश्चिमे । मेषकीटगते वापि मुखं चोत्तरदक्षिणे ॥ ५ ॥ मुखानि चान्यथा कर्तुर्व्याधिशोकभयानि च । अन्यराशिगते सूर्ये न विदध्यात्कदाचन ॥ ६ ॥ अथ चतुर्थः ॥ सिंहे तु पश्चिमं द्वारं तुलायां चात्तरं तथा । कर्कटे पूर्वदिग्द्वारं द्वारं पश्चिमवर्जितम् ॥७॥ कर्कटेऽर्के च सिंहस्थे पूर्वद्वारं न शोभनम् । तुलायां वृश्चिके चैव द्वारं पश्चिमवर्जितम् ॥८॥ कर्कटेऽर्के च सिंहस्थे याम्य द्वारं न शोभनम् । सूर्ये मकरकुम्भस्थे सौम्यद्वारं च निंदितम् । नृयुक्कन्याधनुर्मीनमस्थितेऽर्के न कारयेत् ॥ ९ ॥

अन्यथा जो गृहका द्वार बनाता है उसको व्याधि शोक और भय होता है. अन्य राशियोंके सूर्यमें द्वारको कदाचित् न बनवावे ॥ ६ ॥ अब चौथे प्रकारको कहते हैं--सिंहके सूयम पश्चिम द्वारको, तुलाके सूर्यमें उत्तर मुखके द्वारको, कर्कके सूर्यमें पूर्व दिशाके द्वारको बनवावे, पश्चिम दिशाको छोड़कर द्वार होता है ॥ ७ ॥ कर्क और सिंहके सूर्यमें पूर्वका द्वार श्रेष्ठ नहीं, तुला और वृश्चिकके सूर्यमें पश्चिम दिशाको छोडकर अन्यदिशामें द्वार बनवावे ॥ ८ ॥ कर्कके सिंहके सूर्यमें दक्षिणका द्वार शोभन नहीं, मकरके कुंभके सूर्यमें उत्तरका द्वार निन्दित है. मिथुन

✻ यहांपर विजय मण्डपसे लेकर सुग्रीव मण्डपतकके लक्षण इस ग्रन्थमें न जाने क्यों नहीं लिखे।

कन्या धन मीन इनके सूर्यमें द्वारको न बनवावे ॥ ९ ॥ द्वारका स्तंभ और काष्ठका संचय इनकोभी विशेषकर वर्ज दे । माघमें और सिंहमें काष्ठके छेदनको न करवावे, जो मूढ मोहसे करते हैं उनके घरमें अग्निका भय होता है ॥ १० ॥ अब पञ्चम प्रकारको कहते हैं--पूर्णिमासे अष्टमीतक पूर्व मुखके द्वारको वर्जदे, नवमीसे चतुर्दशीपर्यन्त उत्तरमुखके द्वारको वर्जदे ॥ ११ ॥ अब छठे प्रकारको कहते हैं--ब्राह्मणोंके घरका द्वार पश्चिममुखका, क्षत्रियोंके उत्तरमुखका, वैश्योंके पूर्वमुखका, शूद्रोंका दक्षिणमुखका शुभ होता है ॥ १२ ॥ अब सातवें प्रकारको कहते

द्वारस्तंभौ तथादारुसञ्चयं च विवर्जयेत । माघे सिंहे च दारूणां छेदनं नैव कारयेत् । मोहात्कुर्वन्ति ये मूढास्तद्गेहेऽग्निभयं भवेत् ॥ १० ॥ अथ पञ्चमः ॥ पूर्णादि त्वष्टमी यावत्पूर्वास्यं परिवर्जयेत् । उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशी ॥ ११ ॥ अथ षष्ठः ॥ प्रत्यङ्मुखं ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां तथोत्तरे । वैश्यानां पूर्वदिग्द्वारं शूद्राणां दक्षिणे शुभम् ॥ १२ ॥ अथ सप्तमः ॥ कर्कटो वृश्चिको मीनो ब्राह्मणः परिकीर्तितः । मेषः सिंहो धनुर्धारी राशयः क्षत्रिया स्मृताः । वैश्या वृषमृगौ कन्या शूद्राः शेषाः प्रकीर्तिताः ॥ १३ ॥ वर्णक्रमेण पूर्वा दिग् दक्षिणे पश्चिमे तथा ॥ १४ ॥ यो यस्य राशिर्मर्त्यस्य तस्य द्वारं ततश्चरेत् । दिशि तद्विपरीतं तु कर्तुर्नेष्टफलं भवेत् ॥ १५ ॥

हैं--कर्क वृश्चिक मीन ये राशि ब्राह्मण कहाती हैं, मेष सिंह धनु ये राशि क्षत्रिय कहाती हैं ॥ १३ ॥ वृष मृग कन्या ये राशि वैश्य कहाती हैं और शेष राशि शूद्र कहाती हैं. वर्णके क्रमसे पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तरदिशाओंके द्वार होते हैं ॥१४॥ जिस मनुष्यकी जो राशि हो उसीसे उसका द्वार बनवावे, उसके विपरीत दिशामें द्वार बनवानेसे कर्ताको इष्टफल नहीं होता ॥ १५ ॥

अब आठवें प्रकारको कहते हैं--धन मेष सिंह इन राशियोंपर जब चन्द्रमा हो तो पूर्व दिशामें द्वार बनवावे, मकर कन्या और वृषका चन्द्रमा होय तो दक्षिणदिशामें द्वार बनवावे, तुला मिथुन कुम्भका चन्द्रमा होय तो पश्चिममुखके द्वारको बनवावे ॥ १६ ॥ कर्क वृश्चिक मीनका होयतो उत्तरमें द्वारको बनवावे, अब नवमप्रकारको कहते हैं--कृत्तिकासे सात नक्षत्र पूर्वमें और मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिणमें ॥ १७ ॥ अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिममें और धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तरमें जानने, जिस दिशाके नक्षत्रपर चन्द्रमा स्थित हो उस दिशामें

अथाष्टमः ॥ धनुर्मेषसिंहे यदा रात्रिनाथस्तदा पूर्वभागे न्यसेद्द्वारमाद्यम् । मृगेकन्यकागोस्तु द्वारं च याम्ये तुलायुग्मकुंभे तथा पश्चिमायाम् ॥ १६ ॥ कर्कटे वृश्चिके मीने राशिस्थे चोत्तरे न्यसेत् ॥ अथ नवमः ॥ कृत्तिकाद्यं सप्त पूर्वे मघाद्यं सप्त दक्षिणे ॥ १७ ॥ मैत्राद्यं पश्चिमे ज्ञेयं धनिष्ठाद्यं सप्त उत्तरे । यद्दिग्भसंस्थिते चन्द्रे तद्दिग्द्वारं प्रशस्यते ॥ १८ ॥ पृष्ठदक्षिणवामस्थे न विदध्यात्कदाचन ॥ अथ दशमः ॥ प्रागादि विन्यसेद्वर्गान्सव्यमार्गेण वै द्विजाः ॥ १९ ॥ सिंहे चोत्तरदिग्द्वारं पश्चिमास्यं विवर्जयेत ॥ अथैकादशः ॥ प्राग्दक्षिणे गजद्वारं वृषे प्राच्यान्न चान्यदिक् ॥ २० ॥ पृष्ठद्वारं न कर्तव्यं कोणेष्वेव विशेषतः ॥ अथ द्वादशः ॥ त्रिषु त्रिषु च मासेषु मार्गशीर्षादिषु क्रमात् ॥ २१ ॥

द्वार बनाना शुभ है ॥ १८ ॥ पीठ दक्षिण और वामभागके नक्षत्रपर द्वारको कदाचित् न बनवावे. अब दशवें प्रकारको कहते हैं--हे द्विजो! पूर्व आदि दिशाओंमें सव्य (वाम) मार्गसे वर्गोंको स्थापन करे ॥१९॥ सिंहमें उत्तर दिशा और पश्चिम दिशाके द्वारको वर्जदे, अब ग्यारहवें प्रकारको कहते हैं--पूर्व और दक्षिणमें मेषके सूर्यमें वृषमें पूर्व दिशामें द्वारको बनवावे, अन्यदिशामें नहीं ॥२०॥ स्थानका पीठपर द्वार न करे और

कोणोंमें तो विशेषकर न करे. अब बारहवें प्रकारको कहते हैं--मार्गशिर आदि तीन तीन महीनोंमें क्रमसे ॥ २१ ॥ पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशामें राहु वसता है. द्वारमें वह्निका भय और स्तम्भको राहुके मुखकी दिशामें गाड़नेसे वंशका नाश होता है ॥ २२ ॥ अब तेरहवें प्रकारको कहते हैं-राक्षस (नैर्ऋति) कुबेर (उत्तर) अग्नि जल (पश्चिम) ईशान याम्य वायव्य इन दिशाओंमें आदित्यवारसे लेकर राहु वसता है, आठों दिशाओंके चक्रमें वह राहु गृहके द्वार और गमनके प्रारंभमें वर्जित है ॥ २३ ॥ अब चौदहवें प्रकारको कहते हैं-पहिला

पूर्वदक्षिणतोयेशपौलस्त्याशां क्रमादगुः । द्वारे वह्निभयं प्रोक्तं स्तम्भे वंशविनाशनम् ॥ २२ ॥ अथ त्रयोदशः ॥ रक्षःकुबेराग्नि जले च याम्ये वायव्यकाष्ठासु च भानुवरात् । वसेत्तमश्चाष्टसु दिक्षु चक्रे मुखे विवर्ज्यो गमने गृहे च ॥२३॥ अथ चतुर्दशः ॥ ध्रुवन्त्वाद्यं गृहं प्रोक्तं सर्वद्वारविवर्जितम् । धान्ये पूर्वदिशि द्वारं दक्षिणे जयसञ्ज्ञकम् ॥२४॥ प्राग्दक्षिणे नन्दगृहे पश्चिमे खरमेव च । प्राक्पश्चिमे तथा कान्ते प्रत्यग्याम्ये मनोरमे ॥ २५ ॥ सुवक्त्रे चोत्तरे वर्ज्यं दुर्मुखे चोत्तरे तथा । प्रागुत्तरे क्रूरसंज्ञे विपदो दक्षिणे तथा ॥ २६ ॥ धनदे पश्चिमे वर्ज्यं क्षयं चोत्तरपश्चिमे । आक्रन्दे दक्षिणं त्याज्यं विपुले पूर्वमेव च ॥ २७ ॥

गृह ध्रुव कहा है वह सब द्वारोंसे विवर्जित होता है, पूर्वदिशामें जिसका द्वार हो वह धान्य कहाता है और दक्षिणमें जिसका द्वार हो वह जयसंज्ञक गृह कहाता है ॥ २४ ॥ पूर्व दक्षिणमें द्वार होय तो नन्द गृह होता है, पश्चिममें होय तो खर होता है, पूर्व पश्चिममें होय तो कान्त, पश्चिम दक्षिणमें होय तो मनोरम होता है ॥ २५ ॥ उत्तरमें होय तो सुमुख होता है और उत्तरमें दुर्मुखनामका गृह वर्जित है और उत्तर दक्षिणके क्रूरसंज्ञक गृहमें विपत्ति होती है ॥ २६ ॥ पश्चिम द्वार धनद गृहमें वर्जित है और उत्तर पश्चिममें गृह होय तो क्षय होता है आक्रन्द नामके घरमें दक्षिणका और विपुल नामके घरमें पूर्वका द्वार वर्जित है ॥ २७ ॥ चार जिसमें द्वार हों ऐसा विजय नामका घर जो चारों तरफ आलिन्दोंसे युक्त है वह सर्वतोभद्रनामका गृह राजाओंको सिद्धि करनेवाला कहा है ॥ २८ ॥ अब पन्द्रहवें प्रकारको कहते हैं-अब उस द्वारचक्रको कहताहूं जो पहिले ब्रह्माने कहा है कि, सूर्यके नक्षत्रसे चार नक्षत्र द्वारके ऊपर रक्खै ॥ २९ ॥ दो दो नक्षत्र कोणमें रक्खे और

विजयाख्यं चतुर्द्वारमलिन्दैः सर्वतोयुतम् । राज्ञां सिद्धिकरं प्रोक्तं सर्वतोभद्रसंज्ञकम् ॥२८॥ अथ पञ्चदशः ॥ द्वारचक्रं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा । सूर्यभाद्भचतुष्कं तु द्वारस्योपरि विन्यसेत् ॥ २९ ॥ द्वे द्वे कोणे प्रदातव्ये शाखायुग्मे द्वयं द्वयम् । अधश्च त्रीणि देयानि वेदा मध्ये प्रतिष्ठिताः ॥३०॥ राज्यं स्यादूर्ध्वनक्षत्रे कोणेषूद्वासनं भवेत् ॥ शाखायां लभते लक्ष्मीं ध्वजे चैव मृतिर्भवेत् ॥ ३१ ॥ मध्यस्थेषु भवेत्सौख्यं चिन्तनीयं सदा बुधैः । अश्विनी चोत्तराहस्ततिष्यश्रुतिमृगाः शुभाः । स्वातौ पूष्णे च रोहिण्यां द्वारशाखावरोपणे ॥ ३२ ॥ पञ्चमी धनदा चैव मुनिनन्दावसौ शुभम् । प्रतिपत्सु न कर्तव्यं कृते दुःखमवाप्नुयात् । द्वितीयायां द्रव्यहानिः पशुपुत्रविनाशनम् ॥ ३३ ॥

दो दो नक्षत्र दोनों शाखाओंमें रक्खै और तीन नक्षत्र निचले भागमें रक्खे और चार नक्षत्र मध्यमें रक्खे ॥ ३० ॥ ऊर्ध्वके नक्षत्रोंमें द्वार बनवावे तो राज्य होताहै, कोणके नक्षत्रोंमें उद्वासन (निकास), शाखाके नक्षत्रमें लक्ष्मीकी प्राप्ति और ध्वजाके नक्षत्रोंमें मरण होता है ॥ ३१ ॥ मध्यके नक्षत्रोंमें सुख होता है यह चक्र बुद्धिमान् मनुष्योंको सदा विचारने योग्य है- अश्विनी उत्तरा तिष्य (विशाखा) श्रवण मृगशिर ये नक्षत्र शुभ हैं, स्वाती रेवती रोहिणी द्वार शाखाके स्थापनमें शुभ होते हैं ॥ ३२ ॥ पंचमी धनकी दाता होती है और सप्तमी

अष्टमी नवमी भी शुभ होती हैं प्रतिपदामें द्वार कभी न करै, करै तो दुःख होता है, द्वितीयामें द्रव्यकी हानि और पशु पुत्रका नाश होता है ॥ ३३ ॥ तृतीया रोगकी दात्री चतुर्थी भगको करती है, षष्ठी कुलका नाश और दशमी धनका नाश करती है ॥ ३४ ॥ अमावास्या विरोधको करती है इससे इसमें शाखाका आरोप न करे, केन्द्र और त्रिकोण (नौवां पांचवां) इनमें शुभग्रह होंय और ३ । ११ । ६ स्थानोंमें पापग्रह होंय ॥ ३५ ॥ चून (सातवें) दशवें ये ग्रह शुद्ध होंय तो द्वारकी शाखाका स्थापन शुभ वारमें शुभ होता है और पंचक त्रिपुष्कर योगमें

तृतीया रोगदा ज्ञेया चतुर्थी भङ्गकारिणी । कुलक्षयं तथा षष्ठी दशमी धननाशिनी ॥३४॥ विरोधकृत्त्वमावास्या नास्यां शाखावरोपणम् । केन्द्रत्रिकोणेषु शुभैः पापैस्त्र्यायारिगैस्तथा ॥ ३५ ॥ द्यूनांबरे शुद्धियुते द्वारशाखावरोपणम् । शुभं स्याच्छुभवारे च पञ्चके न त्रिपुष्करे । आग्नेयधिष्ण्ये सोमे हि न कुर्यात्काष्ठरोपणम् ॥ ३६ ॥ प्रणम्य वास्तुपुरुषं दिक्पालं क्षेत्रनायकम् । द्वारशाखारोपणम् च कर्तव्यं तदनन्तरम् । शुभं निरीक्ष्य शकुनमन्यथा परिवर्जयेत् ॥ ३७ ॥ कुड्यं भित्त्वा न कुर्वीत द्वारं तत्र सुखेप्सुभिः । कृत्तिका भगमैत्रं तु विशाखा च पुनर्वसुः ॥३८॥ तिष्यं हस्तं तथार्द्रा च क्रमात्पूर्वेषु विन्यसेत् । मैत्रं विशाखा पौष्णं च नैर्ऋत्यं यमदैवतम् ॥ ३९ ॥

शुभ नहीं, अग्नि जिसका स्वामी हो ऐसे नक्षत्र (कृत्तिका) में और सोमवारको द्वारशाखाका स्थापन न करे ॥ ३६ ॥ वास्तुपुरुषका दिक्पाल और क्षेत्रके स्वामियोंको प्रणाम करके उसके अनन्तर द्वार शाखाका स्थापन शुभशकुनको देखकर करे अन्यथा वर्जदे ॥ ३७ ॥ और सुखके अभिलाषी मनुष्य कुडय (भित्ति) को छेदकर द्वारको कदाचित् न बनवावे, कृत्तिका भग (पूर्वाफा०) अनुराधा विशाखा पुनर्वसु ॥ ३८ ॥ पुष्य हस्त आर्द्रा इन नक्षत्रोंको क्रमसे पूर्वदिशामें रक्खे, अनुराधा विशाखा रेवती भरणी उत्तराषाढा अश्विनी चित्रा ये नक्षत्र क्रमसे दक्षिणमें स्थित हैं मघा प्रौष्ठपद अर्यमा मांसान्नदैवत (मूल) ॥ ३९ ॥ ४० ॥ शतभिषा आश्विनी हस्त ये क्रमसे पश्चिम दिशामें स्थित हैं स्वाती आश्लेषा अभिजित् मृगशिर श्रवण धनिष्ठा ॥ ४१ ॥ भरणी रोहिणी ये क्रमसे उत्तरके द्वारमें स्थापन करे बुद्धिमान मनुष्य उस दिशाके द्वारके नक्षत्रोंमें ही उस दिशाके द्वारको बनवावे ॥ ४२ ॥ और स्तम्भ आदिका स्थापनभी बुद्धिमान मनुष्य विधिसे करै और अधोमुख नक्षत्रोंमें देहली खातको करै ॥ ४३ ॥ और तिर्यङ्मुखनक्षत्रोंमें और द्वारके नक्षत्रोंमें स्तम्भ और द्वारका स्थापन प्रासाद हर्म्य और गृहोंके बीचमें सदैव

वैश्वदेवाश्विनीचित्राः क्रमाद्दक्षिणमास्थिताः । पित्र्यं प्रोष्ठपदार्यम्णं तथा मांसान्नदैवतम् ॥ ४० ॥ वारुणाश्विनमाविश्य क्रमात् पश्चिमसंस्थितम् । स्वात्याश्लेषाभिजित्सौम्यं वैष्णवं वासवं तथा ॥४१॥ याम्यं ब्राह्मं क्रमात्सौम्यं द्वारेषु च विनिर्दिशेत् । द्वारक्षैस्तद्दिशाद्वारं स्थापयेद्वा विचक्षणः ॥ ४२ ॥ स्तंभाद्यारोपणं शस्तं तथैव विधिना बुधैः । अधोमुखैश्च नक्षत्रैर्देहलीखातमेव च ॥ ४३ ॥ तिर्यङ्मुखर्क्षैर्द्वारर्क्षैस्तम्भद्वारावरोपणम् । प्रासादेषु च हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा ॥४४॥ आग्नेय्यां प्रथमं स्तम्भ स्थापयेत्तद्विधानतः स्तम्भोपरि यदा पश्येत्काकगृध्रादिपक्षिणः ॥ ४५ ॥ दुर्निमित्तानि संवीक्ष्य तदा कर्तुर्न शोभनम् । तस्मात्स्तम्भोपरिच्छत्रं शाखां फलवतीं तु वा ॥ ४६ ॥ धारयेदथवा वस्त्र बुधो रत्नादि निःक्षिपेत् । दिक्साधनं च कर्तव्यं शिलाद्वारावरोपणम ॥ ४७ ॥ स्तंभे च वस्तुविन्यासे तथा च गृहकर्मणि । प्रासादे वा तथा यज्ञे मण्डपे बलिकर्मसु ॥४८॥

करै ॥४४॥ पहिलास्तम्भ आग्नेयदिशामें विधिसे स्थापन करे और स्तम्भके ऊपर जब काक गीध आदि पक्षियोंको देखे ॥४५॥ और खोटे निमित्तोंको देखै तो कर्ताको शुभ नहीं होता तिससे स्तंभके ऊपर छत्र वा फलवाली शाखाको ॥४६॥ अथवा वस्त्रको धारण करवादे, बुद्धिमान मनुष्य रत्न आदि स्थापन करे और शिलाद्वारके स्थापनमें दिशाका साधनभी करे ॥ ४७ ॥ स्तंभ वास्तुपुरुषके स्थापन गृहकर्म प्रासाद यज्ञमण्डप और

बलिकर्म इनमें दिक्साधन करे ॥ ४८ ॥ कृत्तिकाके उदयमें और श्रवणके उदयमें प्राची दिशा होती है, चित्रा और स्वातीके अन्तरमें प्राची होती है और सूर्यकी स्थितिमें दिन प्राची होती है ॥ ४९ ॥ यदि श्रवण पुष्य और चित्रा स्वातीका जो अन्तर यह प्राची दिशाका रूप है जब दण्डमात्र सूर्यका उदय होचुका हो ॥ ५० ॥ द्वादशांगुलके मानसे वा शंकुसे कल्पना करे, शिलाका तल भलीप्रकार शुद्ध हो और लिपा हो और समान हो ॥ ५१ ॥ इष्ट शंकुके प्रमाणसे समान मण्डलको लिखे, उसके मध्यमें शंकुको स्थापन करे और दो रेखावाले वृत्तको

कृत्तिकोदयतः प्राची प्राची स्याच्छ्रवणोदये । चित्रास्वात्यन्तरे प्राची दिनप्राची रवेः स्थिता ॥ ४९ ॥ यदि वा श्रवणं पुष्य चित्रास्वात्योर्यदन्तरम् । एतत्प्राचीदिशारूपं दण्डमात्रोदिते रवौ ॥५०॥ द्वादशाङ्गुलमानेन शङ्कुना वा प्रकल्पयेत् । शिलातले सुसशुद्धे सुलिप्ते समताङ्गते ॥५१॥ इष्टशङ्कुप्रमाणेन सममण्डलमालिखेत् । तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं वृत्तं कृत्वा द्विरेखिकम् ॥ द्युतिप्रवेशाय गमस्थाने चिह्नं प्रकल्पयेत् । अपरेऽह्नि च तन्मध्ये शंकुमारोपयेत्ततः ॥ ५२ ॥ तत्र चिह्नं च तन्मानं मानयोर्यदन्तरम् । तेनानुमानेन विषुवद्दिवसान्तं च साधयेत् ॥५३॥ यावंतो व्यवह्रियंते तावद्वृत्ते विनिक्षिपेत् । शोधयेद्योजयेद्वापि दक्षिणोत्तरयोर्द्वयोः ॥ ५४ ॥ क्रान्त्योर्यदवशिष्येत तत्प्राची समुदाहृता ॥ ५५ ॥

अर्थात् गोल आकारको बनाकर कांतिके प्रवेशके लिये गमनके स्थापनमें चिह्नकी कल्पना करे. फिर दूसरे दिन उसके मध्यमें शंकुक आरोपण करे (रक्खे) ॥ ५२ ॥ उसमें चिह्न और उसका जो मान उन दोनों मानोंके जो अनतर (समीप) उसी अनुमानसे विषुवत् (तुला मेष) संक्रांतिके अंतके दिनतक साधन करे ॥ ५३ ॥ जितने चिह्नोंका व्यवधान हो उतने वृत्तमें डारदे उनका शोधन करे वा योजन दक्षिण और उत्तर दोनोंमें करे अर्थात् घटादे वा मिलादे ॥ ५४ ॥ क्रांतियोंके मध्यमें जो शेष रहे वही प्राची दिशा कही है ॥ ५५ ॥

अब द्वारके फलोंका वर्णन करते हैं--ईशानसे पूर्वमें और अग्निकोणसे दक्षिणमें और नैर्ऋत्यसे पश्चिममें और वायव्यसे उत्तर दिशामें क्रमसे चार दिशा स्थित रहती हैं ॥ ५६ ॥ पूर्व आदि दिशाके क्रम योगसे अग्निका बास होय तो अग्निका भय होता है, पर्जन्य (मेघ) होय तो अनन्त धनकी दाता बहुत नारी होता हैं ॥५७॥ माहेन्द्र (इन्द्रधनुष) होय तो राजाकी दया होती है, सूर्य होय तो अत्यंत क्रोध होता है सत्य होय तो अनृत होता है और अत्यंत क्रूर स्वभाव होता है ॥ ५८ ॥ अंतरिक्ष होय तो नित्य चोरोंका समागम होता है, दक्षिणमें होय तो

अथ द्वारफलानि ॥ ईशानमादितः पूर्वं आग्नेयाद्दक्षिणे स्थिताः । नैर्ऋत्यात्पश्चिमे ज्ञेया वायव्यात्सौम्यदिक् स्थिताः ॥ ५६ ॥ पूर्वादिक्रमयोगेन हुताशेऽग्निभयं भवेत् । पर्जन्ये प्रचुरा नार्यो जायन्ते बहुवित्तदाः ॥ ५७ ॥ माहेन्द्रे नृपवात्सल्यं सूर्येऽतिक्रोधता भवेत् । सत्येऽनृतत्वं विज्ञेयं क्रूरत्व च भृशं भवेत् ॥५८॥ अन्तरिक्षे च विज्ञेयो नित्यं चोरसमागमः । दक्षिणे स्यात् पुत्रनाशो वायव्ये प्रेष्यमेव च ॥ ५९ ॥ नीचत्वं वितथे ज्ञेयं गृहे तिष्ठति सन्ततिः । शूद्रकर्मा भवेत्पौष्णे नैर्ऋत्ये कर्तृनाशनम् ॥ ६० ॥ अधनं भगराजाख्ये मृगे पुत्रविनाशनम् । पश्चिमे पित्र्ये स्वल्पायुरधनं च महद्भयम् ॥ ६१ ॥ सुग्रीवे पुत्रनाशः स्यात् पुष्पदन्ते तु वर्द्धनम् । वरुणे क्रोधभोगित्वं नृपभङ्गस्तथाऽसुरे ॥ ६२ ॥

पुत्रका नाश, वायव्यमें होनेसे दासभाव होता है ॥ ५९ ॥ वितथ (झूठ) में नीचता जाननी और घरमें सन्तति टिकती है, रेवती नक्षत्रमें द्वारको बनावे तो शूद्रकर्मकी करनेवाली संतान होती है,नैर्ऋत्यमें कर्ताका नाश होता है ॥ ६० ॥ भगराज (पूर्वाफा०,) में धनहीन होता है, मृगशिरामें पुत्रका नाश, मघामें पश्चिममुखका द्वार बनावे तो अल्प आयु धनका अभाव महान् भय होता है ॥ ६१ ॥ सुग्रीवमें पुत्रका नाश, पुष्पदंतमें वृद्धि

वरुणमें क्रोध और भोग असुरमें राजाका भंग होता है ॥ ६२ ॥ शोकमें नित्यअत्यन्त सूखापन, पापनामकेमें पापका संचय, उत्तरमें नित्य रोग और मरण, नागमें महान् शत्रुका भय होता है ॥६३॥ मुख्यमें धन और पुत्रोंकी उत्पत्ति, भल्लाटमें विपुल (बहुत) लक्ष्मी, सोममें धर्मशीलता भुजंगमें बहुत वैर होता है ॥ ६४ ॥ आदित्यवारको सदैव कन्याओंका जन्म अदिति नक्षत्रमें धनका संचय होता है पदपदमें किया श्रेष्ठद्वार श्रेष्ठ फलको देता है अर्थात् काष्ठका प्रमाण पदप्रमाणका हो ॥ ६५ ॥ जो दो पदोंसे बनाया हो वह मिश्र फलको देता है, नौ ९ से भाग

नित्यातिशोषिता शोके पापाख्ये पापसञ्चयः । उत्तरे रोगवधौ नित्य नागे रिपुभय महत् ॥ ६३ ॥ मुख्ये धनसुतोत्पत्तिर्भल्लाटे विपुलाः श्रियः । सोमे तु धर्मशीलत्वं भुजङ्गे बहुवैरता ॥६४॥ कन्यादोषाः सदादित्ये अदितौ धनसञ्चयः । पदे पदे कृत श्रेष्ठं द्वारं सत्फलदायकम् ॥ ६५ ॥ पदद्वयं कृतं यच्च यद्वा मिश्रफलप्रदम् । सूत्रे नवहृते भागे वसुभाग तथैव च ॥ ६६ ॥ प्रासादे कारयेद्विद्वानावासे न विचारणा । बहुद्वारेष्वलिंदेषु न द्वारनियमः स्मृतः ॥ ६७ ॥ सदैव सदने जीर्णोद्धारे साधारणेष्वपि । मूलद्वारं प्रकर्तव्य वटे स्वस्तिकसन्निभम् ॥ ६८ ॥ यस्यातपत्रं प्रमथागणाकीर्णं प्रशस्यते । वीथिप्रमाणात्परतो द्वार दक्षिण पश्चिमे ॥ ६९ ॥ न कार्यं प्रथमाकीर्णं सुखिनं वा प्रकल्पयेत् । प्राकारे च प्रपायां च द्वारं प्रागुत्तरं न्यसेत् ॥ ७० ॥

दिये सूत्रमें वा वसुभागके प्रमाणसे ॥ ६६ ॥ प्रासादमें बुद्धिमान मनुष्य द्वारको बनवावे. आवास (बसनेका घर) में कोई विचार नहीं है, अनेक द्वारोंके अलिन्दों (देहली) में द्वारका नियम नहीं कहा है ॥ ६७ ॥ जीर्णोद्धार सदनमें (घरमें) और साधारण घरोंमें मूलमें द्वार (छिद्र) घटमें स्वस्तिकके समान करना ॥ ६८ ॥ जिसका आतपत्र (छत्र) प्रथमगणोंसे आकीर्ण (युक्त) हो वह श्रेष्ठ होता है, वीथि (गली) प्रमाणसे परै जो दक्षिण पश्चिमका द्वार है वह ॥ ६९ ॥ प्रथम आकीर्ण न करना चाहिये अथवा उस द्वारको सुखदायी बनवावे अर्थात् सुखसे जाने आने योग्य होना चाहिये, प्राकार और प्रपामें द्वार पूर्व और उत्तरमें बनवावे ॥ ७० ॥ द्विशालाओंमें भी दुर्गमें द्वारक दोष नहीं होता है ॥ ७१ ॥ जो प्रधान महाद्वार बाहिरकी भीतोंमें स्थित है इसको भूति (ऐश्वर्य) का अभिलाषी राजा रथ्यासे विद्ध न बनवावे ॥ ७२ ॥ जिस घरमें सरल मार्गसे प्रवेश होता है उसमें मार्गके वेधको नानाशोकरूप फलोंका दाता समझे ॥ ७३ ॥ यदि द्वारके मुखपर वृक्ष स्थित होय तो उसको तरुवेध जाने, उस वेधमें कुमारका मरण और नानाप्रकारके रोग होते हैं ॥ ७४ ॥ घरके

द्विशालासु च तद्वच्च द्वारं प्राग्वत्प्रकल्पयेत् । चतुर्द्वारमये दुर्गे द्वारदोषो न विद्यते ॥ ७१ ॥ प्रधानं यन्महाद्वारं बाह्यभित्तिषु संस्थितम् । रथ्याविद्धं न कर्तव्यं नृपेण भूतिमिच्छता ॥ ७२ ॥ सरलेन च मार्गेण प्रवेशो यत्र वेश्मनि । मार्गवेधं विजानीया न्नानाशोकफलप्रदम् ॥ ७३ ॥ तरुवेधं विजानीयाद्यदि द्वारमुखे स्थितम् । कुमारमरणं ज्ञेयं नानारोगश्च जायते ॥ ७४ ॥ अपस्मारभय विद्याद्गृहाभ्यन्तरवासिनाम् । द्वाराग्रे पञ्चवेधं तु दुःखशोकामयप्रदम् ॥ ७५ ॥ जलस्रावस्तथा द्वारे मूलेऽनर्थं च यो भवेत । द्वाराग्रे देवसदनं बालानामार्तिदायकम् ॥७६॥ देवद्वारं विनाशाय शाङ्करं द्वारमेव च । ब्रह्मणो यच्च संविद्ध तद्भवेत् कुलनाशनम् ॥ ७७ ॥ गृहमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यधान्यविनाशनम् । अवातकलहं शोकं नार्यावासं प्रदूषयेत् ॥ ७८ ॥

भीतर जो बसते हैं उनको अपस्मार (मृगी) रोगका भय जानना. द्वारके आगे पांच प्रकारका वेध दुःख शोक और रोगको देता है ॥ ७५ ॥ द्वारमें जलका स्राव (बहना) हो वा मूलमें होय तो अनर्थोंका समूह होता है द्वारके आगे देवताका स्थान होय तो बालकोंको दुःखदायी होता है ॥ ७६ ॥ देवताके मंदिरका द्वार होय तो वह विनाश करता है, महादेवके मंदिरका द्वार ब्रह्माके स्थानके द्वारसे विंधा होय तो वह कुलको नष्ट करनेवाला होता है ॥ ७७ ॥ घरके मध्यभागमें बनाया हुआ द्वार द्रव्य और धान्यका विना

शक होता है, विना वात कलह शोकको और स्त्रियोंके वासमें दूषणोंको करता है ॥ ७८ ॥ उत्तरमें जो पांचवां द्वार है उसको ब्रह्मासे विद्ध कहते हैं तिससे संपूर्ण शिराओं (कोण) में और विशेषकर मध्यभागमें ॥ ७९ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य द्वारको न बनवावे और प्रासादमें तो पूर्वोक्तसे विपर्यय (उलटा) होता है देवताके संनिधान (समीप) में और श्मशानके संमुख गृहमें भी विपरीत फल समझे ॥ ८० ॥ स्तंभके वेधमें और पाषाणके वेधमें स्त्रीका नाश होता है, देवताके संनिधानमें घर होय तो घरके स्वामीका क्षय होता है ॥ ८१ ॥ श्मशानके समुख

उत्तरे पञ्चमं द्वारं ब्रह्मणो विद्धमुच्यते । तस्मात्सर्वशिरा ह्येव मध्ये चैव विशेषतः ॥ ७९ ॥ द्वारं न कारयेद्धीमान् प्रासादे तु विपर्ययः । देवतासन्निधाने तु श्मशानाभिमुखं तथा ॥८०॥ स्त्रीनाशं स्तम्भवेधे स्यात्पाषाणे च तथैव च । देवतासन्निधानस्थे गृहे गृहपतेः क्षयः ॥ ८१ ॥ श्मशानाभिमुखे गेहे राक्षसाद्भयमादिशेत् । चतुःषष्टिपदं कृत्वा मध्ये द्वारं प्रकल्पयेत् ॥ ८२ ॥ विस्ताराद्द्विगुणोच्छ्रायस्तत्त्रिभागः कटिर्भवेत । विस्तारार्द्धं भवेद्गर्भो वित्तयोन्यः समन्ततः ॥ ८३ ॥ गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम् । उच्छ्रायात्पादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुदुम्बरा ॥८४॥ विस्तारपादप्रमितं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम् । त्रिपंचसप्त नवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्यते॥८५॥ कनिष्ठ मध्यमं ज्येष्ठ यथायोगंप्रकल्पयेत्।विस्ताराद्द्विगुणाच्छ्रायश्चत्वारिंशाद्धरुत्तमः ॥८६॥

घरमें राक्षसोंसे भय होता है इससे चतुःषष्टिपद वास्तुविधिको करके मध्यमें द्वारको बनवावे ॥ ८२ ॥ विस्तारसे दूनी ऊंचाई और ऊंचाईका तीसरा भाग पृष्ठ होता है और विस्तारसे आधा गर्भ (चौक) होता है और वित्तकी योनि चारोंतरफ होती है ॥ ८३ ॥ गर्भके पादसे विस्तीर्ण और द्विगुण ऊंचा द्वार होता है. ऊंचाईसे पादमात्र विस्तारकी (गूलर) देहलीकी द्वारशाखा होती है ॥८४॥ विस्तारके पादकी बराबर शाखाओंका बाहुल्य कहा है, तीन, पांच, सात, नौ, शाखाओंका द्वार इष्ट होता है ॥ ८५ ॥ उसको कनिष्ठ मध्यम ज्येष्ठ यथायोग्य बनवावे. विस्तारसे दूनी ऊंचाई होती है वह चालीस हस्तोंसे उत्तम कही है ॥ ८६ ॥ उत्तम घर धन्य आयुका दाता धन्यधान्यका वर्द्धक होता है घरमें १८० एकसौ अस्सी ऐसी खिडकी हों जिनमें पवनका गमन आगमन होता हो ॥ ८७ ॥ किसी प्रकार दशआधिक शत ११० वा सोलहसे अधिक शत ११६ अथवा शत हो, वा तृतीय ७५ हो अथवा अशीति ८० ऐसे द्वार बनवावे ॥ ८८ ॥ ये दश प्रकारके द्वार क्रमसे सदैव कहे हैं. अन्य जो मनके उद्वेग करनेवाले द्वार हैं वे सदैव वर्जित हैं ॥ ८९ ॥ द्वारके वेधको तो यत्नसे सर्वथा वर्ज दे घरकी ऊंचा

धन्यमुत्तममायुष्यं धनधान्यकमेव च । शतं चाशीतिसहितं वातनिर्गमनं भवेत् ॥ ८७ ॥ अधिकं दशभिस्तद्वत्तथा षोडशभिः शतम् । शतमानं तृतीयं तु भवत्यशीतिभिस्तथा ॥ ८८ ॥ दशद्वाराणि चैतानि क्रमेणोक्तानि सर्वदा । अन्यानि वर्जनीयानि मनसोद्वेगदानि तु ॥८९॥ द्वारवेधं तु यत्नेन सर्वथा परिवर्जयेत । गृहोच्छ्रायाद्द्विगुणितं त्यक्त्वा भूमिं बहिः स्थितः ॥ ९० ॥ न दोषाय भवेद्वेधो गृहस्य गृहिणस्तथा । गृहार्द्धं गृहिणी ज्ञेया गृहात्पूर्वोत्तरा शुभा ॥ ९१ ॥ पक्षिणी वा तथैव स्यादन्यगेहा न सिद्धिदाः । पृष्ठद्वारं न कर्तव्यं मुखद्वारावरोधनम् ॥ ९२ ॥ पिहिते तु मुखद्वारे कुलनाशो भवेद्ध्रुवम् । पृष्ठद्वारे सर्वनाशः स्वयमुद्घाटिते तथा ॥ ९३ ॥

ईसे दूनी भूमिमें छोडकर बाह्य भागमें द्वार स्थित रहता है ॥ ९० ॥ एक घरका वेध गृहके स्वामीको नहीं होता है घरका आधा भाग गृहिणी जानना वह गृहसे पूर्व और उत्तरमें शुभ है ॥ ९१ ॥ वा पक्षिणी होती है इस प्रकारसे अन्यके बनवाये घर सिद्धिके दाता नहीं होते हैं मुखके द्वारका जिससे अवरोध (रोक) हो ऐसे पृष्ठ द्वारको कदाचित न बनवावे ॥ ९२ ॥ यदि द्वारके मुखका अवरोध होजाय तो निश्चयसे कुलका नाश होता है पृष्ठके द्वारमें सबका नाश होता है. स्वयं उद्घाटित (खोले) में भी यही अनिष्ट फल होते हैं अर्थात्

शास्त्रोक्त रीतिसे द्वारको बनवावे अपने इच्छासे नहीं ॥ ९३ ॥ प्रमाणसे न्यूनमें दुःख होता है. प्रमाणसे अधिकमें राजाका भय होता है, यदि द्वार आधा खण्डित होय तो अस्तके वेधको कहते हैं ॥ ९४ ॥ जो कपाटका छिद्र होय तो कपाटछिद्रवेधको कहते हैं, यदि यन्त्रसे विद्ध द्वार होय तो प्रासादमें धनका नाश होता है ॥ ९५ ॥ जिस द्वारके स्तंभमें शब्द होता हो उसके वंशका नाश होता है तिकोना शकटकी तुल्य सूप व्यजन इनके समान जो द्वार है ॥ ९६ ॥ मुरजाकार वर्तुल द्वारोंको और प्रमाणसे हीन द्वारोंको वर्जदे, त्रिकोणके द्वार में

मानोने व्यसनं कुर्यादधिके नृपतेर्भयम् । अर्द्धखण्डं यदि द्वारं दलवेध विनिर्दिशेत् ॥ ९४ ॥ कपाटच्छिद्रवेधं च कपाटे वै क्षया भवेत् । यत्र विद्धं यदा द्वारं प्रासादे च धनक्षयः ॥ ९५ ॥ स्तम्भं वा रवते यस्य तस्य वंशक्षयो भवेत् । त्रिकोणं शकटाकारं शूर्पव्यजनसन्निभम् ॥ ९६ ॥ मुरजं वर्तुलं द्वारं मानहीनं च वर्जयेत् । त्रिकोणे पीडयते नारी शकटे स्वामिनो भयम् ॥९७॥ शूर्पे धनविनाशः स्याद्धनुषि कलहो स्मृतः । धननाशस्तु मुरजे वर्तुले कन्यकोद्भवः ॥९८॥ मध्यहीनं तु यद् द्वारं नोनाशोक फलप्रदम् । स्तंभाग्रे विन्यसेत्काष्ठं पाषाण नैव धारयेत् ॥ ९९ ॥ नृपालये देवगहे पाषाणानां च कारयेत् । द्वारशाखा नृपाणां तु गृहे पाषाणनिर्मिता ॥ १०० ॥

नारीको पीडा होती है, शकटके द्वारमें स्वामीको भय होता है ॥ ९७ ॥ सूपके समान द्वारमें धनका नाश होता है, धनुषाकारमें कलह कहा है मुरजमें धनका नाश होता है वर्तुल (गोल) द्वारमें कन्याओंका जन्म होता है ॥ ९८ ॥ जो द्वार मध्यभागसे हीन होता है वह नाना शोकरूप फलोंको देता है, स्तंभके अग्रभागपर काष्ठ रक्खे पाषाणका धारण कदाचित् न करे ॥ ९९ ॥ राजाके मन्दिर और देवताके घरमें पाषाणोंकेही द्वार और शाखाओंको बनवावे. राजाओंके घरमें द्वारशाखाभी पाषाणोंसेही बनीहुई होती है ॥ १०० ॥

वही बनवानी । अन्यमनुष्योंके घरोंमें बुद्धिमान् मनुष्य कदाचित् न बनवावे. घरके मध्यभागमें स्तंभ होय तो ब्रह्माका वेध कहाता है ॥१०१॥ गृहके मध्य भागमें भीतकोभी न बनवावे, क्योंकि उससे ब्रह्माका स्थान न छुटेगा इससे गृहस्थी ब्रह्माके स्थानकी यतनसे रक्षा करे. कील आदिकोंकी रक्षा करे ॥ १०२ ॥ अशुद्धपात्रसे, शल्यसे और भस्मसे नाना प्रकारके रोग उस घरमें होते हैं. जहां ब्रह्माका वेध होता है द्वारके ऊपर जो द्वार होता है उस द्वारको शकट कहते हैं ॥ १०३ ॥ चौंसठ ६४ अंगुल ऊंचा और चौतीस ३४ अंगुल चौडा द्वारके ऊपर जो शकट

कर्तव्या नेतरेषां च कारयेन्मतिमान्नरः । गृहमध्ये कृतं स्तम्भं ब्रह्मणो वेधमुच्यते ॥ १०१ ॥ भित्तिश्चैव न कर्तव्या न ब्रह्मस्थान मुच्यते । तत्स्थानं यत्नतो रक्षेद्गृही कीलादिकैस्तथा ॥ १०२ ॥ भाण्डेनाशुचिना तद्वच्छल्येन भस्मना तथा । रोगा नाना विधाः शोका जायन्ते तत्र नित्यशः । द्वारस्योपरि यद्द्वारं तद्द्वारं शकटं स्मृतम् ॥१०३॥ चतुष्षऽष्ट्यङ्गुलोत्सेधं चतुस्त्रिंशच्च विस्तरम् । द्वारस्योपरि यत्नेन शिवाय शकटं च यत् । अध्माते क्षुद्रजं प्रोक्तं कुले कुलविनाशनम् ॥ १०४ ॥ पीडाकरं पीडितं तु अभावं मध्यपीडितम् । बाह्योन्नते प्रवासः स्याद्दिग्भ्रांते दस्युतो भयम् । दौर्भाग्यं निधनं रोगा दारिद्यं कलहं तथा ॥१०५॥ विरोधश्चार्थनाशश्च सर्ववेधे क्रमाद्भवेत् । पूर्वेण फलिता वृक्षः क्षीरवृक्षाश्च दक्षिणे। पश्चिमेन जलं श्रेष्ठं पद्मोत्पलभूषितम् ॥१०६॥

है वह यत्नसे कल्याणके लिये रक्खे, यदि वह शब्द न करे तो क्षुद्रज कहा है. वह कुलका नाशक होता है ॥ १०४ ॥ पीडित द्वार पीडाको करता है, मध्यपीडितद्वार अभावको करता है, बाहरको उन्नतद्वार होय तो प्रवास होता है, दिशाओंमें भ्रान्त होय तो चोरोंसे भय, दौर्भाग्य मरण रोग दरिद्र कलह ॥१०५॥ विरोध अर्थका नाश ये फल क्रमसे सब दिशाओंके वेधमें होते हैं, पूर्वमें फलवाले वृक्ष और पश्चिममें

पद्म और उत्पलोंसे भूषित जल श्रेष्ठ होते हैं ॥ १०६ ॥ चारों तरफ परिखा और वलय आदि बनवाने, दक्षिणमें तपोवनका स्थान और उत्तरमें मातृकाओंका घर बनवाना ॥ १०७ ॥ पश्चिममें लक्ष्मीका निवास, वायव्यमें ग्रहोंकी पंक्ति, उत्तरमें यज्ञकी शाला और निर्माल्यका स्थान बनाना कहा है ॥ १०८ ॥ सोम है देवता जिसकी ऐसी उत्तरदिशामें बलिदानका स्थान कहा है, पूर्वमें वृषोंका स्थान शेष और काम देवका स्थान कहा है ॥ १०९ ॥ जल और वापी और जलशायी विष्णुका स्थान कहा है इस प्रकार शुभमण्डपोंसे युक्त स्थानको बनवावे

सर्वतश्चापि कर्तव्य परिखावलयादिकम् । याम्य तपोवनस्थानमुत्तरे मातृकागृहम् ॥ १०७ ॥ वारुणे श्रीनिवासस्तु वायव्ये गृहमालिका । उत्तरे यज्ञशाला तु निर्माल्यस्थानमुच्यते ॥१०८॥ वारुणे सोमदैवत्ये बलिनिर्वपणं स्मृतम् । पुरतो वृषभस्थानं शेषं स्यात्कुसुमायुधम् ॥१०९॥ जलवापी तथैशान्ये विष्णुं च जलशायिनम् । एवमायतनं कुर्याच्छुभमण्डपसंयुतम्॥ ११०॥ घण्टावितानकसतोरणचित्रयुक्तं नित्योत्सवप्रमुदितेन जनेन सार्द्धम् । यः कारयेत्सुरगृहं भवनं ध्वजांकं श्रीस्तं न मुञ्चति सदा दिवि पूज्यते च ॥ १११ ॥ एव द्वारार्चनविधिं कृत्वा द्वारबलिं ततः । महाध्वजं द्वारमुखे प्रवेशसमये कृतम् ॥ ११२ ॥

॥ ११० ॥ घण्टा वितान तोरण चित्र इनसे युक्त और ध्वजासे चिह्नित और नित्य उत्साहके कर्ता प्रसन्नमनोंसे युक्त देवताके भवनको जो मनुष्य बनवाता है उसको लक्ष्मी कदाचित् नहीं छोड़ती और वह सदैव स्वर्गमें पूजित रहता है ॥ १११ ॥ इस प्रकार द्वारपूजाकी विधिको करके जो द्वारबलिको करे. द्वारके मुखमें प्रवेशके समय महाध्वजाका स्थापन करे ॥ ११२ ॥

उसके सब कर्मोंमें पुत्र द्वारा धन आदिकी वृद्धि होती रहती है. यह द्वारकी विधि ब्रह्माके मुखसे कही हुई जो मनुष्य विधिसे करता है वह सुखी और पुत्रवान् होता है ॥ ११३ ॥ इति पण्डितमिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते वास्तुशास्त्रे द्वारनिर्माणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥ अब वापी कूप तडाग पुष्कर उद्यान मण्डप इनके बनवानेकी विधिको क्रमसे कहता हूं ॥ १ ॥ आय और व्यय आदिकी भली प्रकार शुद्धिको और मास शुद्धिको यहां भली प्रकार विचारे, जैसे घर और देवमन्दिरमें कहआये हैं ॥ २ ॥ त्रिकोण चतुरस्र वर्तुल तडाग आदि उत्तम

पुत्रदारधनादीनां वृद्धिदं सर्वकर्मणि । इति द्वारविधिः प्रोक्तो मया ब्रह्ममुखोदितः । यः करोति विधानेन स सुखी पुत्रवान् भवेत् ॥११३॥इति वास्तुशास्त्रे द्वारनिर्माणं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥ अधुना कथयिष्मामि वापीकूपक्रियाविधिम् । तडागपुष्करोद्यान मण्डपानां यथाक्रमम् ॥ १ ॥ आयव्ययादिसंशुद्धिं मासशुद्धिं तथैव च । यथा गेहे देवगेहे तथैवात्र विचारयेत् ॥ २ ॥ त्रिकोणं चतुरस्रं च वर्तुलं चोत्तमं स्मृतम् । धनुषं कलशं पद्मं मध्यमं तज्जलाश्रयम् ॥३॥ सर्पोरगं ध्वजाकारं न्यूनं प्रोक्तं च निंदितम् ॥ कोशो धान्यं भयं शोकनाशनं सौख्यमेव च ४॥ भयं रोगं तथा दुःखं कीर्तिं द्रव्याग्निजं भयम् । यशश्च क्रमतश्चैत्रमासादेस्तत्फलं स्मृतम् ॥५॥ रोहिणी चोत्तरात्रीणि पुष्यं मैत्रं च वारुणम् । पित्र्यं च वसुदैवत्यं भगणो वारिबन्धने । जलशोषो भवेत्सूर्ये भौमे रिक्तं विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

कहा है. धनुष कलश पद्मके आकारका जलस्थान मध्यम कहा है ॥ ३ ॥ सर्प उरग ध्वजाके आकारका न्यून और निन्दित कहा है. कोश धान्य भय शोकनाश सुख ॥ ४ ॥ भय रोग और दुःख कीर्ति द्रव्य अग्निका भय और यश ये फल क्रमसे चैत्र आदि मासमें जलस्थालके बनवानेमें कहे हैं ॥ ५ ॥ रोहिणी तीनों उत्तरा पुष्य अनुराधा शतभिषा मघा और धनिष्ठा ये नक्षत्रोंका गण जल स्थानके बनवानेमें विहित है,

आदित्यवारको जलस्थान बनवावे तो जलका शोष, भौमवारमें ॥ ६ ॥ रिक्त, शनैश्चरको मलिनता होती है शेषवार शुभदायी होते हैं, नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा जो क्रमसे तिथि होती हैं वे अपने नामके अनुसार फलको करती हैं ये कर्मके कर्ताने कहा है ॥ ७ ॥ लग्नमें चन्द्रमा होय वा जलोदय राशिका होय अथवा पूर्णचन्द्रमा केन्द्र वा बारहवें स्थानमें हो, लग्नमें बृहस्पति शुक्र वा बुध हो तो चिरकाल तक स्थायी रसवाले सुगंधित जलको कहे ॥ ८ ॥ भौम लग्नसे तीसरे हो, शुक्र सातवें हो, छठे सूर्य हो, ग्यारहवें शनैश्चर हो, चन्द्रमा द्वाद

मन्दे च मलिन कुर्याच्छेषा वाराः शुभावहाः । नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा चैव यथाक्रमम् । यथानाम फलंतद्वत्कुर्यादित्याह कर्मकृत् ॥ ७ ॥ लग्ने शशाङ्कोऽथ जलोदये वा पूर्णः शशी केन्द्रगतो व्यये वा । लग्नेऽथ जीवो भृगुजेऽथ सौम्ये जलं चिरस्थं सुरस सुगन्धम् ॥८॥ कुजे तृतीये भृगुजेऽस्तगे च षष्ठे रवौ लाभगतेऽर्कपुत्रे । चन्द्रेऽष्टषष्ठो व्ययवर्जिते च प्रियं जलं तद्भवतीह चित्रम् ॥ ९ ॥ सौरे तृतीये मदने च चन्द्रे षष्ठे रवौ लाभगते च भौमे । केन्द्रे शुभैश्चाष्टमवर्जितैश्च जलं स्थिरं स्याद्धनपुत्रदं च ॥ १० ॥ केन्द्रत्रिकोणेषु शुभस्थितेषु पापेषु केन्द्राष्टमवर्जितेषु । सर्वेषु कार्येषु शुभं वदन्ति प्रासादकूपादितडागवाप्याम् ॥११॥ चन्द्रोदये तद्दिवसे सुरेज्ये केन्द्रस्थिते चोपचयैः खलैश्च । उद्यानकूपादितडागवापीजलाशयानां करणं प्रशस्तम् ॥ १२ ॥

शभवनको छोडकर छठे आठवें हो तो बडा प्रिय विचित्र जल होता है ॥ ९ ॥ शनैश्चर तीसरे हो, चन्द्रमा सातवें हो, सूर्य छठे और भौम ग्यारहवें स्थानमें हो, अष्टमराशिको छोडकर शुभग्रह केन्द्रमें होय तो धन और पुत्रका दाता स्थिर जल होता है ॥ १० ॥ केन्द्र और त्रिकोणमें शुभ ग्रह स्थित हों, पापग्रह केन्द्र और अष्टमसे भिन्नस्थानमें होंय तो सब कार्योंमें प्रासाद कूप तडाग वापी आदि शुभ होते हैं ॥ ११ ॥ उस दिन चन्द्रमाका उदय हो, बृहस्पति केन्द्रमें स्थित हो, पापग्रह उच्च भवनके होंय तो उद्यान कूप वापी तडाग जलाशयोंका करना अत्यन्त श्रेष्ठ होता है ॥१२॥ सिंह वृश्चिक धनुको छोडकर सब लग्नोंमें जलके स्थानको शुभ कहते हैं, श्रेष्ठ ग्रहोंकी दृष्टि, सौम्य योगोंसे जल राशियोंके नवांश और वर्गमें जलस्थानको बनवावे ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण दिशाओंमें जलके स्थानको बनवावे, नैर्ऋत्य दक्षिण अग्नि और वायव्यदिशाको त्यागदे, पूर्व उत्तर ईशान और पश्चिम दिशाओंमें किया हुआ जलस्थान सुख और सुतका दाता होता है ॥ १४ ॥ पूर्व और वरुणकी दिशामें भी पूर्वोक्त फल होता है गृहके मध्यमें स्थित जलस्थानको वर्ज दे, क्रमसे गर्ग वसिष्ठ हैं मुख्य जिनमें

सर्वेषु लग्नेषु शुभं वदन्ति विहाय सिंहालिधनुर्धरांश्च । ग्रहः सदालोकनयोगसौम्ययोगात्प्रकुर्याज्जलभांशवर्गे ॥१३॥ सर्वासु दिक्षु सलिलं प्रकुर्याद्विहाय नैर्ऋत्ययमाग्निवायून् । पूर्वोत्तरेशानजलशदिक्षु कृतं जलं सौख्यसुतप्रदं च ॥ १४ ॥ न पूर्वकं वारुण दिक्स्थितं च विवर्जयेन्मध्यगृहस्थितं च क्रमेण गर्गादिवसिष्ठमुख्या दिशास्थितानां च जलाशयानाम् ॥ १५ ॥ पुत्रार्तिरग्नेश्च भयं विनाशः स्त्रीणां कलिर्वा ह्यथ दौष्ट्यमेव । नैःस्वं धनं पुत्रविवृद्धिरुक्ता पूर्वादिदिक्षु फलमेतदेव ॥१६॥ व्यासप्रमाणं द्विगुणं च गुण्यं हारस्य हारोत्तरतोत्तरस्य । मध्येऽष्टहारेष्वपि पिण्डसंज्ञमेकादिहारा विषमाः प्रशस्ताः ॥१७॥ एकान्तरं सन्धिसमेक्षितानां व्याधिर्विनाशो भयशोकमुग्रम् । आद्यन्तयोर्मध्यवियुक्तमेतत्तदा विनाशं कुरुते सपत्न्याः ॥ १८ ॥

ऐसे ऋषि दिशाओंमें स्थित जलाशयोंका यह फल कहते हैं ॥ १५ ॥ पुत्रकी पीडा, अग्निका भय, विनाश, स्त्रियोंका कलह और दुष्टता, धनका नाश, धन और पुत्रोंकी विशेषकर वृद्धि यह पूर्व आदि दिशाओंमें जलस्थानका फल होता है ॥ १६ ॥ जलस्थानके व्यासका जो प्रमाण उसको द्विगुणित करे और हारके उत्तरोत्तरके जो हार हैं उनके मध्यमें आठ हारोंमें पिण्ड संज्ञा होती है उनमें एक आदि विषम हार (१, ३, ५, ७) श्रेष्ठ कहे ह ॥ १७ ॥ एक हारके अनन्तरपर सन्धिके स्थानमें जलस्थान दीखे तो व्याधिविनाश भय महान् शोक होता है. और हारके मध्य

भागको छोडकर आदि अन्तमें जलस्थान होय तो सपत्नीके विनाशको करता है ॥ १८ ॥ पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणके जो छिद्र और हार हैं उनके मध्यस्थान जलभागमें होय तो शोक मरण और बन्धुओंके नाशको करते हैं. यह बात मध्यके हारोंमें विचारने योग्य है ॥ १९ ॥ जो हारके सूत्र आदि अन्तरमें गतहों और हारके मध्यभागमें जलाशय होय तो शुभ होता है. इसी प्रकार हारके उत्तरोत्तर क्रमसे जलाशय भ्राता और कलत्रआदिको श्रेष्ठ कहे हैं ॥ २० ॥ यदि दिशाके मध्यमें स्थित जलाशय होय तो मनुष्योंको शुभदायी होते हैं। व्यंगभागमें होय तो

पूर्वापरौ चोत्तरयाम्यगेषु च्छिद्रेषु हारेष्वपि मध्यभागे । कुर्वंति शोकं वधबन्धुनाशं हारेषु मध्येष्वपि चिन्त्यमेतत् ॥ १९ ॥ आद्यन्तयोर्हारगतेषु सूत्रसर्वेषु हाराग्रगते शुभा स्यात् । भ्रातृन्कलत्रादियथोत्तराणि हारस्य हारोत्तरतोत्तरस्य ॥२०॥ दिङ्मध्यसंस्थाः शुभदा नराणां व्यंगेषु बन्धं पशुपत्तिनाशम् । याम्योत्तरं हीनधनं करोति हीनोदकं हीनधनं करोति ॥ २१ ॥ चतुर्थाष्टमगैः पापैर्लग्नगे वा खलग्रहे । चन्द्रेऽष्टमे तदा कर्ता म्रियते मासमध्यतः ॥२२॥ केन्द्रपापग्रहैर्युक्ते अष्टमे च व्ययेऽपि वा । धर्मस्थानगतैर्वापि तज्जलं क्षीयते चिरात् ॥२३॥ केन्द्रगैः सौरिभौमार्कैरष्टमस्थे निशाकरे । तज्जलं वर्षमध्ये तु न तिष्ठति जलाशये॥२४॥

बन्धन पशु और पत्तियोंका नाश होता है. दक्षिण उत्तरमें जलाशय होय तो धनको हीन करता है, न्यून जल होय तो भी धनको हीन करता है ॥ २१ ॥ चौथे आठवें स्थानमें पापग्रह होय लग्नमें खलग्रह होय चन्द्रमा अष्टम होय तो गृहका कर्ता एक मासमें मरता है ॥ २२ ॥ केन्द्र पापग्रहोंसे युक्त होय अथवा अष्टम ८ व्यय १२ स्थानमें होय तो थोडेही दिनमें जल क्षीण (नष्ट) होता है ॥ २३ ॥ शनैश्चर मंगल सूर्य ये केन्द्रस्थानमें हों चन्द्रमा अष्टम स्थानमें हो ऐसे लग्नमें बनवाये जलस्थानमें वर्षदिन भी जल नहीं टिकता ॥ २४ ॥ एक भी पापग्रह अष्टममें स्थित हो, चतुर्थ भवनमें राहु हो और नवमस्थानमें मंगल होय तो विषके समान उस जलस्थानका जल कहा है ॥ २५ ॥ पूर्वोक्त मार्गसे नन्दा आदिकोंका पूजन करे, ईशान आदि क्रमसे दिशाओंकरके शोधित स्थलमें उनका स्थापन कर मध्यमें कुम्भके ऊपर शुभ दिनके समय पूर्णाका स्थापन करे, वरुणके मन्त्रोंसे प्रथम वरुणकी पूजाको करके ॥ २६ ॥ शिरके स्थानमें वट और बेंतकी कीलोंका निवेश करे फिर ग्रहोंकी पूजा और वास्तुपूजाको करे ॥ २७ ॥ उत्तरायण सूर्य हो और वृश्चिकराशिका

एकः पापोऽष्टमस्थोऽपि चतुर्थे सिंहिकासुतः । नवमे भूमिपुत्रस्तु तज्जलं विषवत्स्मृतम् ॥ २५ ॥ नन्दाद्याः पूजनीयाश्च पूर्वोक्तेनैव मार्गतः । ईशानादिक्रमेणैव न्यसेद्दिक्छोधिते स्थले । मध्ये पूर्णां विनिःक्षिप्य कुम्भोपरि शुभे दिने । वरुणस्य विधायादौ पूजां मंत्रैश्च वारुणैः ॥ २६ ॥ वटवेतसकीलानां शिरास्थाने निवेशनम् । ततो ग्रहार्चनं वास्तुपूजाविधिमतः परम् ॥ २७ ॥ सौम्यायने कीटगते पतंगे मधुं विना शीतकरे सुपूर्णे । तथा विरिक्ते विकृते च वारे कार्या प्रतिष्ठा च जलाशयानाम् ॥ २८ ॥ लग्नेषु सौम्यग्रहवीक्षितेषु कार्या प्रतिष्ठा खलु तत्र तेषाम् । जलोदये पूर्णशशी च केन्द्रे जीवे विलग्ने भृगुजेऽस्तगे वा ॥ २९ ॥ एकोऽपि चान्ये भवने स्वकीये केंद्रस्थितो वा शुभदो नराणाम्।एकोऽपि जीवज्ञसितासितानांस्वोच्चस्थितानां भवने स्वकीये॥३०॥

सूर्य हो, चैत्रके विना चन्द्रमा पूर्ण हो और रिक्तासे भिन्न तिथि हों, विकृतवार होय तो जलाशयोंकी प्रतिष्ठा करनी ॥ २८ ॥ लग्नको सौम्यग्रह देखते होंय तो जलाशयोंकी प्रतिष्ठा करनी, पूर्णचन्द्रमा जलोदयराशिका होय केन्द्रमें बृहस्पति होय लग्न वा सप्तम भवनमें शुक्र होय तो प्रतिष्ठा शुभ होती है ॥ २९ ॥ जो कोई अन्यग्रह अपने भवनके हों वा केन्द्रमें स्थित हों तो मनुष्योंको शुभदायी होते हैं

एकभी ग्रह बृहस्पति बुध शुक्र शनैश्चर अपने उच्चभवनके वा अपने भवनके हों ॥ ३० ॥ केन्द्र वा त्रिकोणमें होंय तो मनुष्योंके लिये वह जल स्थिर और शुभदायी होता है ॥ ३१ ॥ जो पुण्यात्मा मनुष्य नगरमें जलकी शालाको बनाते हैं वे तबतक विष्णुके संग आनन्द भोगते हैं जबतक पृथिवीमण्डलपर जल रहता है ॥ ३२ ॥ इति पं० मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतियुते वास्तुशास्त्रे जलाशयादिकरणे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर हे विप्रेन्द्र ! (काष्ठ) वृक्षके छेदनकी विधिको श्रवण करो. देवदारु चन्दन शमी (छोंकर) महुआ ये वृक्ष ॥१॥

केन्द्रत्रिकोणोपगता नराणां शुभावहं तत्सलिलं स्थिरं स्यात् ॥ ३१ ॥ ये कुर्वंति नराः पुण्याः पुरे पानीयशालिकाम् । विष्णुना सह मोदंते यावद्भूमण्डले जलम् ॥३२॥ इति वास्तुशास्त्रे जलाशयादिकरणेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥ अथातः शृणु विप्रेन्द्र दारूणां छेदने विधिम् । सुरदारुचन्दनशमीमधूकतरवस्तथा ॥ १ ॥ ब्राह्मणानां शुभा वृक्षाः सर्वकर्मसु शोभनाः । क्षत्रियाणां तु खदिरबिल्वार्जुनकशिंशिपाः ॥ २ ॥ शालतूनीकसरला नृपवेश्मनि सिद्धिदाः । वैश्यानां खादिरं सिन्धुस्यंदनाश्च शुभवहाः ॥ ३ ॥ तिन्दुकार्जुनशाशाश्च वैसराम्राश्च कण्टकाः । ये चान्ये क्षीरिवृक्षाश्च ते शूद्राणां शुभावहाः ॥४॥ द्व्यङ्गराशिगते सूर्ये माघे भाद्रपदे तथा । वृक्षाणां छेदनं काष्ठसञ्चयार्थं न कारयेत् ॥ ५ ॥

ब्राह्मणोंके लिये शोभन और सब कर्मोंमें श्रेष्ठ होतेहैं और क्षत्रियोंके खदिर बेल अर्जुन शिंशप (शिरस) ॥ २ ॥ शाल तुनिका सरल ये वृक्ष राजाओंके मंदिरोंमें सिद्धिके दाता होते हैं और वैश्योंको खदिर सिंधु स्यंदन ये शुभदाता होते हैं ॥ ३ ॥ तिंदुक अर्जुन शाश वैसर आम, कंटक और जो अन्य क्षीरवृक्ष हैं वे शूद्रोंको शुभदायी कहेहैं ॥ ४ ॥ द्विस्वभावराशिके सूर्यमें माघमें और भाद्रपदमें काष्ठसंचयके लिये वृक्षोंका छेदन न करवावे ॥ ५ ॥ सूर्यके नक्षत्रसे वेद ४ गो २ तर्क ६ दिक् १० विश्व १३ नख २० इनकी तुल्य चन्द्रमाका नक्षत्र होय तो दारु काष्ठोंका छेदन शुभदायी होता है ॥ ६ ॥ सब वर्णोंके लिये शुभदायी पूर्वोक्त काष्ठ कहे और देवदारु चन्दन शमी शिंशिपा खदिर ॥ ७ ॥ शाल और शालविस्तृत अर्थात् शालके समान जिनका विस्तार हो ये वृक्ष सब जातियोंमें श्रेष्ठ हैं. एकजातिके वा दोजातिके जो वृक्ष हैं ॥ ८ ॥ उनको ही सब घरोंमें लगावे. तीन जातियोंसे ऊपर न लगावे अर्थात् तीन प्रकारके काष्ठतक ही घरोंमें लगावे चार पांच जातिके

सूर्यर्क्षाद्वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसम्मिते । चन्द्रर्क्षे दारुकाष्ठानां छेदनं शुभदायकम् ॥ ६ ॥ सर्वेषामपि वर्णानां दारवः कथिताः शुभाः । सुरदारुचन्दनशमीशिंशिपाः खदिरस्तथा ॥ ७ ॥ शालाः शालविस्तृताश्च प्रशस्ताः सर्वजातिषु । एकजात्या द्विजात्या वा त्रिजात्या वा महीरुहाः ॥८॥ कारयेत्सर्वगेहेषु तदूर्द्ध्वं नैव कारयेत् । एकदारुमया गेहाः सर्वशल्यनिवारकाः ॥९ ॥ द्विजात्या मध्यमाः प्रोक्तास्त्रिजात्या अधमाः स्मृताः । क्षीरिणं फलिनं चैव कण्टकाढ्यं च वर्जयेत् ॥ १० ॥ श्मशानेनाग्निना चैव दूषिते ऽप्यथवा भुवा । वज्रेण मर्दितं चैव वातभग्नं तथैव च । मार्गवृक्षं पुराच्छन्नं चैत्यं कल्पं च दैवकम् ॥११ ॥ अर्द्धभग्नार्द्धदग्धाश्च अर्द्धशुष्कास्तथैव च ॥१२॥ व्यङ्गा कुब्जाश्च काणाश्च अतिजीर्णास्तथैव च । त्रिशीर्षा बहुशीर्षाश्च अन्यवृक्षेण भेदिताः ॥१३॥

नहीं और एक काष्ठके जो घर हैं वे सब दुःखोंके निवारक कहे हैं ॥ ९ ॥ दो जातिके काष्ठ मध्यम और तीन जातिके अधम कहे हैं. दूधवाले और फलके दाता और और कंटक आदि वृक्षोंको वर्ज दे ॥ १० ॥ श्मशान अग्नि और भूमि इनसे दूषित और वज्रसे मर्दित और पवनसे भग्न (टूटा) मार्गका वृक्ष लताओंसे आच्छन्न (ढका) चैत्य (चबूतरा) का वृक्ष कुलका वृक्ष अर्थात् बडोंका लगायाहुआ वृक्ष देवताका वृक्ष ॥ ११ ॥ अर्द्धभग्न अर्द्धदग्ध अर्द्धशुष्क अर्थात जो आधे टूटे जले सूखे हों ॥ १२ ॥ व्यंग (तिरछे) कुब्ज (कुबडे) काण अत्यंत जीर्ण और

तीन शिरके, बहुत शिरके और दूसरे वृक्षसे तोडे ए ॥ १३ ॥ जो वृक्ष स्त्रीके नामसे प्रसिद्ध हैं ये पूर्वोक्त संपूर्ण वृक्ष घरके कामोंमें वर्जने योग्य हैं. दूधवाले वृक्ष दूधको और फलके दाता वृक्ष पुत्रोंको नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥ कंटकी वृक्ष कलहको करता है. जिसपर काक बैठते हों वह धनका क्षय करता है. गीधोंका वृक्ष महारोगको और श्मशानके वृक्ष मरणको देते हैं ॥ १५ ॥ जिसपर बिजली गिरीहों वह वज्रभयको देता है. जो पवनसे दूषित हो वह वातके भयको देता है, मार्गके वृक्षसे कुलका ध्वंस होता है, पुरच्छन्नवृक्ष भयको देता है ॥ १६ ॥ कुलके

स्त्रीनाम्ना ये च तरवस्ते वर्ज्या गृहकर्मणि । क्षीरिणः क्षीरनाशाय फलिनः पुत्रनाशनाः ॥ १४ ॥ कण्टकी कलहं कुर्यात्काकाच्छन्नं धनक्षयम् । गृध्रवृक्षं महारोगं श्मशानस्थं मृतिप्रदम् ॥ १५ ॥ वज्रांकं वज्रभयदं वातदं वातदूषितम् । मार्गवृक्षे कुलध्वस्तं पुरच्छन्नं भयप्रदम् ॥ १६ ॥ कुलयवृक्षे भवेन्मृत्युर्देववृक्षे धनक्षयम् । चैत्ये गृहपतेर्मृत्युर्देववृक्षे भयं भवेत् ॥ १७ ॥ अर्द्धभग्नं विनाशाय अर्धशुष्कं धनक्षयम् । व्यंगे मृतप्रजा ज्ञेयाः कुब्जे कुब्जास्तथैव च ॥ १८ ॥ काणे राजभयं विद्यादतिजीर्णे गृहक्षयः । त्रिशीर्षे गर्भपातः स्याद्बहुशीर्षे मृतप्रजा ॥ १९ ॥ अन्यभेदे शत्रुभयमुद्याने खे भयं तथा । वल्लीवृते दरिद्रत्वं पुष्पवृक्षे कुलक्षयः ॥ २० ॥

वृक्षसे मृत्यु, देववृक्षसे धनका नाश, चैत्यके वृक्षसे गृहके स्वामीकी मृत्यु, कुलदेवके वृक्षसे भय होता है ॥ १७ ॥ अर्द्धभग्न वृक्ष विनाशको अर्द्धशुष्क धनके नाशको करते हैं व्यंगमें प्रजा (सन्तान) का मरण जानना. कुब्जमें कुब्ज संतान होती है ॥ १८ ॥ काणे वृक्षसे राजाके भयको जाने, अत्यन्त जीर्णवृक्षसे घरका क्षय होता है, तीन शिरके वृक्षसे गर्भका पात होता है और अनेक शिरके वृक्षसे सन्तानका मरण होता है ॥ १९ ॥ अन्यवृक्षसे जो भेदन किया हो उससे शत्रुका भय होता है, उद्यानके वृक्षसे आकाशमें भय होता है और लताओंसे जो ढकाहो उससे दरिद्रता और पुष्पके वृक्षसे कुलका नाश होता है ॥ २० ॥ सर्पसे युक्त वृक्षसे सर्पका भय और देवालयके वृक्षसे नाश होता है और कन्याका जिसमें चिह्न हो उससे कन्याओंका जन्म होता है छिद्रोंसे जो युक्त हो उससे स्वामीका भय होता है. लिंग वा प्रतिमा वा शक्र इन्द्रध्वजा इनको ॥ २१ ॥ कृत्तिका आदि पांच नक्षत्रोंमें चन्द्रमा होय तो कदाचित् न बनवावे, घर देवालय इनमें यत्नसे इसकी परीक्षा करे और मासदग्ध वारदग्ध और तिथिदग्ध ॥ २२ ॥ रिक्ता तिथि अमावस्या और षष्ठी ६ तिथि इनको भी वर्जदे. एकार्गल दोष और

सर्पयुक्ते सर्पभयं देवालयगते क्षयः । कन्याजन्म तु कन्यांके सच्छिद्रे स्वामिनो भयम् । लिंगे वा प्रतिमायां वा तथा शक्रध्वजेऽपि च ॥ २१ ॥ आग्नेयपञ्चके चन्द्रे न विदध्यात्कदाचन । गृहे देवालये वापि परीक्षेत प्रयत्नतः । मासदग्धं वारदग्ध तिथिदग्धं तथैव च ॥२२॥ रिक्तातिथि च दर्श च तिथिं षष्ठीं च वर्जयेत् । एकार्गलं तथा भद्रां ये च योगाः कुसंज्ञकाः ॥२३॥ उत्पातदूषित मृक्षं संक्रान्तौ ग्रहणेषु च । वैधृतौ च व्यतीपाते न विदध्यात्कदाचन ॥ २४ ॥ सौम्यं पुनर्वसुमैत्रं करं मूलोत्तराद्वये । स्वातौ च श्रवणं चैव वृक्षाणां छेदनं शुभम् ॥ २५ ॥ समभूमिर्वने यस्मिंस्तस्मिन्वृक्षं प्रपूजयेत् । गन्धपुष्पादिनैवेद्यं बलिं दद्याद्विशेषतः ॥ २६ ॥ वस्त्रेणाच्छादितं कृत्वा वेष्टयेत्तन्तुना तथा श्वेतवर्णानुवर्णेन वर्णानुक्तक्रमेण च ॥ २७ ॥

भद्रा और अन्य जो कुयोग हैं ॥ २३ ॥ और उत्पातसे दूषित जो नक्षत्र हैं संक्रांति ग्रहण वैधृति व्यतीपात इनमें घरको कदाचित् न बनवावे ॥ २४ ॥ मृगशिर पुनर्वसु अनुराधा हस्त मूल दोनों उत्तरा स्वाति श्रवण इनमें वृक्षोंका छेदन शुभदायी होता है ॥ २५ ॥ जिस वनकी भूमि समान हो उस वनमें वृक्षका पूजन करे और गन्ध पुष्प आदि नैवेद्यको और विशेषकर बलिको दे ॥ २६ ॥ वस्त्रसे आच्छा

दित (ढक) करके सूत्रसे लपेटे वर्णमें श्वेतवर्ण हो वा चार वर्णोंके युक्तवर्णका हो ऐसे सूत्रसे लपेटे ॥ २७ ॥ इन मन्त्रोंसे उस वृक्षकी यथ योग्य प्रार्थना करै और आचार्य अथवा सूत्रधार रात्रिके समय उस वृक्षके समीप अधिवास (शयन) करे ॥ २८ ॥ विधिका ज्ञाता आचार्य वृक्षका स्पर्श करके रात्रिके समय इस मन्त्रको उच्चारण करै कि, इस वृक्षमें जो भूत है उनके स्वस्ति (कल्याण) हो और उनको नम स्कार है ॥ २९ ॥ इस बलिको ग्रहण करके अपने वासका पर्यय आप करो अर्थात् अन्यत्र जा बसो प्रार्थना करके वर मांगे. हे वृक्षमें श्रेष्ठ !

मन्त्रैरेतैर्यथान्यायं प्रार्थयेत्त पुनः पुनः । आचार्यः सूत्रधारश्च रात्रौ तमधिवास्य च॥२८॥स्पृष्ट्वा वृक्षमिमं मन्त्रं ब्रूयाद्रात्रौ विधान वित् । यानीह वृक्षे भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वः ॥ २९ ॥ उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासपर्ययः । प्रार्थयित्वा वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम ॥ ३० ॥ गृहार्थं वान्यकार्यार्थं पूजेय प्रतिगृह्यताम् । परमान्नमोदकौदनदधिपल्लोलादिभिर्दशैः ॥ ३१ ॥ मद्यैः कुसुमधूपैश्च गन्धैश्चैव तरुं पुनः ॥ सुरपितृपिशाचराक्षसभुजगासुरविनायकाश्च । गृह्णंतु मत्प्रयुक्तां वृक्षं संस्पृश्य ब्रूयात् ॥ ३२ ॥ यानीह भूतानि वसंति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् । अन्यत्र वासं परिकल्पयतु क्षमन्तु तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥३३॥वृक्षं प्रभाते सलिलेन सिक्त्वा मध्वाज्यलिप्तेन कुठारकेण। पूर्वोत्तरस्यां दिशि संनिकृत्त्य प्रदक्षिणं शेषमतो विहन्यात्॥३४॥

आपका कल्याण हो ॥ ३० ॥ घरके लिये वा अन्य कार्यके लिये इस पूजाको ग्रहण करो परम अत्र जलौदन दधि पल्लोल आदि दशोंसे ॥ ३१ ॥ फिर मद्य पुष्प धूप गन्ध इनसे तरुकी पूजा करके कहे कि, सुर पितर पिशाच राक्षस सर्प असुर विनायक ये सब मेरी दी हुई पूजा बलिको ग्रहण करो और फिर वृक्षका स्पर्श करके कहे कि ॥ ३२ ॥ जो भूत इस वृक्षमें बसते हैं वे विधिसे दी हुई मेरी बलिको ग्रहण करके अन्यस्थानमें वासको स्वीकार करो और क्षमा करो अब उनको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ प्रातःकालके समय वृक्षको जलसे सीचकर शह और घी जिसपर लिपाया हो ऐसे कुठारसे पूर्व-उत्तरकी दिशामें प्रदक्षिण क्रमसे भली प्रकार छेदन करके उसके अनन्तर शेष वृक्षका छेदन करे ॥ ३४ ॥ और गोलाकारसे छेदन करे और वृक्षके पतनको देखतारहै, पूर्व दिशामें गिरै तो धन और धान्यसे पूरित घर होता है, अग्नि दिशामें पडै तो अग्निका दाह करता है दक्षिणका पतन मृत्युको देता है नैर्ऋत्यमें कलहको करता है और पश्चिमका पतन पशुओंकी वृद्धिको देता है ॥ ३५ ॥ वायव्यमें चौरोंका भय रहता है उत्तरके पतनमें धनका आगम होता है ईशानमें महाश्रेष्ठ और अनेक प्रकारसे उत्तम

छेदयेद्वर्तुलाकारं पतन चोपलक्षयेत् । प्राग्दिशः पतन कुर्याद्धनधान्यसमर्चितम् । आग्नेय्यामग्निदाहः स्याद्दक्षिणे मृत्युमादिशेत् । नैर्ऋत्ये कलहं कुर्यात्पश्चिमे पशुवृद्धिदम् ॥ ३५ ॥ वायव्ये चौरभीतिः स्यादुत्तरे च धनागमम् । ईशाने च महाश्रेष्ठं नानाश्रेष्ठं तथैव च ॥ ३६ ॥ भग्नं वा यद्भवेत्काष्ठं यच्चान्यत्तरुमध्यगम् । तन्न शस्तं गृहे वर्ज्यं दोषदं कर्म कारयेत् ॥ ३७ ॥ भग्नकाष्ठे हता नारी स्वामिनायुधसंज्ञके । कर्मकर्त्तारमन्तस्थं धननाशकरं महत् ॥ ३८ ॥ एकभाग्यं महाश्रेष्ठं धनधान्यसमृद्धिदम् । पुत्रदार पशूंश्चैव नानारत्नसमन्वितम्॥३९॥द्विभागं सफलं प्रोक्तं त्रिभागं दुःखदं स्मृतम् । चतुष्षष्ठे बन्धनं च पञ्चमे मृत्युमादिशेत्॥४०॥

होता है ॥ ३६ ॥ जो काष्ठ भग्न होता है और अन्यवृक्षके मध्यमें जमे हुए वृक्षका जो काष्ठ होता है वह घरमें लगाना श्रेष्ठ नहीं है किंतु वर्जित है और दूषित कर्मको करवाता है ॥ ३७ ॥ भग्नकाष्ठमें नारीका मरण होता है शस्त्रके छेदनाकिये काष्ठसे स्वामीका नाश होता है मध्यका काष्ठ कर्मके कर्ता (मिस्त्री) को नष्ट करता है अधिकभी धनका नाशकारी है ॥ ३८ ॥ एक भागका काष्ठ महाश्रेष्ठ होता है और धन धान्यकी वृद्धिको देता है और पुत्र द्वारा पशु और अनेक रत्नोंसे युक्त घरको करता है ॥ ३९ ॥ दो भागका वृक्ष सफल कहा है तीन

भागका दुःखदायी होता है और चार छः भागके बन्धनको जाने और पांचभागमें मृत्युको कहै ॥ ४० ॥ जर्जर (जीर्ण) में धनका नाश होता है मध्यमें छिद्र रोगदायक होता है निष्फल वृक्षका घर निष्फल होता है और सफलसे सफल होता है ॥ ४१ ॥ विरूप (बदसूरत) से धनका नाश होता है सक्षत (घुना) से रोग होता है अंगहीनसे दूधका नाश और विकट वृक्षसे कन्याओंका जन्म होता है ॥ ४२ ॥ यदि काष्ठको पक्षभर जलमें पडा रक्खै तो कीट भक्षण कदाचित् न करै कृष्णपक्षमें छेदन करै बुद्धिमान् मनुष्य शुक्लपक्षमें कदाचित् न करै

जर्ज्जरे धननाशः स्यान्मध्ये छिद्रं गदप्रदम् । निष्फले निष्फलं गेहं सफले फलमेव च ॥ ४१ ॥ विरूपे धननाशः स्यात् सक्षते रोगमेव च । हीनाङ्गे क्षीरनाशं च विकटे कन्यकोद्भवम् ॥४२॥ काष्ठं नो भुज्यते कीटैर्यदि पक्षं धृतं जले । कृष्णपक्षे छेदनं च न शुक्ले कारयेद्बुधः ॥ ४३ ॥ उद्धृत्य काष्ठं शकटैर्मनुष्यैर्वा समन्ततः । वैन्यानाशे तस्य नाशः आरभङ्गे बलक्षयः ॥ ४४ ॥ अर्थक्षयोऽक्षभेदे च तथा भङ्गे च वर्धके । विजयाय भवेच्छ्वेतः पीतो रोगप्रदो मतः ॥ ४५ ॥ जयदश्चित्ररूपश्च रक्तैः शस्त्राद्भयं भवेत् । प्रवेशे चैव दारूणां बालकाश्चापि तारुणाः ॥ ४६ ॥

॥ ४३ ॥ शकटोंसे वा मनुष्योंसे चारोंतरफके काष्ठको इकट्ठा करके वैन्या (वेणी) के नाशमें अर्थात् शकटकी फडके टूट जानेपर स्वामीका नाश होता है आरोंके भंगमें बलका नाश कहा है ॥ ४४ ॥ अक्ष (पहियां) के भेदनसे धनका नाश होता है और वर्धक (रस्सी) के भंगमें भी धनकी हानि होती है. श्वेतकाष्ठ विजयकारी होता है और पीत रोगका दाता माना है ॥ ४५ ॥ चित्ररूपका काष्ठ जयका दात होता है रक्तकाष्ठके लगानेसे शस्त्रसे भय होता है और काष्ठके प्रवेशमें रक्त वस्त्रधारण किये हुए बालक ॥ ४६ ॥ और तरुण जिस वाणीको कहते हैं वह उसी प्रकार सत्य होती है रज्जूके छेदन और यन्त्रके भेदमें बालकोंको पीडा होती है ॥ ४७ ॥ यह वृक्षच्छेदनकी विधि मैंने कही. काष्ठके छेदनकर्ममें भी शकुनकी परीक्षा लै ॥ ४८ ॥ इति पं० मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते वास्तुशास्त्रे वृक्षच्छेदनविधिर्नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ अव नवीनमन्दिरके प्रवेशका वर्णन करते हैं–उत्तरायण सूर्य, बृहस्पति और शुक्रके बलवान् होने पर ज्येष्ठ माघ फाल्गुन वैशाख मार्गशिरमें गृहका प्रवेश श्रेष्ठ होता है और आषाढमें मध्यमफलको देता है माघमें प्रथम प्रवेश होय तो

यद्वा वाचं कथयन्ति तत्तथैव भविष्यति । रज्जुच्छेदे बालपीडा यन्त्रभेदे तथैव च ॥ ४७ ॥ इति प्रोक्तं मया वृक्षच्छेदनार्थं विधानतः । शकुनानि परीक्षेत दारुच्छेदनकर्मणि ॥४८॥ इति वास्तुशास्त्रे वृक्षच्छेदनविधिर्नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ अथ प्रवेशो नवमन्दिरस्य सौम्यायने जीवसिते बलाढ्ये। स्याद्वेशनं ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे मार्गे शुचौ मध्यफलप्रदं स्यात् ॥ माघेऽर्थलाभः प्रथमप्रवेशे पुत्रार्थलाभः खलु फाल्गुने च ॥ १ ॥ चैत्रेऽर्थहानिर्धनधान्यलाभो वैशाखमासे पशुपुत्रलाभः । ज्येष्ठे च मार्गे च शुचौ च मासे मध्यः प्रदिष्टः प्रथमप्रवेशः । यात्रानिवृत्तौ मनुजाधिपानां वास्त्वर्चनं भूतबलिं च पूर्वं ॥ २ ॥ दिने प्रदद्यादथ दिक्क्रमेण मांसं ह्यसृक्चाज्ययुतं चतुर्षु ॥ ये भूतानीतिमन्त्रेण चतुर्दिक्षु बलिं हरेत् ॥ ३ ॥

धनका लाभ होता है फाल्गुनमें पुत्र और धनका लाभ ॥ १ ॥ चैत्रमें धनकी हानि और वैशाखमें धन धान्य पशुपुत्रका लाभ होता है ज्येष्ठ मार्गशिर आषाढ मासोंमें प्रथमप्रवेश मध्यम कहा है राजाओंकी यात्रा-निवृत्ति होनेपर प्रथम वास्तुपूजा और भूतबलिको करे ॥ २ ॥ वह बलि प्रवेशके दिनसे प्रथम दिन करे फिर दिशाओंके क्रमसे मांस और घृतसहित असृक्की बलि चारों कोनोंमें दे और 'ये भूतानि' इस मंत्रसे चारों

दिशाओंमें बलि दे ॥ ३ ॥ घरके मूलमें और घरके ऊपर बलि दे और पहिले दिन दीपदान करे फिर वास्तुपूजा करे ॥ ४ ॥ घी दूध मांस लड्डू और सहत इनकी बलि पूर्वआदि दिशाओंके क्रमसे दे ॥ ५ ॥ स्कन्धधर आदि यक्षोंको ईशानआदि क्रमसे चकोर आदिकी बलिको विदिशाओंमें दे ॥ ६ ॥ विष्णोरराट० इस मन्त्रसे वास्तुपुरुषका पूजन करे. नमोस्तु सर्पेभ्यः० इस मन्त्रसे सर्पराजका पूजन करे ॥ ७ ॥ अन्यदेवताओंकाभी गायत्री मन्त्र कहा है अपूर्वनामके घरमें यह विधि मैंने कही ॥ ८ ॥ शुभका अभिलाषी मनुष्य इसमें कालशुद्धिके विचा

गृहमूले बलिं दद्याद्गृहस्योर्द्धे तथैव च । दद्याद्दीपं पूर्वदिने वास्तुपूजां ततश्चरेत् ॥४॥ घृतं दुग्धं तथा मांसं लड्डुकं मधुसयुतम् । पूर्वादिक्रमयोगेन बलिं दद्याद्विशेषतः ॥५॥ स्कन्धधरादियक्षाणामीशानादिक्रमेण च । चकोरादिबलिं चैव विदिक्षु विनिवेदयेत् ॥६॥ विष्णोरराटमन्त्रेण पूजयेद्वास्तुपूरुषम् । नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पराज प्रपूजयेत् ॥७॥ अन्येषामपि देवानां गायत्रीमंत्र ईरितः अपूर्वसंज्ञे तु गृहे विधिरेष उदाहृतः ॥८॥ कालशुद्धिविचारोऽत्र कर्तव्यः शुभमिच्छता । कुम्भेऽर्के फाल्गुने मार्गे कार्तिके तु शुचौ तथा ॥९॥ नववेश्मप्रवेशं तु सर्वथा परिवर्जयेत् । द्वन्द्वसौपूर्विकगृहे मासदोषो न विद्यते ॥१०॥ सुचिरप्रवासे नृपतेर्दर्शने गृहवेशने भानुशुद्धिःप्रकर्तव्या चान्द्रमासे प्रवेशनम् ॥११॥ निर्गमान्नवमे वर्षे मासे वा दिवसेऽपि वा । प्रवेशं निर्गमं चैव नैव कुर्यात्कदाचन १२

रको करे कुम्भके सूर्य और फाल्गुनमास मार्गशिर कार्तिक और आषाढमें ॥९॥ नवीन घरके प्रवेशको सर्वथा वर्ज दे । द्वन्द्व (दो मनुष्योंका) और पुराना जो घरहो उसमें मासका दोष नहीं है ॥ १० ॥ चिरकालतक परदेशके वासमें. राजाके दर्शनमें और घरके प्रवेशमें सूर्यको शुद्ध देखना और चंद्रमाके मासमें प्रवेश करना ॥ ११ ॥ यात्राके समयसे नववें वर्ष और नवम मास और नवम दिनमें प्रवेशको न करे और प्रवेशके समयसे निगम (यात्रा) कोभी कदाचित् न करे ॥ १२ ॥ यदि एकही दिनमें राजाका प्रवेश और गमन होय तौ प्रवेशके समयकी शुद्धिको न विचारै यात्राकी शुद्धिको विचारे ॥ १३ ॥ गृहके प्रारम्भके जो दिन मास नक्षत्र वार हैं उनमें ही गृहप्रवेश करे. गृहमें उत्तरायणके विषे प्रवेश करे और तृणके घरमें तो सदैव प्रवेश करे ॥ १४ ॥ कुलीर (कर्क) कन्या कुम्भ इनके सूर्यमें घर ग्राम नगर और पत्तन (शहर वा जिला) इनमें प्रवेश न करे ॥ १५ ॥ मृदु ध्रुव (मृग चित्रा अनु० रे० उ० ३ रो०) संज्ञक नक्षत्रोंमें नवीन घरका प्रवेश शुभदायी होता है

यद्येकदिवसे राज्ञः प्रवेशो निर्गमस्तथा । तदा प्रावेशिकं चिन्त्यं बुधैर्नैव तु यात्रिकम् ॥१३॥ गृहारम्भदिने मासे धिष्ण्ये वारे विशेद्गृहम् । विशेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारं तु सर्वदा ॥१४॥ कुलीरकन्यकाकुंभे दिनेशे न विशेद्गृहम् । ग्रामं वा नगर वापि पत्तनं वा तथैव च ॥ १५ ॥ मृदुध्रुवर्क्षे शुभदं नववेश्मप्रवेशनम् । पुष्यस्वातीयुतैस्तैश्च जीर्णे स्याद्वासवद्वये ॥१६॥ क्षिप्रैश्चरैश्च नक्षत्रैर्नववेश्मप्रवेशनम् । न कुर्यादुग्रनक्षत्रैर्दारुणैर्वा कदाचन ॥ १७ ॥ उग्रो हन्ति गृहपतिं दारुणेषु कुमारकम् । द्विदैवभे पत्निनाशमग्निभे त्वग्निजं भयम् ॥ १८ ॥ प्रवेशनं द्वारभैः स्यादन्यदिक्स्थैर्न कारयेत् । रिक्तातिथिं भौमवारं शनिं वा नैव कारयेत् । केचिच्छनिं प्रशंसन्ति चौरभीतिस्तु जायते ॥ १९ ॥

और पुष्य स्वाती और धनिष्ठा शतभिषासे युक्त पूर्वोक्त नक्षत्रोंमें जीर्ण (पुराने) घरमें प्रवेश शुभ होता है ॥ १६ ॥ क्षिप्रसंज्ञक और पुनर्वसु स्वाती श्रवण धनिष्ठा भरणी पूर्वाषाढा पूर्वाभाद्रपदा और दारुण संज्ञक नक्षत्रोंमें नवीन गृहमें प्रवेशको कदाचित् न करे ॥ १७ ॥ उग्र नाम नक्षत्र घरके स्वामीको और दारुण नक्षत्र बालकको और विशाखा नक्षत्र स्त्रीके नाशको करता है, कृत्तिका नक्षत्रमें प्रवेश करे तो अग्निसे भय होता है ॥ १८ ॥ द्वारके जो नक्षत्र हैं उनमें ही प्रवेश होता है अन्य दिशामें स्थित नक्षत्रोंमें प्रवेश कदापि न करे और रिक्तातिथि भौम

१ अपूर्वादित्रिविधप्रवेशलक्षणान्याह वसिष्ठः–"अपूर्वसंज्ञः प्रथमः प्रवेशो यात्रावसाने च सुपूर्वसंज्ञः । द्वन्द्वाभयस्त्वग्निभयादिजातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः ॥"

वार और शनिवारको प्रवेश न करे कोई आचार्य शनैश्चरकी प्रशंसा करते हैं परंतु उसमें चौरोंका भय होता है ॥ १९ ॥ कुयोग पाप लग्न और चरलग्न और चरलग्नका नवांशक और शुभ कर्ममें जो वर्जित हैं वे इस प्रवेशमेंभी वर्जित हैं और नन्दातिथिको दक्षिणद्वारमें और भद्रातिथिको पश्चिमके द्वारसें प्रवेश करे ॥ २० ॥ जयातिथिको उत्तरके द्वारमें और पूर्णा तिथिको पूर्वके द्वारमें प्रवेश करे और व्याधिका नाशक धनका नाशक धनका दाता बन्धुओंका नाशक ॥ २१ ॥ पुत्रका नाशक शत्रुका नाशक स्त्रीका नाशक प्राणका नाशक

कुयोगे पापलग्ने वा चरलग्ने चरांशके । शुभकर्मणि ये वर्ज्यास्ते वर्ज्यास्मिन् प्रवेशने । नन्दायां दक्षिणद्वारं भद्रायां पश्चिमेन तु ॥ २० ॥ जयायामुत्तरद्वारं पूर्णायां पूर्वमाविशेत् । व्याधिहा धनहा चैव वित्तदो बन्धुनाशकृत् ॥२१॥ पुत्रहा शत्रुहा स्त्रीघ्नः प्राणहा पिटकप्रदः । सिद्धिदो धनदश्चैव भयकृज्जन्मराशितः ॥ २२ ॥ लग्नस्थक्रमतो राशिर्जन्मलग्नात्प्रवेशने । लग्नं सौम्यान्वितं कार्यं न तु क्रूरैः कदाचन ॥ २३ ॥ निन्दिता अपि लग्नांशाश्चरराशिगता यदि । शुभांशसंयुताः कार्याः कर्तृभोपचयस्थिताः ॥ २४ ॥ भूयो यात्रा भवेन्मेषे नाशं कर्कटकेऽपि वा । व्याधिं तुलाधरे लग्ने मकरे धान्यनाशनम् ॥ २५ ॥

और पिटक (पटियारी) का दाता सिद्धिका दाता धनका दाता भयकारक ये बारह प्रकारके पूर्वोक्त फल जन्मकी राशिसे होते हैं ॥ २२ ॥ लग्नमें स्थित क्रमसे प्रवेशमें जन्मलग्नसे राशि लेनी और लग्नभी सौम्यग्रहोंसे युक्त लेना और क्रूर ग्रहोंसे युक्त लग्नको प्रवेशमें कदाचितभी न ग्रहण करना ॥ २३ ॥ निंदितभी लग्न और नवांशक यदि चरराशिकेभी हों और शुभग्रहके नवांशकसे युक्त होंय तो वह प्रवेशमें ग्रहण करने जो वे प्रवेशकर्ताकी राशिके उपचय भवनमें स्थित हों ॥ २४ ॥ मेष लग्नमें प्रवेश करे तो दुबारा फिर यात्रा होती है कर्क लग्नमें प्रवेश करे तो नाश होता है, तुलालग्नमें करे तो व्याधि होती है, मकरलग्नमें धान्यका नाश होता है ॥ २५ ॥ यही फल नवांशकका होता है यदि वह नवांशक सौम्यग्रहसे युक्त और दृष्ट हो और चरराशिके नवांशकमें और चरलग्नमें प्रवेशको कदापि न करे ॥ २६ ॥ चित्रा शतभिषा स्वाती हस्त पुष्य पुनर्वसु रोहिणी रेवती मूल श्रवण उत्तराफाल्गुनी धनिष्ठा उत्तराषाढा उत्तराभाद्रपदा अश्विनी मृगशिर अनुराधा इन नक्षत्रोंमें जो मनुष्य वास्तुपूजन करता है वह मनुष्य लक्ष्मीको प्राप्त होता है यह शास्त्रोंके विषयमें निश्चय है ॥ २७ ॥ नित्यकी

एतदेवांशकफलं यदि सौम्ययुते क्षितौ । चरांशे चरलग्ने च प्रवेशं नैव कारयेत ॥ २६ ॥ चित्रा शतभिषा स्वाती हस्तः पुष्यः पुनर्वसुः । रोहिणी रेवती मूलं श्रवणोत्तरफाल्गुनी ॥ धनिष्ठा चोत्तराषाढा भाद्रपदात्तरान्विता । अश्विनी मृगशीर्षं च अनुराधा तथैव च । वास्तुपूजनमेतेषु नक्षत्रेषु करोति यः ॥ सम्प्राप्नोति नरो लक्ष्मीमिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥ २७ ॥ नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके । वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्य गुरुशुक्रयोः ॥ २८ ॥ त्रिकोणकेन्द्रगैः सौम्यैः स्थिरे द्व्यङ्गे खलग्रहैः । द्विकत्रिकोणकेन्द्राष्टवर्जितैः प्रविशेद्गृहम् ॥ २९ ॥ अभिजिच्छ्रवणयोर्मध्ये प्रवेशे सूतिकागृहे । नृपादीनां ब्राह्मणानां नावधेयं कदाचन ॥ ३० ॥ क्रूरयुक्तं क्रूरविद्धं मुक्तं क्रूरग्रहेण च । यद्गन्तव्यं न तच्छस्तं त्रिविधोत्पातदूषितम् ॥ ३१ ॥

यात्रा पुराना घर अन्नप्राशन वस्त्रोंका धारण वधूप्रवेश और मंगलके कार्य इन कार्योंमें गुरु और शुक्रके अस्तका दोष नहीं है ॥ २८ ॥ त्रिकोण (९--५) केंद्र (१--४--७--१०--) स्थानोंमें सौम्य ग्रह हों स्थिर द्विस्वभाव लग्न हों और पापग्रह दूसरे त्रिकोण केन्द्र और अष्टमस्थानसे अन्य स्थानोंमें स्थित हों ऐसे लग्नमें गृहप्रवेश करे ॥ २९ ॥ अभिजित् श्रवणके मध्यमें प्रवेशमें सूतिकागृहमें नृप आदि और ब्राह्मण इनका तिरस्कार कदापि न करे ॥ ३० ॥ क्रूरग्रहसे युक्त क्रूरग्रहसे विद्ध और क्रूर ग्रहसे मुक्त (छोडाहुआ) और जिसपर क्रूरग्रह जानेवाला हो

जो तीन प्रकारके उत्पातोंसे दूषित हो वह नक्षत्र प्रवेशमें श्रेष्ठ नहीं होता ॥ ३१ ॥ जो नक्षत्र लत्तासे निहत हो और जो क्रांतिसाम्यसे दूषित हो और ग्रहणसे दूषित यह तीन प्रकारका प्रवेशमें त्याज्य है ॥ ३२ ॥ जो चन्द्रमाने भोगा हो वह भी श्रेष्ठ नहीं है और जन्मके नक्षत्रसे दशवां और युद्धका नक्षत्र और सोलहवां नक्षत्र ॥ ३३ ॥ अठारहवां समुदायका तेईसवां नक्षत्र विनाशक होते हैं मानस नामक पच्चीसवां इनमें शोभन कर्मको न करे ॥ ३४ ॥ अपने उच्चस्थानका गुरु लग्नमें हो अथवा शुक्र वेश्मभवनमें हो ऐसे लग्नमें

लत्तया निहतं यच्च क्रान्तिसाम्येन दूषितम् । प्रवेशे त्रिविधे त्याज्यं ग्रहणेनाभिदूषितम् ॥ ३२ ॥ यावच्चन्द्रेण भुक्तं तद्दक्षे नैव तु शोभनम् । जन्मभाद्दशमं कर्मसांघातर्क्षं तु षोडशम् ॥ ३३ ॥ अष्टादशं सामुदायं त्रयोविंशं विनाशकम् । मानसं पञ्चविंशाख्यं नाचरेदेषु शोभनम् ॥ ३४ ॥ स्वोच्चसंस्थे गुरौ लग्ने शुक्रे वा वेश्मसंस्थिते । यस्यात्र वेशो भवति तद्गृहं सौख्यसंयुतम् ॥ ३५ ॥ स्वोच्चस्थलग्नगे सूर्ये चतुर्थे देवपूजिते । यस्यात्र योगो भवति संपदाढ्यं गृहं भवेत् । गुरौ लग्नेऽस्तगे शुक्रे षष्ठेऽर्के लाभगे शनौ ॥ ३६ ॥ प्रवेशकाले यस्यायं योगः शत्रुविनाशदः । लग्ने शुक्रे सुखे जीवे लाभेऽर्के रिपुगे कुजे ॥ वेश्मप्रवेशो योगेऽस्मिन् शत्रुनाशकरः परः ॥ ३७ ॥

जिसका प्रवेश होता है वह घर सुखसे युक्त रहता है ॥ ३५ ॥ अपने उच्चका सूर्य लग्नमें हो चौथे भवनमें गुरू हो जिसका ऐसे लग्नमें योग (मिलना वा प्रवेश) होता है वह घर संपदाओंसे युक्त रहता है और गुरू लग्नमें हो और शुक्र अस्त हो छठे स्थानमें सूर्य हो लाभमें शनि हो ॥ ३६ ॥ यह योग प्रवेशकालमें हो वह घर शत्रुओंके नाशको देता है लग्नमें शुक्र हो चौथे भवनमें गुरु हो लाभमें सूर्य हो छठे स्थानमें मंगल हो इस योगमें जो घरका प्रवेश हो वह शत्रुओंका नाशकर्ता होता है ॥ ३७ ॥ गुरु और शुक्र चौथे भवनमें हों मंगल और सूर्य लाभ ११ स्थानमें हो इस योगमें जिसका प्रवेश होता है वह घर भूति (धन) का दाता होता है॥ ३८ ॥ गुरु बुध चन्द्रमा शुक्र इनमेंसे एक भी ग्रह अपने उच्चका होकर सुख ४ में वा दशमभवनमें स्थित हो वा लग्नमें हो तो वह घर सुखका दाता होता है अष्टमस्थानमें चन्द्रमा होय तो चाहे सौभी उत्तम योग हों ॥ ३९ ॥ तोभी वे इस प्रकार निष्फल जानने जैसे वज्र (बिजली) से हते हुए वृक्ष, यदि क्षीण

गुरुशुक्रौ च हिबुके लाभगौ कुजभास्करौ । प्रवेशो यस्य भवति तद्गृहं भूतिदायकम् ॥ ३८ ॥ एकोऽपि जीवज्ञशशिसितानां स्वोच्चगः सुखे । स्वभे वा तद्गृहं सौख्यदायकं लग्नगेऽपि वा॥अष्टमस्थे निशानाथे यदि योगशतैरपि ॥३९॥ तदा ते निष्फला ज्ञेया वृक्षा वज्रहता इव । क्षीणचन्द्रोऽन्त्यषष्ठाष्टसंस्थितो लग्नतस्तथा ॥ भार्याविनाशनं वर्षात्सौम्ययुक्ते त्रिवर्षतः ॥ ४० ॥ जन्मभादष्टमं स्थानं लग्नाद्वाथ तदंशकम् । त्यजेच्च सर्वकर्माणि दुर्लभं यदि जीवितम् ॥ ४१ ॥ प्रवेशलग्नान्निधने यः कश्चित् पापखेचरः । क्रूरर्क्षे हन्ति वर्षार्द्धाच्छुभर्क्षे वाष्टवत्सरात् ॥ ४२ ॥ रन्ध्रात्पुत्राद्धनादायात्पञ्चस्वर्के स्थिते क्रमात् । पूर्वाशादि मुखं गेहाद्विशेद्वामो भवेद्यत । गुरुदेवाग्निगोविप्र ऊर्द्ध्वपादैर्द्धनक्षयम् ॥ ४३ ॥

चन्द्रमा बारहवें छठे आठवें भवनमें हो वा लग्नमें होय तो एक वर्षमें भार्याका नाश होता है और सौम्यग्रहसे युक्त लग्न होय तीन वर्षमें भार्याका नाश होता है ॥ ४० ॥ जन्मके लग्नराशिसे आठवां स्थान और जन्मलग्नसे आठवां नवांशक इनमें सब कर्मोंको त्यागदे कर्म करे तो जीवन दुर्लभ होता है ॥ ४१ ॥ प्रवेशके लग्नसे अष्टम स्थानमें यदि कोईभी पापग्रह पडा हो यदि वह क्रूर राशिपर हो तो छः मासमें और शुभ राशिपर होय तो आठ वर्षमें स्वामीका नाश करता है ॥ ४२ ॥ रन्ध्र १० पुत्र ५ धन ९ आय ११ इनसे पंचम भवनमें सूर्य

स्थित होय तो क्रमसे पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर मुखके घरमें प्रवेश करे, गुरु देवता अग्नि विप्र इनको वाम भागमें रक्खे. उर्ध्वपाद नक्षत्रोंसे धनका नाश होता है ॥ ४३ ॥ उत्तर वा पश्चिमको शिर करके शयन करे तो मृत्यु होती है. शय्याके वंश आदि भी रोग और पुत्रोंको दुःख देते हैं, शय्यापर पूर्वको शिर किये शयन करे वा दक्षिणको शयन करे तो सुख और संपदाओंको सदैव प्राप्त होता है और पश्चिमको शिर करनेसे प्रबल चिंता होती है. उत्तरको शयन करनेसे हानि और मृत्यु होती है ॥ ४४ ॥ अपने घरमें पूर्वको शिर किये शयन करे श्वशुरके

सौम्यं प्रत्यक्छिरो मृत्युर्वंशाद्या रुक्सुतार्तिदा । प्राक्छिराः शयने विद्याद्दक्षिणे सुखसंपदः । पश्चिमे प्रबलां चिन्तां हानिं मृत्युं तथोत्तरे ॥ ४४ ॥ स्वगेहे प्राक्छिराः सुप्याच्छ्वाशुरे दक्षिणाशिराः । प्रत्यक्छिराः प्रवासे तु नोदक्सुप्यात्कदाचन ॥ ४५ ॥ अथ शय्याशयनानां लक्षणम् ॥ कथयामि समासेन दारुकर्मक्रमेण च । आयशुद्धा तथा कार्या यथा गोहरिकुञ्जराः ॥ ४६ ॥ तथैव दोलिकायानं यथाशोभं विधीयते । प्रमाणं शृणु विप्रेन्द्र यत्प्राप्तोऽहं बृहद्रथात् ॥ कथयामि तथा शय्यां येन सौख्यमवाप्नुयात ॥ ४७ ॥ अशनस्पन्दनचन्दनहरिद्रुसुरदारुतिन्दुकीशालाः । काश्मर्याञ्जुनपद्मकशाकाम्राः शिंशिपा च शुभाः ॥ ४८ ॥

घरमें दक्षिणको शिर किये और परदेशमें पश्चिमको शिर किये शयन करै और उत्तरको शिर किये कदाचित् न सोवे ॥४५॥ अब शय्या और शयनोंके लक्षणोंको कहते हैं; अब क्रमसे और संक्षेप रीतिके अनुसार काष्ठके कर्मको कहते हैं. जैसे--गौ अश्व हस्ति आय शुद्धिसे किये जाते हैं इसी प्रकार शय्या भी आय (विस्तार) से शुद्ध बनवावे ॥ ४६ ॥ तिसी प्रकार दोलिका यान (सवारी) ये भी शोभाके अनुसार बनाने कहे हैं. हे विप्रेंद्र ! उस प्रमाणको तुम सुनो जो मुझे बृहद्रथसे मिला है ॥ ४७ ॥ शय्याका वर्णन उस प्रकारसे कहताहूं. जैसे--मनुष्य सुखको प्राप्त हो अशन स्पंदन चन्दन हरिद्रु देवदारु तिंदुकी शाल काश्मरी अर्जुन पद्मक शाक आम्र शिंशपा ये वृक्ष शय्याके बनानेमें शुभ होते हैं ॥ ४८ ॥ अशनि (बिजली) पवन हस्ति इनसे गिराये हुए और जिनमें मधु (सहत) पक्षी इनका निवास हो और चैत्य (चबूतरा) श्मशानमार्ग इनमें उत्पन्न और अर्द्धशुष्क और लताओंसे बन्धे हुए ॥ ४९ ॥ कंटकी अर्थात् जिनकी त्वचापर कांटे हों जो महानदियोंके संगममें उत्पन्न हों, जो देवताके मन्दिरमें हों और दक्षिण और पश्चिम दिशामें उत्पन्न हुए हों ॥ ५० ॥ जो निषिद्ध वृक्षसे उत्पन्नहुए हों. जो

अशनिजलानिलहस्तिप्रपातिता मधुविहङ्गकृतनिलयाः । चैत्यश्मशानपथिजार्धशुष्कवल्लीनिबद्धाश्च ॥ ४९ ॥ कण्टकिनो ये स्युर्महानदीसंगमोद्भवा ये च । सुरप्रासादगा ये च याम्यपश्चिमदिग्गताः ॥ ५० ॥ प्रतिषिद्धवृक्षजा ये ये चान्येऽपि अनेकधा । त्याज्यास्ते दारवस्सर्वे शय्याकर्मणि कर्मवित् ॥ ५१ ॥ कृते कुलविनाशः स्याद्व्याधिः शत्रोर्भयानि च ॥ ५२ ॥ पूर्वच्छिन्नं यत्र दारु भवेदारम्भयेत्ततः । शकुनानि परीक्षेत कुर्यात्तस्य परिग्रहम् । श्वेतपुष्पाणि दन्त्यश्च दध्यक्षतफलानि च ॥ ५३ ॥ पूर्णकुम्भाश्च रत्नाश्च माङ्गल्यानि च यानि च । तानि दृष्ट्वा प्रकुर्वीत अन्यानि शकुनानि च । यवाष्टकानाङ्गुदरे वितुषैरङ्गुलं स्मृतम् ॥ ५४ ॥

अन्यभी भिन्न भिन्न प्रकारके हैं वे संपूर्ण काष्ठ शय्याके काममें कर्मके ज्ञाताको त्यागने योग्य हैं ॥ ५१ ॥ इन पूर्वोक्त निषिद्ध वृक्षोंकी शय्या बनवानेसे कुलका नाश व्याधि और शत्रुसे भय होता है ॥ ५२ ॥ जहां शय्याके आरंभसे पहिला छेदन किया काष्ठ हो वहां शकुनोंकी परीक्षा करके उस काष्ठको ग्रहण करे, श्वेतपुष्प दन्त दधि अक्षत फल ॥ ५३ ॥ जलसे पूर्ण घट और रत्न अन्य जो मंगलकी वस्तु हैं उनको

देखकर संग्रह करे और अन्य शकुनोंको भी परीक्षा करे । तुषोंसे रहित आठ जौ जिसके भीतर आजाय उसको अंगुल कहते हैं ॥ ५४ ॥ उसी मानसे स्थपति (बढई) शयन आदिको बनावे । सौ १०० अंगुलकी शय्या बडी कही है वह चक्रवर्ति राजाओंकी होती है और आठ भागसे हीन जो इसका अर्द्धभाग है वह शय्याका विस्तार (चौडाई) कहा है ॥ ५५ ॥ आयाम तीसरे भागका होता है और पादोंकी ऊंचाई कुक्षिपर्यंत होती है । वह शय्या सामंतराजा आदि और चतुर मनुष्योंकी होती है उससे दश अंगुल कम राजकुमारोंकी

तेन मानेन स्थपतिः शयनादीन् प्रकल्पयेत् । शतांगुला तु महती शय्या स्याच्चक्रवर्तिनाम् । अष्टांशहीनमस्यार्द्धं विस्तारं परिकीर्तितम् ॥ ५५ ॥ आयामस्त्र्यंशको भागः पादोच्छ्रायः सकुक्षिकः । सामन्तानां च भवति सा षड्ना तथैव च ॥ कुमाराणां च सा प्रोक्ता दशोना चैव मन्त्रिणाम् ॥ ५६ ॥ त्रिषट्कोना बलेशानां विंशोना च पुरोधसाम् । षडंशहीनमस्यार्द्धविस्तारं परिकीर्त्तितम् ॥ ५७ ॥ आयामस्त्र्यंशको भागस्त्र्यंशहीनस्तथैव हि । पादोच्छ्रायश्च कर्तव्यश्चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः क्रमात् ॥ ५८ ॥ सर्वेषामेव वर्णानां सार्द्धहस्तत्रयं भवेत् । एकाशीत्यंगुलैः कार्या शय्या देवविनिर्मिता ॥ ५९ ॥

और मन्त्रियोंकी होती है ॥ ५६ ॥ अठारह अंगुल कम सेनापति और पुरोहितोंकी कही है इससे छः भाग कम जो इसका अर्द्धभाग है वह विस्तार कहा है ॥ ५७ ॥ तीसरे अंशका जो भाग है वह आयाम होता है अथवा तीसरे भागसे कम होता है और पादोंकी ऊंचाई चार तीन दो अंगुलोंके क्रमसे कही है अर्थात् इन अंगुलोंसे कम चतुर्थभागकी ऊंचाईके पाये बनवावे ॥ ५८ ॥ संपूर्ण वर्णोंकी शय्या साड़ेतीन हाथ और इक्यासी ८१ अंगुलोंकी बनवानी और वह देवनिर्मित शय्या कहाती है ॥ ५९ ॥

असनका वृक्ष रोगका हर्ता होता है तिंदुककी शय्या पित्तको करती है, चन्दनकी शय्या शत्रुको नष्ट करती है और धर्म आयु यशको देती है ॥ ६० ॥ शिंशपावृक्षसे उत्पन्न हुई शय्या महान् समृद्धिको करती है पद्मकका जो पर्यंक (पलंग) है वह दीर्घ अवस्था लक्ष्मी पुत्र अनेक प्रकारका धन और शत्रुओंका नाश इन सबको करता है ॥ ६१ ॥ शाल कल्याणका दाता कहा है. शाक और सूर्यके वृक्षसे केवल चन्दनसे निर्मित पर्यङ्क जो रत्नोंसे जटित हो और जिसका मध्यभाग सुवर्णसे गुप्त हो अर्थात् सुवर्णसे मढा हो उस पर्यंककी देवता भी पूजा करते हैं

असनो रोगहर्ता च पित्तकृत्तिन्दुकोद्भवः । रिपुहा चन्दनमयो धर्मायुर्यशदायकः ॥ ६० ॥ शिंशपावृक्षसंम्भूतः समृद्धिं कुरुते महान् । यस्तु पद्मकपर्यंको दीर्घमायुः श्रियं सुतम् । वित्तं बहुविधं धत्ते शत्रुनाशं तथैव च ॥ ६१ ॥ शालः कल्याणदः प्रोक्तः शाकेन रचितस्तथा । केवलं चन्दनेनैव निर्मितं रत्नचित्रितम् । सुवर्णगुप्तमध्यास पर्यंकं पूज्यते सुरैः ॥ ६२ ॥ अनेनैव समायुक्ता शिंशपा तिन्दुकीति च । शुभासनं तथा देवदारुश्रीपर्णिनापि वा॥ शुभदौ शाकशालौ तु परस्परयुतौ पृथक् ॥ ६३ ॥ तद्वत्पृथक् प्रशस्तौ हि कदंबकहरिद्रकौ । सर्वकाष्ठेन रचितो न शुभः परिकल्पितः ॥ आम्रेण वा प्राणहरश्चासनो दोषदायकः ॥ ६४ ॥ अन्येन सहितो ह्येष करोति धनसक्षयम् । आम्रोदुंबरवृक्षाणां चन्दनस्पन्दनाः शुभाः॥फलिनां तु विशेषेण फलद शयनासनम् ६५

॥ ६२ ॥ इसके ही समान शिंशपा और तिन्दुककी कही है. शुभासन देवदारु और श्रीपर्णी ये पूर्वोक्तकेही समान होते हैं. शाक और शाल शुभदायी होते हैं ॥ ६३ ॥ तिसी प्रकार कदम्ब और हरिद्रक (हलद) ये भी पृथक् २ श्रेष्ठ होते हैं. सब काष्ठोंसे रचित पर्यंक शुभ नहीं कहा है. आम्रकी शय्या प्राणोंको हरती है और असन दोषोंको देता है ॥ ६४ ॥ अन्यकाष्ठसे सहित असन वृक्ष धनके संक्षयको करता है

आम्र, उदुंबर (गूलर) वृक्ष, चन्दन और स्पंदन शुभ होते हैं. फलवाले वृक्षोंके जो पर्यंक और आसन हैं वे विशेषकर फलके दाता होते हैं ॥ ६५ ॥ हाथीके दांत सब योगोंमें शुभ फलके दाता कहे हैं और उत्तम चन्दनसे इनका अलंकार करवावे और हाथीके दांतका जो मूल उसकी जो परिधि उतना विस्तार मुटाईका करे ॥ ६६ ॥ शय्याके जो फलक (पट्टी) के मूलमें और आसन कोणमें चिह्न होना चाहिये जो किरिचर (पीठकआदि) हैं उनमें भी किंचित् २ चिह्न श्रेष्ठ होता है ॥ ६७ ॥ श्रीवृक्ष और वर्द्धमान वृक्ष इनको ध्वजा छत्र चामर बन

गजदन्ताश्च सर्वेषां योगे शुभफलाः स्मृताः । प्रशस्तं चन्दनं तेन कार्योऽलङ्कार एतयोः। दन्तस्य मूलपरिधीर्व्यायतं प्रोह्य कल्पयेत् ॥ ६६ ॥ शय्याफलकमूले तु चिह्नश्चासनकोणके । न्यूनङ्किरिचराणां तु किंचित्किञ्चित्प्रशस्यते ॥६७॥ श्रीवृक्षवर्द्धमानैश्च ध्वजं छत्रं च चामरम् । छेदे दृष्टे तु ह्यारोग्यं विजयं धनवृद्धिदम् ॥६८॥ प्रहरणाभे जयो ज्ञेयो नन्द्यावर्ते लभेन्महीम् । लोष्ठे तु लब्धपूर्वस्य देशस्याप्तिर्भविष्यति ॥ ६९ ॥ स्त्रीरूपे अर्थनाशः स्याद्भृङ्गराजे सुतस्य च । लाभः कुम्भे निधिप्राप्तिर्यात्राविघ्नं च दण्डके ॥ ७० ॥ कृकलासभुजङ्गाभे दुर्भिक्षं वानरेण च । गृध्रोलूकश्येनकाकसदृशो मकरो महान् ॥ ७१ ॥

वावे. यदि उनमें छिद्र दृष्ट आवे तो आरोग्य विजय और धनकी वृद्धिको देता है ॥ ६८ ॥ यदि प्रहरण (शस्त्र) के समान चिह्न हो तो जय जानना. नंद्यावर्त (गोल) होय तो स्वामीको पृथ्वीका लाभ होता है, लोष्ठके समान हो तो पहिले मिलेहुए देशकी प्राप्ति होती है ॥ ६९ ॥ स्त्रीका रूप दीखे तो अर्थका नाश होता है. भांगरा दीखनेसे पुत्रका लाभ होता है, कुंभके दीखने पर निधिकी प्राप्ति होती है और दंडकमें यात्राका विघ्न होता है ॥ ७० ॥ कृकलास (करकेटा) और भुजंगके समान वा वानर दीखे तो दुर्भिक्ष होता है, गीध उलूक श्येन काकके समान महान् मकर होय ॥ ७१ ॥ पाश बाधकका बन्ध होय तो मृत्यु और जनोंसें विपत्ति होती है रुधिरका स्राव कृष्ण शव (मुर्दा) ये दीखे तो दुर्गंधवान् होता है ॥ ७२ ॥ शुक्ल समान सुगन्ध चिकने छेद होय तो शुभ होता है अशुभ और शुभ जो छेद हैं वे शय्यामें शुभदाई होते हैं ॥ ७३ ॥ ईशान दिशा आदिमें प्रदक्षिणक्रमसे छेद होय तो श्रेष्ठ होता है. वामक्रमसे तीन दिशाओंमें हो तो भूतका भय होता है ॥ ७४ ॥ एकवारकेही विशरण (छेदन) में विकलता पादमें हो जाय तो शुभ होता है. दो विशरणोंसे पवनका तरना नहीं

पाशे बाधकबन्धे वा मृत्युर्जनविपद्भवेत् । रक्तस्रुते च कृष्णे च शावे दुर्गन्धिवान्भवेत् ॥७२॥ शुक्लैः समैः सुगन्धैश्च स्निग्धैश्छेदः शुभावहः । अशुभा च शुभा ये च छेदास्ते शयने शुभाः ॥ ७३ ॥ ईशादिगोप्रदक्षिण्यात्प्रशस्तमथवा तथा । अपसव्ये दिक्त्रये च भयं भवति भूतजम् ॥७४॥ एकेन वा विशरणे वैकल्यं पादतः शुभम् । द्वाभ्यां न तीर्यते वातं त्रिचतुः क्लेशबन्धदौ ॥७५॥ सुर्ि रे वा विवर्णे वा ग्रन्थौ पादे शरे तथा । व्याधिः कुम्भेऽथवा पादे ग्रन्थिर्वदनरोगदा ॥ ७६॥ कुम्भाद्यभागे जङ्घायां जङ्घारोगं तथा भवेत् । तस्याश्चाथो पदाधो वा द्रव्यनाशकरः परः ॥ ७७ ॥ खुरदेशे यदा ग्रन्थिः खुराणां पीडनं भवेत् । राशिशीर्षत्रित्रिभागसंस्थोऽपि न शुभप्रदः ॥ ७८ ॥

होता है तीन चार विशरण क्लेश और बन्धके दाता होते हैं ॥ ७५ ॥ छिद्र वा विवर्ण दीखे वा ग्रन्थि वा शर पादमें दीखे तो व्याधि होती है. कुंभ वा पादमें ग्रंथि हो तो मुखरोगको देती है ॥ ७६ ॥ कुंभके प्रथमभाग वा जंघामें छिद्र हो तो रोग होता है. उसके नीचे वा पादके नीचे छिद्र हो तो परम रोग होता है ॥ ७७ ॥ खुरके स्थानमें ग्रंथि हो तो खुरोंमें पीडा होती है यदि राशि (ग्रंथि) शिरके तीन २ भागमें

स्थित होय तो शुभदायी नहीं होती ॥ ७८ ॥ निष्कुट कोलाख्य घृष्टिनेत्र वंत्सक कोलक और बन्धुक इतने प्रकारसे छिद्र संक्षेपसे होते हैं ॥ ७९ ॥ घटके समान जो छिद्र हो उसे संकट और निष्कुट कहते हैं. छिद्र अपवित्र और नील हो उसको बुद्धिमान् मनुष्य कोलाख्य कहते हैं ॥ ८० ॥ जो छिद्र विषम हो उसे घृष्टिनयन कहते हैं. जो विवर्ण हो और जिसका मध्यभाग दीर्घ हो, जो वाम आवर्तसे भिन्न हो वह यथायोग्य छिद्र वत्सनाभ कहाता है ॥ ८१ ॥ जिसका वर्ण कृष्ण हो वह बालक होता है, जो दो प्रकारका हो वह बन्धुक होता है समान

निष्कुटं चाथ कोलाख्यं घृष्टिनेत्रं च वत्सकम् । कोलकं बन्धुकं चैव संक्षेपश्छिद्रकस्य तु ॥७९॥ घटवत्सुषिरंचैव सङ्कटाख्यं च निष्कुटम् । छिद्रनिःपावनीलं च कोलाख्यं तद्बुधैः स्मृतम् ॥ ८० ॥ विषमं घृष्टिनयनं वैवर्ण्य मध्यदीर्घकम् । वामावर्त्ते च भिन्नं च यथावद्वत्सनाभकम् ॥ ८१ ॥ कोलकं कृष्णवर्णं च बन्धुकं यद्भवेद्द्विधा । दारं सवर्णच्छिद्रं च तथा पापं प्रकीर्तितम् ॥ ८२ ॥ निष्कुटे द्रव्यनाशः स्यात्कोलाख्ये कुलनाशनम् । शस्त्राद्भयं शूकरे च वत्सनाभे गदप्रदम् ॥ ८३ ॥ कालबन्धूकसंज्ञश्च कीटैर्वर्धनशोभनम् । सर्वग्रन्थियुतं यच्च दारु सर्वत्र नो शुभम् ॥ ८४ ॥ एकद्रुमेण धान्यं स्याद्वृक्षद्वयविनिर्मितम् । धन्यं त्रिभिश्च पुत्राणां वृद्धिदं परिकीर्तितम् ॥ ८५ ॥

वर्ण जिसमें हो ऐसे छिद्रको दार और पापभी कहते हैं ॥ ८२ ॥ निष्कुटगें द्रव्यका नाश होता है, कोलाख्यमें कुलका नाश और शूकरमें शस्त्रसे भय होता है, वत्सक रोगको देता है ॥ ८३ ॥ काल बंधूक नामका छिद्र कीटोंकी वृद्धि और शुभदायी होता है, जो काष्ठ सर्वत्र ग्रंथियोंसे युक्तहो वह सब कामोंमें शुभ नहीं होता है ॥ ८४ ॥ एक वृक्षके काष्ठसे धान्य होता है दो वृक्षोंसे जो पर्य्यंक आदि बनाया हो वह धन्य होता है तीन वृक्षोंका काष्ठ जिसमें लगा हो वह पुत्रोंकी वृद्धिका दाता कहा है ॥ ८५ ॥ चार वृक्षोंसे धन और यश होता है और पांच वृक्षोंके काष्ठ लगानेसे मरण होता है. छः सात वृक्षोंके काष्ठसे रचेहुएमें निश्चयसे कुलका नाश होता है ॥ ८६ ॥ वृक्षोंके शिर और मूलको क्रमसे अग्रभाग और पाद कहते हैं. विना वनके चन्दनमें तो जिस भागमें मूल है उसी भागमें शिर होता है ॥ ८७ ॥ भो ब्राह्मणो ! यह मैं शयन और आसनका लक्षण कहा और भंगमें भी दोष कहे और स्वामिसहित भंगमें दोषोंका वर्णन किया ॥ ८८ ॥

अर्थं यशश्चतुर्भिश्च पञ्चत्व पञ्चभिः स्मृतम् । षट्सप्तरचिते काष्ठे कुलनाशो भवेद्ध्रुवम् ॥ ८६ ॥ शिरो मूलं च वृक्षाणामग्रे पादाः प्रकीर्तिताः । अनारण्ये चन्दने तु यतो मूलं ततः शिरः ॥८७॥ इति प्रोक्तं मया विप्राः शयनासनलक्षणम् । भङ्गे च दोषाः कथिताः स्वामिना सहितेन च ॥८८॥ पादभङ्गे मूलनाशमरणौ धनसंक्षयः । शीर्षे तु मरणं विद्यात्पादे हानिर्महान्भवेत् ॥८९॥ घण्टाकारं लिखेच्चक्रं रविधिष्ण्यक्रमेण च । शुद्धे शुभे दिने चैव कृत्वा तां निशि विन्यसेत् ॥ ९० ॥ शयीत दक्षिणे गेहे सुस्वप्नं शुभदं भवेत् । मुखैकं दिक्षु चत्वारि त्रीणि च गुदकण्ठयोः ॥९१॥ एवं चक्रं समालेख्यं प्रवेशार्थं सदा बुधैः । अग्निनाशो मुखे प्रोक्त उद्वासः पूर्वतो भवेत् । दक्षिणे चार्थलाभश्च पश्चिमे श्रीप्रदो भवेत् ॥ ९२ ॥

पादमें भंग हो तो मूलका नाश होता है, अरणिमें हो तो धनका नाश होता है, शिरमें हो तो मरण जाने. पादमें छिद्र हो तो महान् हानि होती है ॥ ८९ ॥ घंटाके आकारका चक्र लिखे और उसपर सूर्यके नक्षत्रसे सब नक्षत्रोंको क्रमसे लिखे. शुद्ध शुभदिनमें उसे बनाकर रात्रिको रखकर ॥ ९० ॥ दक्षिणके घरमें शयन करै. यदि शयनके समयमें स्वप्न श्रेष्ठ हो तो सुखदायी होता है और मुखमें एक नक्षत्र और चारों दिशाओंमें चार २ गुदा और कण्ठमें तीन २ लिखे ॥ ९१ ॥ प्रवेशके लिये बुद्धिमान् मनुष्य इस चक्रको भलीप्रकार लिखे मुखके

नक्षत्रोंमें प्रवेश हो तो अग्निका नाश (मन्दाग्नि) कहा है पूर्वके नक्षत्रोंमें उद्वास होता है दक्षिणके नक्षत्रोंमें धनका लाभ होता है पश्चिमके नक्षत्रोंमें जो प्रवेश है वह लक्ष्मीको देता है ॥ ९२ ॥ उत्तरके नक्षत्रोंमें कलह और गर्भके नक्षत्रोमें गर्भका नाश होता है कलशकी गुदा और कण्ठमें स्थिरता कही है ॥ ९३ ॥ स्नान करके शुद्ध, निराहार भूषणोंसे भूषित, पुत्र और दाराओंसे युक्त, मन्त्री और पुरोहितों सहित यजमान गन्ध पुष्प नवीन वस्त्र इनको धारण करके ॥ ९४ ॥ पुष्पमालाओंसे युक्त रुचिर और चित्रोंसे चित्रित प्राकारको मालासे लपेटे और शोभित

उत्तरे कलहश्चैव गर्भे गर्भविनाशनम् । स्थिरता च गुदे कण्ठे कलशस्य प्रकीर्तिता ॥ ९३ ॥ स्नातः शुचिर्निराहारोऽलङ्कारेण विभूषितः । पुत्रदारसमायुक्तः सामात्यः सपुरोहितः॥९४॥ गंधपुष्पं च वस्त्रं च परिधाय पुनर्नवम् । पुष्पमालान्वितं कार्यं रुचिरं चित्रचित्रितम् ॥ प्राकारं वेष्टयेत्तत्र मालया परिशोभितम् ॥९५॥ वस्त्रेणाच्छादितं मार्गं कृत्वा राजा सुखासने । निवेश्याग्रे तथा राज्ञीं निवेश्य विजितेन्द्रियः । गीतोत्सवादिभिर्युक्तो गीतवाद्यादिसयुतः ॥९६॥ अग्रे सुपूर्णान् कलशान् विप्रान् वेदविशारदान् । गायकान् गणिकांश्चापि सुवासिन्यो विशेषतः ॥ ९७ ॥ व्यस्तैर्यात्रादिशकुनैर्द्वारमार्गेण भूपतिः । वितानैस्तोरणैः पुष्पैः पताकाभिर्विशेषतः ॥ ९८ ॥ अलङ्कृत्य नवं गेहं देहलीं पूजयेत्ततः । दिक्पालांश्च तथा क्षेत्रपालं ग्रामपदेवताः ॥ ९९ ॥

किये ॥ ९५ ॥ मार्गको वस्त्रोंसे आच्छादित करके राजा सुखदायी आसनपर बैठकर रानीको भी पहिल सुखासनपर बैठाकर जितेन्द्रिय राजा गीत, उत्सव आदिसे (बाजे से) युक्त राजा ॥ ९६ ॥ अग्रभागमें जलसे पूर्ण कलश और वेदमें विशारद ब्राह्मणोंको, गायक और विशेषकर सुवासिनी (सुहागिनियों) को करके ॥ ९७ ॥ पृथक् २ यात्रा आदिके शकुनोंसे राजा द्वारके मार्गसे वितान तोरण पुष्प पताकाओंसे नवीन घरको ॥९८॥भूषित करके फिर देहलीका पूजन कर. फिर दिशाओंके स्वामी और क्षेत्रपाल और ग्रामके देवताओंका पूजन करे ॥ ९९ ॥ विधिवत् प्रणाम करके द्वारमार्गसे घरके विषे प्रवेश करे. गणेशजी और षोडशमातृकाओंका विशेषकर पूजन करे. वसोर्धाराका पात कराकर ग्रहोंका पूजन करे ॥ १०० ॥ वास्तुनाथका पूजन करके ब्राह्मणोंका पूजन करे. फिर धनकी शक्तिके अनुसार विद्वानोंको दक्षिणा दे, गोदान और भूमिका दान विधिके अनुसार करे ॥ १०१ ॥ पुरोहित, ज्योतिषी और स्थपति इनका यथार्थ सन्तोष करके दीन अन्ध कृपण इनको दान भोजन दे ॥ १०२ ॥ लिंगी (संन्यासी) और विशेषकर बन्धुओंके समूहको पूजै दान और मानसे यथाविधि सन्तोष करके

प्रणम्य विधिवत्पूज्य द्वारमार्गे विशेद्गृहम् । पूजयेद्गणनाथं च मातृकां च विशेषतः । वसोर्धारां पातयित्वा ग्रहांश्चैव तु पूजयेत् ॥१००॥ वास्तुनाथं च सपूज्य ब्राह्मणान् पूजयेत्ततः । दक्षिणां च ततो दद्याद्विद्वद्भ्यो वित्तशक्तितः । गोदानं भूमिदानं च कारयेच्च यथाविधि ॥१०१॥ पुरोहितं च दैवज्ञं स्थपतीन् परितोष्य च । दीनान्धकृपणेभ्यश्च दद्याद्दानं च भोजनम् ॥ १०२ ॥ लिङ्गिनं च विशेषेण बन्धुवर्गं च पूजयेत् । दानमानैश्च तान् सर्वान् परितोष्य यथाविधि ॥ १०३ ॥ भोजयेद्बन्धुवर्गांश्च स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः । राजा चान्तःपुरे वध्वा स्त्रीजनैश्च समन्वितः ॥ १०४ ॥ भोजयेच्छक्तितश्चान्तःपुरस्थान् स्वजनांस्ततः । विहरेच्च सुखं राजा स्वावासे भार्ययान्वितः ॥ १०५ ॥ इति श्रीवास्तुशास्त्रे गृहप्रवेशविधिप्रकरणं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

बन्धुओंके समूहको भोजन करावे और मौन होकर आप भोजन करे. राजा अंतःपुरमें बन्धु और स्त्रीजनोंसहित भोजन करे ॥ १०३॥१०४ ॥ शक्तिके अनुसार अन्तःपुरमें स्थित स्त्रियोंको फिर स्वजनोंको भोजन करावे फिर राजा अपने घरमें भार्या सहित सुखपूर्वक विहार करे ॥१०५॥ इति पं० मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते वास्तुशास्त्रे गृहप्रवेशविधिप्रकरणं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इसके अनंतर हे विप्रेंद्र ! तिसी प्रकार दुर्गोंके करनेको श्रवण करो जिसके ज्ञानमात्रसे निर्बलभी प्रबल होजाता है ॥ १ ॥ जिस दुर्गके आश्रयके बलसे ही भूतलमें राजा राज्य करते हैं. राजाओंका विग्रह (लडाई) भी सामान्य शत्रुओंके संग दुर्गके ही आश्रयसे होता है ॥ २ ॥ विषम दुर्गम और घोर वक्र (टेढा) भीरू भयका दाता और वानरके शिरकी तुल्य (समान) रौद्र अलकमंदिर ॥३॥ ऐसा स्थानको विचारकर उसमें विषमदुर्गकी कल्पना (रचना करे जिसका प्रथम परकोट मिट्टीका कहा है. दूसरा कोट जलका होजाता है ॥ ४ ॥ तीसरा-ग्रामकोट होता

अथातः शृणु विप्रेन्द्र दुर्गाणां करणं तथा । येन विज्ञातमात्रेण अबलः सबलो भवेत् ॥ १ ॥ यस्याश्रयबलादेव राज्यं कुर्वन्ति भूतले । विग्रहं चैव राज्ञां तु सामान्यैः शत्रुभिस्सह ॥ २ ॥ विषमं दुर्गमं घोरं वक्रं भीरुं भयावहम् । कपिशीर्षसमं चैव रौद्रा दलकमन्दिरम् ॥ ३ ॥ स्थानं विचिंत्य विषमं तत्र दुर्गं प्रकल्पयेत् । प्रथमं मृन्मयं प्रोक्तं जलकोटं द्वितीयकम् ॥ ४ ॥ तृतीयं ग्रामकोटं च चतुर्थं गिरिगह्वरम् । पञ्चमं पर्वतारोहं षष्ठं कोटं च डामरम् ॥ ५ ॥ सप्तमं वक्रभूमिस्थं विषमाख्यं तथाष्टमम् । चतुरस्रं चतुर्द्वारं वर्तुलं च तथैव च ॥ ६ ॥ दीर्घद्वारद्वयाक्रांतं त्रिकोणमेकमार्गकम् । वृत्तदीर्घं चतुर्द्वारमर्धचन्द्रं तथैव च ॥ ७ ॥ गोस्तनं च चतुर्द्वारं धानुषं मार्गकण्टकम् । पद्मपत्रनिभं चैव च्छत्राकारं तथैव च ॥ ८ ॥

है, चौथा--गिरिगह्वर होता है. पांचवां--पर्वतारोह होता है, छठाकोट डामर होता है ॥ ५ ॥ सातवां कोट वक्रभूमिमें होता है. आठवां--कोट विषम होता है चौकोर और वर्तुल (गोल) ॥६॥ दीर्घ जो दो द्वार उनसे आक्रांत (युक्त) हो त्रिकोण हो, जिसका एक मार्ग हो, वृत्त (गोल) दीर्घ (लंबे) जिसके चार द्वार हों जो अर्द्धचन्द्राकार हो ॥ ७ ॥ गौके स्तनकी तुल्य जिसके चार द्वार हों धनुषाकार और मार्गकंटक और पद्मपत्रके समान और छत्रके आकारके तुल्य ॥ ८ ॥ हे द्विजोंमें श्रेष्ठ ! ये दश प्रकारके दुर्ग मैंने कहे, मृन्मयदुर्गमें खनन (खोदना) से भीति होती है, जलमें स्थित दुर्गमें मोक्षबंधनसे भय होता है अर्थात पुलके टूटनेका भय होता है ॥ ९ ॥ ग्रामदुर्गमें अग्निके दाहसे और गह्वरमें प्रवेशका भय होता है पर्वतमें स्थानके भेदसे और डामरमें भूमिके बलसे भय होता है ॥ १० ॥ वक्रनामके दुर्गमें वियोगसे और विषमदुर्गमें स्थायी राजाओंको भय होता है और बल अबलसे मैं फिर यमपदको कहताहूं ॥ ११ ॥ अतिदुर्ग कालवर्ण

दशप्रकाराणि मया प्रोक्तानि द्विजपुंगव । मृन्मये खननाद्भीतिं जलस्थे मोक्षबन्धनात् ॥९॥ ग्रामदुर्गेऽग्निदाहाच्च प्रवेशाद्गह्वरस्य च । पर्वते स्थानभेदाच्च डामरे भूबलाद्भयम् ॥१०॥ वक्राख्ये तु वियोगाच्च विषमे स्थायिनां तथा । बलाबलाद्यमपदं पुनरन्यत् प्रवक्ष्यहम् ॥ ११ ॥ अतिदुर्गं कालवर्णं चक्रावर्तं च डिंबरम् । नालावर्तं च पद्माक्षं पक्षभेदं च सर्वतः ॥ १२ ॥ कारयेत्प्रथमं राजा पश्चाद्दुर्गं समाचरेत् । प्राकारे विन्यसेदादौ बाह्यस्थान् पूजयेत्ततः ॥१३॥ परिखाश्च ततः कृत्वा तन्मध्ये च ततः पुनः । सव्यापसव्यमार्गेण मार्गं तस्य प्रकल्पयेत् ॥ १४ ॥ गृहाणि बाह्यसंस्थान् कोणे कोणेषु विन्यसेत् । कोणस्थान् बाह्यतो गेहान् विषमान् कारयेत्ततः ॥ १५ ॥ प्रतोलिं पत्रकालाख्यां परिखाकालरूपिणीम् । यंत्रं रमणिकं कुर्याच्छकलीयन्त्रमंडितम् ॥ १६ ॥

चक्रावर्त डिंबर नालावर्त पद्माक्ष और सर्वतः (चारोंतरफसे) पक्षभेद इनको ॥ १२ ॥ राजा प्रथम करवावे, पीछेसे दुर्ग बनवावे प्रथम प्राकार (कोट) बनवावे फिर बाह्यमें जो मनुष्य स्थित रहैं उनकी पूजा करे ॥ १३ ॥ उस दुर्गकी परिखाओंको करवाकर उसके मध्यमें वाम और दक्षिण मार्गसे उस दुर्गके मार्गकी कल्पना करै ॥ १४ ॥ बाहर स्थित जो घर हैं उनको कोण २ में बनवावे और बाह्यदेशमें जो कोणोंमें स्थित घर हैं उनको विषम अर्थात् गमनके अयोग्य बनवावे फिर ॥ १५ ॥ पत्रकाल है नाम जिसका ऐसी परिखाकी कालरूपिणी

प्रतोली बनवावे. उसमें शकलीयन्त्रोंसे अर्थात् छिद्रोंसे मंडित रमणीक यन्त्रको करवाकर ॥ १६ ॥ मुशल मुद्गर प्रास यन्त्र खड्ग धनुर्धारी इनसे युक्त बनवावे. शूरवीर जो योद्धा हैं उनसे संयुक्त करवावे ॥ १७ ॥ कोण २ में उन शस्त्रोंके चलानेके अंत्रपुर (छिद्र) बनवावे. उसके बाह्य देशमें परिखाका आकार कालरूप विस्तारसे बनवावे ॥ १८ ॥ मध्यमें जो समान देशहो उसमें बडे २ घर बनवावे उन घरोंमें वास्तु और कोटपालका पूजन करे ॥ १९ ॥ विधिपूर्वक क्षेत्रपालका पूजन करे. यह विधि सम्पूर्ण दुर्गोंमें शास्त्रोक्तविधिसे होती है ॥ २० ॥ विषमस्थान

मुशलैर्मुद्गरैः प्रासैर्यन्त्रैः खड्गैर्धनुर्धरैः । संयुतं सुभटैः शूरैः संयुतानि च कारयेत् ॥ १७ ॥ तन्मोक्षोऽन्त्रपुरानोहान्कोणेकोणे प्रदापयेत् । तद्बाह्ये परिखाकारा कालरूपा सुविस्तरा ॥ १८ ॥ समे प्रदेशे मध्ये तु महागेहानि विन्यसेत् । तत्र सपूजयेद्वास्तुं कोटपालं तथैव च ॥ १९ ॥ क्षेत्रपालं च विधिवत्पूर्ववत्तं प्रपूजयेत् । एतद्विधानं सर्वेषु दुर्गेषु च विधानतः ॥ २० ॥ कारयेद्विषमे स्थाने पर्वते च विशेषतः । बाह्ये च परिखा कार्या प्राकारं तस्य मध्यतः ॥ २१ ॥ तन्मध्ये च पुनर्भित्तिं भित्तिमध्ये गृहानपि । गृहाणां मध्यभागे तु परिखां नैव कारयेत् ॥ २२ ॥ पूर्ववत्कोणभागेषु गृहान्विन्यस्य पूर्ववत् । त्रिपञ्चसप्तप्राकारान् कारयेन्मध्यमध्यतः ॥ २३ ॥ तन्मध्ये तु महापद्मं पूर्ववत्परिकल्पयेत् । तत्रैव स्थापयेद्वास्तुं कोटपालं तथैव च ॥ २४ ॥

और विशेषकर पर्वतमें भी यही विधि करे बाह्यमें परिखा करनी और उसके मध्यमें प्राकार बनवाना ॥ २१ ॥ उसके मध्यमें फिर भीत बनवावे और भीतके मध्यमें घरोंको बनवावे. गृहोंके मध्यभागमें परिखाको न करवावे ॥ २२ ॥ पूर्वके समान कोणके मार्गमें पूर्वरीतिसे गृहोंको बनवाकर मध्य २ में तीन पांच सात प्राकारोंको बनवावे ॥ २३ ॥ उनके मध्यमें पूर्वके समान महापद्मकी रचना करे, उस महापद्मके मध्यमें वास्तुपुरुष और कोटपालका स्थापन करे ॥ २४ ॥ दीर्घ दुर्गमें दीर्घ घरोंको वृत्तमें वृत्तघरोंको और त्रिकोणमें त्रिकोणघरोंको बुद्धिमान् मनुष्य बनवावे वा अपनी बुद्धिसे बनवावे ॥ २५ ॥ धनुषदुर्गमें धनुषके आकार और गोस्तनके समान दुर्गमें गोस्तनके आकारके घर बनवावे और त्रिकोण और छत्रखण्डमें द्वार पाताल (नीचा) से होता है ॥ २६ ॥ प्राकार पर स्थित धनुर्द्धारी जैसे सर्वत्र देखसके उस प्रकारसे भलीप्रकार दृढ शोभन भित्ति विस्तारसे बनवावे ॥ २७ ॥ इस प्रकार मेरे कहेहुए कोटोंको जो बुद्धिमान करता है वह कोटोंपर

दीर्घे दीर्घगृहान्कुर्याद्वृत्ते वृत्तांस्त्रिकोणके । त्रिकोणान्कारयेद्धीमान् स्वबुद्ध्या वा तथैव च ॥ २५ ॥ धानुषे धनुषाकारां गोस्तने गोस्तनाकृतिम् । त्रिकोणे छत्रखण्डे वा द्वारं पातालतो भवेत् ॥ २६ ॥ प्राकारस्थो धनुर्द्धारीसर्वत्र अवलोकने । तथा भित्तिः प्रकर्तव्या सुदृढा विस्तरा शुभा ॥ २७ ॥ एवं मया विनिर्दिष्टान्कोटान्करोतु बुद्धिमान् । कोटस्थान्बाह्यभागस्थान् यः सर्वानव लोकते ॥ २८ ॥ तादृक्पुराणि सर्वाणि कारयेत्स्थपतिः क्रमात् । अथातः संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयामले ॥ २९ ॥ यदा कोटस्य नक्षत्रे स्वामिनक्षत्रे तथैव च । गोचराष्टकभेदेन स्तम्भानां भेदने तथा ॥ ३० ॥ पापाक्रान्ते मध्यकोटे जन्मर्क्षे ग्रहदूषिते । वज्रास्त्राग्न्यादिदोषे च तथा भूकम्पदूषिते ॥ ३१ ॥

स्थित होकर बाह्य देशमें स्थित सबको देखता है ॥ २८ ॥ उन सम्पूर्ण पुरोंको स्थपति (राजा) क्रमसे बनवावे इनके अनंतर उसका वर्णन करताहूं जो ब्रह्मयामलमें कहा है ॥ २९ ॥ जब कोटके नक्षत्रमें स्वामीका नक्षत्र हो, गोचराष्टकके भेदसे स्तंभोंके छेदन पूर्वोक्त नक्षत्र एकहो ॥ ३० ॥ मध्य कोटका नक्षत्र पापग्रह करके आक्रांत हो. जन्मका नक्षत्र ग्रहोंसे दूषित हो और वज्र (बिजली) अस्त्र अग्नि आदिका दोष हो

वा भूकम्पसे दूषित हो ॥ ३१ ॥ कोणका नक्षत्र राहुसे युक्त हो वा ग्रहण उत्पातसे दूषित होय तो ऐसे मुहूर्तमें यथार्थ रीतिसे विधिपूर्वक शास्त्रोक्त शांति करनी ॥३२॥ उस पुरमें पताकाओंसे अलंकृत मण्डपको बनवावे. अष्ट कुम्भोंको वहां सर्वौषधिसे युक्त करे ॥३३॥ सर्वबीज, पंचरत्न तीर्थके जलोंसे पूरित करे प्रथम घटमें भूमिका आवाहन करे दूसरे घटमें नागराजाका आवाहन करे ॥ ३४ ॥ तीसरेमें कोटपालका चौथे घटमें स्वामीका आवाहन करे, पांचवेंमें वरुणका, छठेमें रुद्रका आवाहन करे ॥ ३५ ॥ सातवेंमें सातमातृकाओंसे युक्त चण्डिका देवीका आवाहन

कोणभे राहुणा युक्ते ग्रहणोत्पातदूषिते । तत्र शांतिः प्रकर्तव्या यथावद्विधिनोदिता ॥ ३२ ॥ तत्पुरे मण्डपं कुर्यात् पताकाभिरलंकृतम् । अष्टकुम्भांस्तत्र कुर्यात्सर्वौषधिभिरन्वितान् ॥ ३३ ॥ सर्वबीजैः पञ्चरत्नैस्तीर्थतोयैश्च पूरितान् । भूमिं चावाहयेत्पूर्वं द्वितीये नागनायकम् ॥ ३४ ॥ तृतीये कोटपालं च स्वामिनञ्च चतुर्थके । पञ्चमे वरुणं चैव षष्ठे रुद्रं तथैव च ॥ ३५ ॥ सप्तमे चण्डिकां देवीं मातृभिः सप्तभिर्युताम् । अष्टमे सुरनाथं च तत्तन्मंत्रैश्च पूजयेत् ॥३६॥ वास्तुपूजां ततः कुर्याद् गृहमण्डलगान्ग्रहान् । गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैः कर्पूरसंभवैः ॥ ३७ ॥ नैवेद्यैश्चापि भूयिष्ठैः फेणिकैः पूरिकादिभिः । शष्कुलीभिस्सखर्ज्जूरैर्लड्डुकैर्मोदकैस्तथा ॥ ३८ ॥ नानाविधैः फलैश्चापि विधिवत्तोषयेत्सुरान् । द्वाराग्रे भैरवं देवं विधिवत्पूजयेत्ततः ॥ ३९ ॥

करे, आठवेंमें सुरनाथ (इन्द्र) का आवाहन करे इन सबका तिस २ के मन्त्रोंसे पूजन करे ॥ ३६ ॥ वास्तुपूजाको करे. ग्रहमण्डलके मध्यमें जो ग्रह हैं उनका गन्ध पुष्प धूप दीपक और कपूरके धूपदीपोंसे ॥ ३७ ॥ नैवेद्य और अधिक जो फेणिक पूरीआदि और शष्कुली खजूर लड्डू और मोदक इनसे पूजन करे ॥ ३८ ॥ नाना प्रकारके फलोंसे विधिपूर्वक देवताओंका संतोष करे, फिर द्वारके आगे विधिपूर्वक भैरवदेवका पूजन करे ॥ ३९ ॥ बाह्यदेशमें दिक्पालोंका पूजन करे और गृहके मध्यभागमें क्षेत्रपालको पूजे, अपनी शाखामें उक्तविधिसे ग्रहोंके निमित्त होम करे ॥ ४० ॥ फिर वास्तुहोम करे और भूमि आदिकोंके निमित्त होम करे और भैरवी भैरव सिद्धिग्रह नाग और उपग्रह ॥ ४१ ॥ जो भैरवके समीपमें स्थित हैं उनका यथाविधि पूजन करके विधिसे क्षेत्रपालके मन्त्रसे होमको करे ॥ ४२ ॥ होमके अंतमें पांच बेल वा बेलके बीजोंसे कोटपालके नामसे वास्तुहोमको करे ॥ ४३ ॥ ॐकार है आदिमें जिसके ऐसे स्वामीके उस नाममंत्रसे जिसके आदिमें भूर्भुवः स्वः

दिक्पालान्पूजयेद्बाह्ये क्षेत्रपालञ्च मध्यतः । होमं कुर्याद्ग्रहाणां तु स्वशाखोक्तविधानतः ॥ ४० ॥ वास्तुहोमं ततः कुर्याद्भूम्यादीनां तथैव च । भैरवी भैरवाः सिद्धिग्रहा नागा उपग्रहाः॥ ४१ ॥ भैरवस्य समीपस्थांस्तान् सम्पूज्य यथाविधि । क्षेत्रपालस्य मन्त्रेण होमं कुर्याद्विधानतः ॥ ४२ ॥ होमान्ते पञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्वबीजैस्तथापि वा । वास्तुहोमं प्रकुर्वीत कोटपालस्य नामतः ॥ ४३ ॥ स्वामिनामस्य मन्त्रेण प्रणवाद्येन वै द्विज । भूर्भुवः स्वरितिपूर्वेण पूजां वा होममेव च ॥ दुष्टग्रहाणां मंत्रैश्च हुनेदष्टोत्तरं शतम् । प्रत्येकं जुहुयाद्विद्वांस्तिलैर्वाथ घृतेन वा॥४४॥उष्ट्रिमन्त्रं जपेन्मध्ये सहस्रेण शतेन वा । अष्टोत्तरं शतं हुत्वा बलिं दद्यादतः परम् ॥४५॥ पूरिकाया बलिं पूर्वे दक्षिणे कृशरं ततः । पश्चिमे पायसं दद्यादुत्तरे घृतपायसम् ॥ ४६ ॥ दिक्पालानां बलिं चैव क्षेत्रपालबलिं ततः । कोटपालबलिं चैव कोटस्वामिबलिं ततः ॥ ४७ ॥

हों पूजा वा होमको करे, दुष्टग्रहोंके मन्त्रोंसे अष्टोत्तरशत १०८ आहुति दे. बुद्धिमान् मनुष्य प्रत्येक ग्रहके नामसे तिल वा घृतसे होम करे ॥ ४४ ॥ मध्यमें एक सहस्र वा शत उष्ट्रिमन्त्रका जप करे और उससे अष्टोत्तरशत होमको करके बलिको दे ॥४५॥ पूर्व दिशामें पूरीकी बलि दे. दक्षिण कृशरअन्नकी, पश्चिममें पायसकी, उत्तरमें घी और पायसकी बलि दे ॥ ४६ ॥ दिक्पालोंकी बलि, फिर क्षेत्रपालकी बलिको,

फिर कोटपालकी बलिको, फिर कोटस्वामीकी बलिको दे ॥ ४७ ॥ पूरके ऊपर पशुकी बलिको दे और द्वारके आगे महिष (भैंसे) की बलि दे. एकसहस्रके प्रमाणके पाहिले यमश्लोकको जपे ॥ ४८ ॥ विधिसे पूर्णाहुतिको देकर अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणाको दे फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे. इस प्रकार करनेसे राजाकी सिद्धि होती है ॥ ४९ ॥ फिर पुरके कर्मको समाप्त करके सन्ध्याकालके समय नैर्ऋतमें विधिसे बलिको दे और पूर्वोक्त मन्त्रोंको पढै ॥ ५० ॥ मांस ओदनकी बलि दे और इस मन्त्रको पढ कि (ॐ ह्रीं सर्वविघ्नान् उत्सारय न न न न न न न न

पुरोपरि पशून्दद्याद्द्वाराग्रे महिषं ततः । यमश्लोकं जपेत्पूर्वं सहस्रस्य प्रमाणतः ॥४८॥ पूर्णां दत्त्वाथ विधिवत्स्वशक्त्या दक्षिणां चरेत् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्ततः सिद्धिर्भविष्यति ॥ ४९ ॥ पुरकर्म ततः कृत्वा सन्ध्याकाले च नैर्ऋते । बलिं दद्याद्विधानेन मन्त्रान्पूर्वोदितान्पठेत् ॥५०॥ मांसौदनबलिं चैव मन्त्रमेतदुदीरयेत् । ॐ ह्रीं सर्वविघ्नानुत्सारय नननननन न मोहिनि स्तंभिनि मम शत्रुं मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय अस्य दुर्गस्य रक्षां कुरु कुरु स्वाहा ॥ बलिं दत्त्वा ह्यनेनापि कृतकृत्यो भवेन्नरः । दुष्टऋक्षस्य यः स्वामी तन्मन्त्रेण च कारयेत् ॥५१॥ खादिरस्य च कीलं तु द्वादशाङ्गुलमानतः । मृत्युजयेन मन्त्रेण अभिमंत्र्य सहस्रधा ॥ ५२ ॥ स्थिरलग्ने स्थिरांशे च सुलग्ने सुदिने ततः । रोपयेद्दुर्गमध्ये तु ततः सिद्धिर्भविष्यति ॥ ५३ ॥

मोहिनि स्तंभिनि मम शत्रून् मोहय मोहय स्तंभय स्तंभय अस्य दुर्गस्य रक्षां कुरु २ स्वाहा) और इस मन्त्रसे भी बलिको देकर मनुष्य कृतकृत्य होता है और दुष्ट नक्षत्रका जो स्वामी है उसके मन्त्रसे भी बलि और होम करवावे ॥ ५१ ॥ बारह अंगुलके प्रमाणकी जो खदिरवृक्षकी कील है उसका मृत्युंजय मन्त्रसे सहस्रवार १००० अभिमन्त्रण करके ॥ ५२ ॥ स्थिर लग्न और स्थिरलग्नके नवांशकमें, शोभनदिन और शोभनलग्नमें दुर्गके मध्यमें रोपण करे (गाडदे) ऐसा करनेसे सिद्धि हो जाती है ॥ ५३ ॥ सब कालमें कोटका स्वामी सुखका भागी होता है, उष्ट्रीमन्त्र यह है कि--ॐ उष्ट्रि विकृतदंष्ट्रानने त्रुंफट् स्वाहा ॥ ५४ ॥ इस उष्ट्रीमन्त्रको दशसहस्र जपकर घृत मधु पुष्पोंसे एकसहस्र मन्त्रसे होम करै फिर मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥ ५५ ॥ द्वात्रिंशत ३२ हैं अक्षर जिसमें ऐसे यमश्लोकको द्वात्रिंशत्सहस्र जपे फिर सिद्ध होता है ॥ ५६ ॥ तिसी प्रकार पूर्वविधिसे शत शत १०००० मन्त्रोंसे होम करे फिर सिद्ध होता है और तिस २ सम्पूर्ण कर्मको करता है ॥ ५७ ॥ द्वादश हैं आरे

सर्वदा सुखभागी च कोटपो भवति ध्रुवम् । उष्ट्रीमन्त्रः--ॐह्रीं उष्ट्रि विकृतदंष्ट्रानने त्रुं फट्॥५४॥उष्ट्रीमन्त्रं दशसहस्राणि जपित्वा घृतमधुना पुष्पैः सहस्रमेकं यजेत्ततः सिद्धो भवति ॥ ५५ ॥ यमश्लोकं द्वात्रिंशाक्षरं द्वात्रिंशत्सहस्राणि जपेत्ततः सिद्धो भवति ॥ ५६ ॥ तथा पूर्वविधिना शतशतानि होमयेत्ततः सिद्धो भवति तत्तत्सकलं कर्म करोति ॥ ५७ ॥ द्वादशारं लिखेच्चक्रं वृत्तत्रयविभूषितम् । उष्ट्रिमन्त्रश्च तद्बाह्ये यमश्लोकौ च मध्यतः॥५८॥वज्रार्गलविधानन्तु कर्तव्यं दुर्गलक्षणे । भजने यमराजाख्यमित्युक्तं ब्रह्मयामले ॥ ५९ ॥ मृत्युञ्जयमंत्रः--ॐजूंसः ॥ इति वास्तु शास्त्रे कोटवास्तुकरणं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

जिसमें ऐसे चक्रको तीन वृत्तोंसे विभूषित लिखै. उस यन्त्रके बाह्य देशमें उष्ट्रिमन्त्रको, मध्यमें यमके श्लोकोंको लिखे ॥ ५८ ॥ दुर्गकी रक्षाके लिये वज्रार्गलविधानको करे. भजनकरनेमें यमराजनामके विधानको करे यह ब्रह्मयामलमें कहा है ॥ ५९ ॥ मृत्युंजयका मन्त्र यह है कि, ॐ जूंसः ॥ इति पं० मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते वास्तुशास्त्रे कोटवास्तुनाम एकदशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर फिर शल्यज्ञानकी विधिको कहताहूं--जिसके ज्ञानमात्रसे गृहका स्वामी सुखको प्राप्त होता है ॥ १॥ घरके प्रारंभ समयमें जिस अपने अंगमें कण्डू (खुजली) पैदा होजाय उस अंगमें अपने देह और प्रासाद और भवनमें शल्य (दुःखको)जाने ॥२॥ जिससे शल्य सहित घर भयका दाता होता है इससे अल्प सिद्धिका दाता होता है नमस्कार करवाकर यजमानकी परीक्षा करे ॥ ३ ॥ जिस मस्तक आदि अंगका स्पर्श कर्ता (यजमान) करे उसकेही दुःखको दूर करता है आठ तालकी ध्वनिके भीतर नीचेके अंगका स्पर्श करे तो उस

अतः परं प्रवक्ष्यामि शल्यज्ञानविधिं पुनः । येन विज्ञानमात्रेण गृहेशः सुखमाप्नुयात् ॥ १ ॥ गृहारंभे च कंडूतिः स्वाङ्गे यत्र प्रवर्तते । शल्यमासादयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा ॥ २ ॥ सशल्यं भयदं यस्मादल्पसिद्धिप्रदायकम् । कारयित्वा नमस्कारं यजमानं परीक्षयेत् ॥ ३ ॥ यदंगं संस्पृशेत्कर्ता मस्तकं शल्यमुद्धरेत् । अष्टतालादधस्तस्मिंस्तत्र शल्यं न संशयः ॥ ४ ॥ नासिकास्पर्शने कर्तुर्वास्तोः शल्यं तदल्पकम् । स्थितं विनिश्चितम् ब्रूयात्तल्लक्षणमथोच्यते ॥ ५ ॥ शिरसः स्पर्शने वास्तोः सार्द्धहस्तादधः स्थिताम् । मौक्तिकं तु करत्रेण मुखस्पर्शेऽतिदेहिनः ॥ ६ ॥ वाजिदंतं महाशल्यमुद्धरेत् तास्तुतन्त्रवित् । करस्पर्शे करे वास्तोः खट्वांगे च करादयः ॥ ७ ॥ अथापरमपि ज्ञानं कथयामि समासतः । षड्गुणीकृ सूत्रेण शोधयेद्धरणीतले ॥ ८ ॥

अंगमें शल्य होता है इसमें संशय नहीं ॥ ४ ॥ नासिकाके स्पर्शमें कर्ता और वास्तुको अल्पदुःख होता है इस मर्यादाको निश्चित कहे इसके अनन्तर उसके लक्षणको कहते हैं ॥ ५ ॥ वास्तुके शिरका स्पर्श करे सार्धहाथ १ ॥ से नीचे शल्यको जाने. यदि मौक्तिकका स्पर्श अपने करसे करे वा किसी देहीके मुखका स्पर्श करे ॥ ६ ॥ तो अश्वोंके दांतोंका जो दुःख है उसके उद्धार (नाश)को वास्तुतंत्रका ज्ञाता करता है हाथका स्पर्श करे तो वास्तुके हाथमें और खट्वाके अंगका स्पर्श करे तो करसे नीचेके दुःखको कहे॥७॥इसके अनंतर संक्षेपसे अन्य ज्ञानकोभी कहताहूँ कि, छः गुना कियेहुए सूत्रसे भूमिके तलको शुद्ध करे ॥ ८ ॥ उस सूत्रके भलीप्रकार धारणा करनेके समयमें यदि कोई उस सूत्रका लंघन करे उसकाही अस्थि भूमिके भागमें उस पुरुषके ही प्रमाणको जाने ॥ ९ ॥ जिस दिशामें आसक्त अस्थि दीखे उसी दिशामें शल्यको कहे, उसी दिशामें उसके अस्थि सत्तर ७० अंगुलके प्रमाणसे जाने ॥ १० ॥ सूत्र धारणके समयमें जहां आसनपर स्थित हुआ मनुष्य आदि हों उसके ही अस्थिको वहां जाने इसका उस क्षितिमें संशय न समझे ॥ ११ ॥ नव कोष्ठ किये हुए भूमिके भागमें पूर्व आदि दिशाओंमें अ क च

सुधृते समये तस्मिन् सूत्रं केनापि लंघितम् । तदस्थि तत्र जानीयात्पुरुषस्य प्रमाणतः ॥ ९ ॥ आसक्तो दृश्यते यस्माद्दिशं शल्यं समादिशेत् । तस्यामेव तदस्थीनि सप्तत्यङ्गुलमानतः ॥ १० ॥ सूत्रिते समये यत्र आसनोपरि संस्थितः । तदस्थि तत्र जानीयात्क्षितौ क्षणे न संशयः ॥ ११ ॥ नवकोष्ठीकृते भूमिभागे प्राच्यादितो लिखेत् । अकचटतपयशान्क्रमाद्वर्णानिमानि च ॥ १२ ॥ प्रारम्भः स्याद्यदि प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत् । सार्द्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुष्यमृत्यवे ॥ १३ ॥ अग्नेर्दिशि च कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वयोः । राजदण्डो भवेत्तस्मिन्भयश्चैव प्रवर्तते ॥१४॥ याम्यां दिशि कृते प्रश्ने नरशल्यमधो भवेत् । तद्गृहस्वामिनो मृत्युं करोत्याकटिसंस्थितम् ॥ १५ ॥

ट त प श इन वर्णोंको क्रमसे लिखे ॥ १२ ॥ यदि पूर्व दिशामें प्रारंभ होय तो मनुष्यको दुःख होता है वह भी सार्द्ध हस्त १ ॥ के प्रमाणसे होता है और वह मनुष्यकी मृत्युका हेतु होता है ॥ १३ ॥ अग्निदिशामें प्रश्न होय तो दोनों कर (हाथ) में खर शल्य होता है, उसीमें राजदंड और भय होता है ॥ १४ ॥ दक्षिण दिशामें प्रश्न किया जाय तो नीचेके भागमें नरशल्य होता है. वह घरके स्वामीको मृत्यु (दुःख) को

कटिपर्यंत भागमें करता है ॥ १५ ॥ नैर्ऋत्य दिशामें प्रश्न करे तो सार्द्ध हाथके अधोभागमें अर्थात् डेढ हाथ नीचे श्वानके आस्थिको जाने, उसमें बालकोंकी मृत्यु होती है ॥१६॥ पश्चिमदिशामें प्रश्न होय तो शिव (लोमडी) में शल्य (दुःख) होता है. सार्द्ध हाथके प्रमाणसे होता है वह स्थान स्वामीके प्रवासका कारण होता है ॥१७॥ वायव्य दिशामें प्रश्न होय तो चार हाथके नीचे मनुष्योंके शल्य है उसको भली प्रकार उद्धार करे बुद्धि

ई.	पू.	अ.
उ.	म.	द.
वा	प.	नै.

नैर्ऋत्यां दिशितः प्रश्ने सार्द्धहस्तादधस्तले । शुनोऽस्थि जायते तत्र डिम्भानां जनयेन्मृतिम् ॥ १६ ॥ प्रश्ने च पश्चिमायां तु शिवशल्यं प्रजायते । सार्द्धहस्ते प्रवासाय सदनं स्वामिनः पुनः ॥१७॥ वायव्यां दिशि तु प्रश्ने नाराणां वा चतुष्करे । शल्यं समुद्धरेद्धीमान् करोति मित्रनाशनम् ॥ १८ ॥ उत्तरस्यां दिशि प्रश्ने गर्दभास्थि न सशयः । सार्द्धहस्तचतुष्के च पशुनाशाय तद्भवेत् ॥ १९ ॥ ईशानदिशि यः प्रश्नो गोशल्यं सार्द्धहस्ततः तच्च गोधननाशाय जायते गृहमेधिनः ॥ २० ॥ मध्यकोष्ठे च यः प्रश्नो वक्षोमात्रादधस्तदा । केशाः कपालं मर्त्यास्थि भ म लोहं च मृत्यवे ॥२१॥ मंत्रश्च–ॐ ह्रीं कूष्माण्डि कौमारि मम हृदये कथय कथय ह्रीं स्वाहा ॥ एकविंशतिवारमनेन मन्त्रेणाभिमन्त्र्य प्रश्नमानयेत् । अत्र दिशः सूर्योदयाद्गणनीयाः ॥ जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा ॥ २२ ॥

मान् मनुष्य उसमें मित्रके नाशको जाने ॥१८॥ उत्तर दिशामें प्रश्न होय तो साढे चार हाथपर गर्दभके अस्थिको जाने वह पशुओंके नाशको करता है ॥१९॥ईशान दिशामें प्रश्न होय तो सार्द्ध हाथपर १ ॥ गौके शल्यको जाने और वह गृहस्थीके गोधनको नष्ट करता है ॥ २० ॥ मध्यकोष्ठके विषे जो प्रश्न होय तो वक्षः (छाती) के नीचेके प्रमाणसे केश कपाल मनुष्यके आस्थि लोहा ये जानने. ये मृत्युके कर्त्ता होते है ॥२ ॥ मन्त्र यह है कि–" ॐ ह्रीं कूष्मांडि कौमारि मम हृदये कथय कथय ह्रीं स्वाहा " इक्कीसवार इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित (पढना)करके प्रश्नको लावे और इसमें दिशा सूर्योदयसे गिननी, जलके अन्ततक वा मस्तरके अन्तपर्यंत वा पुरुषके अन्ततक ॥ २२ ॥ क्षेत्रको भलीप्रकार शोधकर शल्यका उद्धार करके स्थानका प्रारम्भ करे. धातु काष्ठ अस्थि इनसे पैदा हुए शल्य अनेक प्रकारके कहे हैं ॥ २३ ॥ हे द्विजोंमें उत्तम ! परीक्षा करके घरका प्रारंभ करना. जब घरके प्रारंभ कर्ममें शल्य न जानाजाय ॥ २४ ॥ तो फलके पाक होनेपर अर्थात् कष्ट आदिके होनेपर कर्मके ज्ञाता

क्षेत्रं संशोद्धय चोद्धृत्य शल्यं सदनमारभेत् । शल्यानेकविधाः प्रोक्ता धातुकाष्ठास्थिसम्भवाः ॥ २३ ॥ तान् परीक्ष्य प्रकर्तव्यो गृहारम्भो द्विजोत्तम । यदा न ज्ञायते शल्य गृहारम्भणकर्मणि ॥ २४ ॥ फलपाकेन शल्यं तज्ज्ञातव्यं कर्मवेदिभिः । सशल्ये वास्तुसदने पूर्वं दुःस्वप्नदर्शनम् ॥ २५ ॥ हानिर्वा रोगमतुलं धननाशस्तथैव च अन्यानि वास्तुशल्यानि कथयामि समासतः ॥२६॥ सप्ताहाद्वाशिते रात्रौ गौर्वा गोष्ठेऽथ बन्धऽकी । रोदन्ते वारणोऽश्वो वा श्वानो वा गृहमूर्द्धनि ॥२७॥ वन्यो वा प्रविशेद्यस्य निर्विशङ्कोऽथ वा मृगः । श्येनो वाथ कपोतो वा व्याघ्रो गोमायुर्वा तथा ॥२८॥ गृध्रो वाप्यथवा कृष्णसर्पो वाथ शुकोऽपि वा । नरास्थीनि गृहीतश्च जाङ्गलो वाथ कारणात् ॥ २९ ॥

शल्यको जानलें कि, शल्यसहित वास्तुके स्थानमें पहिले दुष्ट स्वप्न दीखता है ॥ २५ ॥ हानि वा अत्यंत रोग और धनका नाश उस दुःस्वप्नसे होता है. अन्य भी वास्तुके शल्योंको संक्षेपसे कहताहूं ॥ २६ ॥ जिस घरमें सात दिनतक रात्रिके समयमें गौ शब्द करे वा गोष्ठमें बन्धकी शब्द करे और जिसमें हाथी अश्व शब्द करे वा घरके ऊपर श्वान शब्द करें ॥ २७ ॥ अथवा जिस घरमें वनका मृग निडर होकर प्रविष्ट होजाय वा श्येन कपोत व्याघ्र वा गीदड प्रविष्ट हो जायँ ॥ २८ ॥ गीध वा कालासर्प वा शुक (तोता) जो जंगलका हो वह मनुष्यके आस्थि लेकर

किसी हेतुसे प्रविष्ट हो जाय ॥ २९ ॥ जो घर वज्रसे दूषित हो, जो पवन और अग्निसे दूषित हो, यक्ष वा राक्षस वा पिशाच प्रविष्ट होजायँ ॥ ३० ॥ वा रात्रिके समयमें काक वा भूतको ताडना दीजाय जिस घरमें रात्रि दिन कलह हो वा युद्ध हो ॥ ३१ ॥ उस पूर्वोक्त दुःशकुनवाले घरमें भी शल्य जाने, जो अन्य घरके दोष हैं उनमें और काष्ठके दीखनेमें भी और काष्ठोंके व्यत्ययमें भी शल्यको जाने ॥ ३२ ॥ गौका शल्य वा अन्य कोई शल्य जिस स्थानमें हो वहां शल्यके उद्धारको करे वंशआदिका जो शल्य हो और द्वारमार्गका जो शल्य हो ॥ ३३ ॥ बाह्य

वज्रेण दूषितं यच्च यच्च वाताग्निदूषितम् । यक्षो वा राक्षसो वापि पिशाचो वा तथैव च ॥३०॥ काको वा ताड्यते रात्रौ भूतो वापि गृहेऽथवा । कलहं च दिवारात्रौ योषितां युद्धमेव च ॥ ३१ ॥ तत्रापि शल्य जानीयाद्ये चान्ये गृहदोषकाः । काष्ठेऽपि शल्यं जानीयाद्दारूणां व्यत्यये तथा ॥३२॥ गोशल्ये वान्यशल्ये वा शल्योद्धारं ततश्चरेत् । वंशादीनां च यच्छल्यं यच्छल्यं द्वारमार्गतः ॥ ३३ ॥ बाह्यं वेधस्य यच्छल्यं तद्दोषं च विनाशयेत् तस्मादनेकशल्यानां ज्ञानं नास्ति तदा नरैः ॥ ३४ ॥ अवश्यमेव कर्तव्यः शल्योद्धारो हितेप्सुभिः । वास्तुपूजां च विधिवत्कारयेत्पूर्वके दिने ॥ ३५ ॥ सुदिने शुभनक्षत्रे चन्दतारा बलान्विते । शुद्धे काले प्रकर्तव्यः शल्योद्धारो द्विजोत्तमैः ॥ ३६ ॥ शिलां कुर्यात्समां श्लक्ष्णां हस्तमात्रां दृढां शुभाम् । चतुरस्रां त्रिभागेन पट्टिकाभिर्विनिर्मिताम् ॥ ३७ ॥

जो वेधका शल्य हो उसको भी शल्योद्धार नष्ट करता है जिससे अनेक प्रकारके शल्योंका ज्ञान मनुष्योंको नहीं होसकता तिससे ॥ ३४ ॥ हितके अभिलाषी मनुष्य शल्योद्धारको अवश्य करे, पहिले दिन विधिसे वास्तुपूजा करे ॥ ३५ ॥ सुन्दर दिनमें शुभ नक्षत्रमें और चन्द्र ताराके बलसे युक्त शुद्ध कालमें द्विजोंमें उत्तम शल्योद्धारको करे ॥ ३६ ॥ समान चिकनी हाथभरकी दृढ स्थानके शुभ चौकोर स्थानके त्रिभागमें वर्तमान पट्टिकाओंसे बनाई हो ऐसी शिलाको बनवावे ॥ ३७ ॥ उतने ही प्रमाणकी आधारशिलाको विधानका ज्ञाता बनवाकर उसके मस्तकको नन्दामें कहा है, और भद्रा नामकी शिलामें दक्षिण हाथ कहा है ॥ ३८ ॥ उसके वाम करमें रिक्ता कही है जयामें उसके चरण कहे हैं नाभिदेशमें पूर्णा जाननी, उसका सम्पूर्ण अंग वास्तुपुरुषरूप है ॥ ३९ ॥ संपूर्ण देवस्वरूप वास्तुपुरुष सबको शुभकारी होता है बुद्धिमान मनुष्य मध्यप्रदेशमें तिस एक शिलाका स्थापन करवावे ॥ ४० ॥ घरके मध्यभागमें चारों तरफसे नाभिमात्र गर्त (गढ्ढा) को करके

तावत्प्रमाणामाधारशिला कृत्वा विधानवित् । नन्दायां मस्तकं प्रोक्त भद्रायां दक्षिणः करः ॥ ३८ ॥ रिक्ता वामकरे प्रोक्ता जयायां चरणौ तथा । नाभिदेशे तथा पूर्णा सर्वांगे वास्तुपुरुषः ॥ ३९ ॥ सर्वदेवमयः पुंसां सर्वेषां शोभनो भवेत् । तस्मान्मध्ये प्रदेशे तु शिलैकां स्थापयेद्बुधः ॥ ४० ॥ गृहमध्ये नाभिमात्रं कृत्वा गगर्तं समन्ततः । शिलामध्ये लिखेद्यंत्र स्वस्तिकाख्यं सुशोभनम् ॥ ४१ ॥ खनित्वा स्थपतिस्तस्मिंस्त्रिभागान्कारयेद्बुधः । तन्मध्ये स्वस्तिकाकारां कारयेच्च समन्ततः ॥ ४२ ॥ ईशानादिचतुष्कोणे शिलां संपूज्य वेदवित् । ईशानकोणे नन्दायाः पूजनश्चैव कारयेत् ॥ ४३ ॥ आग्नेयकोणे भद्रां तु नैर्ऋत्ये च जयां तथा । रिक्तां वायव्यदिक्कोणे पूर्णां स्वस्तिकमध्यतः ॥ ४४ ॥

शिलाके मध्यमें स्वस्तिक नामके शोभन यन्त्रको लिखे ॥ ४१ ॥ खोदकर उसमें बुद्धिमान् स्थपित (कारीगर) तीन भागको करे. उसके मध्यमें चारों तरफ स्वस्तिकके आकारको करे ॥ ४२ ॥ ईशान आदि चारों कोणोंमें वेदका वेत्ता (ज्ञाता) शिलाको भलीप्रकार पूजन कर ईशान कोणमें नन्दाके पूजनको करे ॥४३॥ अग्निकोणमें भद्राका, नैर्ऋत्य कोणमें जयाका, वायव्यकोणमें रिक्ताका, स्वस्तिकके मध्यमें

पूर्णाका पूजन करे ॥ ४४ ॥ विधानका ज्ञाता आचार्य उसका पूर्वके समान क्रमसे पूजन करे. चौरासी ८४ पलका तांबेसे बनाहुआ और दृढ शुभदायी कुंभ ॥ ४५ ॥ जो हाथ भरका हो गर्भ (मध्य) में शुद्ध हो, चार अंगुल जिसका मुख हो छः अंगुल जिसका कण्ठ हो, ढका हुआ हो और भली प्रकार तेजस्वी हो ॥ ४६ ॥ ऐसे घटका मध्यमें स्थापन करके उसके बाह्य देशमें आठ घटोंका स्थापन करे. उन घटोंको भोजन और औषधोंसे पूर्ण करे. उन आठों घटोंको क्रमसे आठों दिशाओंमें दिक्पालोंके मन्त्रोंसे स्थापन करे ॥ ४७ ॥ उनको तीर्थके जलोंसे औ

पूर्ववत्पूजयेत्तां तु क्रमेणैव विधानवित् । चतूराशिपलं कुम्भं ताम्रोद्भूतं दृढं शुभम् ॥ ४५ ॥ हस्तमात्रं भवेद्गर्भशुद्धं स्याच्च तुरङ्गुलम् । कण्ठं रसाङ्गुलं तस्य पिहितं वसुवर्चसम् ॥ ४६ ॥ अष्टौ कुम्भा बहिः स्थाप्याः पूरयेद्भोजनौषधैः । दिक्ष्वष्टसु क्रमेणैवदिक्पालानां च मन्त्रकैः ॥ ४७ ॥ तीर्थतोयेन संपूर्य तथा पञ्चनदीजलैः । पञ्चरत्नैर्युतं तच्च सफलैर्बीजपूरकैः ॥ ४८ ॥ कुंकुमं चन्दनञ्चैव कस्तूरीं रोचनां तथा । कपूरं देवदारुञ्च पद्माख्यं सुरभिं तथा ॥ ४९ ॥ अष्टगन्धं तथान्यानि गन्धान्यस्मिन् विनिःक्षिपेत् । वृषशृङ्गोद्भवा सिंहनखोद्भूता तथैव च ॥ ५० ॥ वराहवारणरदे लग्नाश्चाष्ट मृदस्तथा । देवालयद्वारमृदः पञ्चगव्यं समन्त्रितम् ॥ ५१ ॥

पांच नदियोंके जलोंसे भली प्रकार पूर्ण करके वह मध्यका घट पंच रत्न फल और बीजपूरसे युक्त हो ॥ ४८ ॥ कुंकुम चन्दन कस्तूरी गोरोचन कपूर देवदारु पद्म और सुरभि (सुगंधि) अन्य पदार्थ ॥ ४९ ॥ अष्टगंध और अन्यभी गंधके पदार्थ उस घटमें डारे. वृषके शृंगसे उखाडी, सिंहके नखोंसे उखाडीहुई मृत्तिका ॥ ५० ॥ वराह और हाथीके दांतोंमें जो लगीहुई मिट्टी है उससे अन्य जो आठ प्रकारकी मिट्टी और देवमंदिरके द्वारकी मिट्टीको और मंत्र पढे हुए पंचगव्यको ॥ ५१ ॥

पंचामृत, पंचपल्लव, पांच त्वचा और पांच कषाय इन सबको उस कलशमें डार दे ॥ ५२ ॥ तीन मधु और सप्तधान्य जो पारेसे युक्त हों उनको भी डारे उसमें गणेश आदि देवता और लोकपालोंका आवाहन करके ॥ ५३ ॥ घरमें धनके पति-कुबेर और वरुणको स्थापन करके नागोंके नायक (शेष) का स्थापन करे. पूर्वोक्त विधिसे वेदके मंत्रोंसे आवाहन करके ॥ ५४ ॥ आगमके मंत्रोंसे, पुराणोंमें पढेहुए मंत्रोंसे अष्टशत ८०० गायत्रीसे और अष्टशत ८०० व्याहृतिसे ॥५५ ॥ शतवार त्रीणिपदा० इस मंत्रसे वा एकशतवार तद्विप्रासो० इस मंत्र और अतो

पञ्चामृतं तथा पञ्चपल्लवान्पञ्च वा त्वचा । कषायान् पञ्च वा तस्मिन् कलशे तु विनिःक्षिपेत् ॥ ५२ ॥ त्रिमधुं च तथा सप्त धान्यान्पारदसंयुतान् । तत्रावाह्य गणेशादीँल्लोकपालांस्तथैव च ॥५३॥ वरुणं च गृहे स्थाप्य रायकं नागनायकम् । आवाह्य वेदमन्त्रैश्च पूर्वोक्तेन विधानतः ॥ ५४ ॥ आगमोक्तैश्च मन्त्रैश्च मन्त्रैः पुराणसम्भवैः । गायत्र्याऽष्टशतेनैव व्याहृत्याष्टशतेन वा ॥५५॥ त्रीणिपदेति शतधा तद्विप्रास इति वा तथा । अतो देवा इति तथा दिव्यमन्त्रैः शतत्रयम् ॥५६॥ हुत्वाग्नौ विधिवद्विप्रा वास्तुहोमं ततश्चरेत् । अष्टाधिकं तथा होमं गृहहोमं तथैव च ॥ ५७ ॥ गणपत्यादिमं लोकपालानां होममाचरेत् दिक्पालानां तथा क्षेत्रपालस्यापि विशेषतः ॥५८॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानां होमं मन्त्रञ्च कारयेत् । सुलग्ने सुमुहूर्ते तु शिलास्थापनमाचरेत् ५९॥

देवा० यह जो दिव्यमन्त्र है इससे तीनसौ ३०० वार ॥ ५६ ॥ विधिसे होमको करके हे ब्राह्मणो ! उसके अन्यदेवताओंके निमित्त वास्तुहोमको करे और आठ अधिक शत १०८ होमको और तिसी प्रकार गृहहोमको करे ॥ ५७ ॥ प्रथम गणपतिके निमित्त होमको करे. फिर लोकपाल दिक्पाल और विशेषकर क्षेत्रपालके निमित्त होमको करे ॥ ५८ ॥ दिव्य अंतरिक्ष भूमि इनकेभी होम मंत्रोंसे होमकरे फिर सुंदर लग्न और

सुन्दर मुहूर्तमें शिलाके स्थापनको करे ॥ ५९ ॥ उसके पश्चिमभागमें महाकुम्भके शिरके ऊपर बडे दीपकको रक्खे उसके पूर्वभागमें शल्यक मन्त्रोंको पढे ॥ ६० ॥ हे नन्दे ! तू आनन्द कर । हे वासिष्ठे ! हे प्रजाके हितकारिणी ! इस गृहके मध्यभागमें तू टिक और सब कालमें सुखकी दाता हो ॥ ६१ ॥ हे भद्रे ! तू पुरुषोंको भद्र (कल्याण) की दाता है हे काश्यपनंदिनि ! तू अतुल आयु आरोग्यको कर और सम्पूर्ण शल्योंका निवारण कर ॥ ६२ ॥ हे जये ! तू भार्गवकी पुत्री है इससे प्रजाओंके हितको कर । हे देवी ! आपका यहां स्थापन करता हूं तू संपूर्ण

तत्पश्चिमे महादीपं महाकुम्भशिरोपरि । स्थापयेत्पूर्वभागे च शल्यमन्त्रानुदीरयेत् ॥६०॥ नन्द नन्दय वासिष्ठे वसुभिश्च हित प्रजे । तिष्ठाप्यस्मिन्गृहान्ते त्वं सर्वदा सुखदा भव ॥ ६१ ॥ भद्रे त्वं भद्रदा पुंसां कुरु काश्यपनन्दिनि । आयुरारोग्यमतुलं सर्वशल्यान्निवारय ॥६२॥ जये भार्गवदायादे प्रजानां हितमावह । स्थापयाम्यत्र देवि त्वां सर्वाञ्छल्यान्निवारय॥ ६३ ॥ रिक्ते त्वं रिक्तदोषघ्ने सिद्धिदे सुखदे शुभे । सर्वदा सर्वदोषघ्ने तिष्ठास्मिन्नत्रिनंदिनि ॥ ६४ ॥ अव्यंगे चाक्षते पूर्णे मुनेरंगिरसः सुते । इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं शुभञ्च गृहिणां कुरु ॥ ६५ ॥ ताम्रकुम्भञ्च निक्षिप्य शिलां दीपं तथैव च । गीतवादित्रनिर्घोषं कृत्वा तं पूरयेन्मृदा ॥ ६६ ॥

शल्योंका निवारण कर ॥ ६३ ॥ हे रिक्ते ! तू रिक्त दोषको नाशकरनेवाली है. हे सिद्धिकी दाता और सुखदाता हे शुभे हे सबकालमें सब दोषोंकी नाशक हे अत्रिकी नन्दिनी (पुत्री) ! इस गृहमें तू टिक ॥ ६४ ॥ हे अव्यंगे अर्थात् नाशरहिते हे अक्षते हे पूर्णे हे अंगिरामुनिकी पुत्री हे इष्टके ! तू इष्टको दे और गृहस्थियोंके शुभको कर ॥ ६५ ॥ तांबेके कुम्भको गर्तमें डारे और शिला दीपको भी उसीमें गेरकर गीत और वादित्रके शब्दको करके उस गर्तको मिट्टीसे पूर्ण कर दे ॥ ६६ ॥ शिलाके कुम्भका हृदयपर स्पर्श करके इन मन्त्रोंको उच्चारण करे--हे वास्तुपुरुष हे भूमिशय्यामें रमणके कर्ता हे प्रभो ! आपको नमस्कार है ॥ ६७ ॥ मेरे घरको धन और धान्य आदिसे समृद्ध (पूर्ण) सब कालमें करो. हे नागनाथ हे शल्यके उद्धार करनेमें समर्थ ! आपको नमस्कार है ॥ ६८ ॥ तू वास्तुपुरुष है और विश्वका धारण कर्ता है इससे प्रजाओंका हित कर. हे पृथिवी ! तू लोकोंको धारण करती है हे देवी ! तुझे विष्णुने धारण किया है. हे देवी ! तू मुझे धारण कर और आस

हृदि कृत्य शिलाकुम्भं मन्त्रानेतानुदीरयेत् । नमस्ते वास्तुपुरुष भूमिशय्यारत प्रभो ॥ ६७ ॥ मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा । नागनाथ नमस्तेऽस्तु शल्यस्योद्धरणे क्षम ॥६८॥ वास्तुरूपो विश्वधारी प्रजानां हितमावह । पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वञ्च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥ ६९ ॥ गणपत्यादयो लोका देवा दिक्पालकास्तथा सायुधाः सगणोपेताः शुद्धं कुर्वन्तु मे गृहम् ॥ ७० ॥ इतिमन्त्रपठित्वा तु दद्याद्वाह्यबलिं ततः । राक्षसानां पिशाचानां गुह्य कोरगपक्षिणाम् ॥ ७१ ॥ भूतानां च तथा यक्षगणानां ग्रामवासिनाम् । पूर्वोक्तैरागमैर्मन्त्रैर्विधानेन विधानवित् ॥७२॥ संगृह्णन्तु बलिं सर्वे तृप्ताः शल्यं हरन्तु मे । कुम्भाष्टकानान्तु जलैस्तद्गृहं चाभिषिंचयेत् ॥ ७३ ॥

नको भी पवित्र कर ॥ ६९ ॥ गणपति आदि लोकपाल और देवता दिक्पाल ये सब आयुध (शस्त्र) और गणों सहित होकर मेरे घरको शुद्धकरो ॥ ७० ॥ इन मन्त्रोंको पढकर फिर बलि दे वह बलि राक्षस पिशाच गुह्यक उरग पक्षी इनको दे ॥ ७१ ॥ भूतोंको और यक्षोंके गणोंको, ग्रामके वासी देवताओंको विधिका ज्ञाता आचार्य पूर्वोक्त आगमके मन्त्रोंसे उक्त बलिको दे ॥ ७२ ॥ यह कहै कि, सम्पूर्ण देवता

बलिको ग्रहण करो और तृप्त होकर मेरे शल्यको हरो. आठ कुंभोंके जलसे उस गृहोंको सींचे ॥ ७३ ॥ तीन प्रकारके भेद, उत्पात और दारुण (भयानक) ग्रहके उत्पात ये सब उस घरमें नष्ट हो जाते हैं जिसमें शल्यका उद्धार किया हो ॥७४॥ आचार्यको गौ दे, ऋत्विजोंको दक्षिणा दे, दान और मानसे ज्योतिषी और स्थपतिको संतुष्ट करके ॥ ७५ ॥ अन्योंको भी अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणासे विधिपूर्वक पूजन कर दीन अंधे कृपण और विशेषकर लिंगी अर्थात् ब्रह्मचारी वा संन्यासी ॥ ७६ ॥ गायक और अन्य नट आदिकोंको दक्षिणा दे

भेदत्रयं तथोत्पाता ग्रहपीडाश्च दारुणाः । ते सर्वे नाशमायान्तु शल्योद्धारे कृते गृहे ॥७४॥ आचार्याय च गां दद्यादृत्विग्भ्यो दक्षिणां तथा । दानमानेन संतोष्य दैवज्ञं स्थपतिं तथा ॥७५॥ अन्यांश्च विधिवत्पूज्य दक्षिणाभिः स्वशक्तितः । दीनान्धकृपणेभ्योऽपि लिंगिभ्योऽपि विशेषतः ॥७६॥ गायकेभ्यस्तथान्येभ्योः नटेभ्यो दक्षिणां ततः । दद्यात्स्ववेश्मनि यथाशक्ति विप्रांश्च भोजयेत् ॥७७ ॥ भुञ्जीत बन्धुभिस्सार्द्धं विहरेच्च सुखं ततः । एवं यः कुरुते विप्राः शल्योद्धारं स्ववेश्मनि ॥ ७८ ॥ सुखवान् दीर्घजीवी स्यात्पुत्रान् पौत्रांश्च विन्दति ॥ ७९ ॥ इति वास्तुशास्त्रे शल्योद्धारनिर्णयो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अपनी शक्तिके अनुसार अपने घरमें ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ७७ ॥ फिर बन्धुओंके संग भोजन करे उस मन्दिरमें सुखसे विहार करे, हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार जो मनुष्य अपने घरमें शल्योद्धार करता है ॥ ७८ ॥ वह सुखका भागी और दीर्घजीवी होता है पुत्र और पौत्रोंको प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ इति पंडितमिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते वास्तुशास्त्रे शल्योद्धारनिर्णयो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर गृहोंके वेधनिर्णयको कहता हूँ--अन्धक, रुधिर, कुब्ज, काण, बधिर ॥१॥ दिग्वक्र, चिपिट, व्यंगज, मुरज, कुटिल, कुट्टक, सुत, शंखपालक ॥२॥ विकट, कंक, कैंकर यह पूर्वोक्त सोलह प्रकारका वेध स्थानमें होता है. जो घर छिद्रोंसे हीन हो उसमें अन्धक भेद होता है. जो विच्छिद्र दिशाओंमें हो वह काण होता है ॥ ३ ॥ जिसके अंग हीन हों वह कुब्जक होता है. जिसका द्वार पृथिवीमें हो वह बधिर होता है. छिद्र विकीर्ण (जहां तहां) हों उसे दिग्वक्र और अविपद्रतको रंध्र कहते हैं ॥४॥ तुंग (ऊँचाई) से जो हीन हो वह चिपिट होता है. जिसमें

अतःपरं प्रक्ष्यामि गृहाणां वेधनिर्णयम् । अन्धकं रुधिरश्चैव कुब्जं काणं बधीरकम् ॥ १ ॥ दिग्वक्रं चिपिटश्चैव व्यङ्गजं मुरजं तथा । कुटिलं कुट्टकश्चैव सुतश्च शंखपालकम् ॥ २ ॥ विघटश्च तथा कङ्कं कैङ्करं षोडशं स्मृतम् । अन्धकं छिद्रहीनञ्च विच्छिद्रं दिशि कानकम्॥३॥ हीनाङ्गं कुब्जकश्चैव पृथ्वीद्वारं बधीरकम् । रन्ध्रं विकीर्णं दिग्वक्रं रुधिरश्चाविपद्रतम्॥४॥तुङ्गहीनञ्च चिपिटं व्यङ्गं चानर्थदर्शनम् । पार्श्वोन्नतं च मुरजं कुटिलं तालहीनकम् ॥ ५ ॥ शंखपालं जंघहीनं दिग्वक्रं विकटं स्मृतम् । पार्श्वहीनं तथा कंकं कैङ्करं च हलोन्नतम् ॥ ६ ॥ इत्येते अधमाः प्रोक्ता वर्जनीयाः प्रयत्नतः । अन्धके रोगमतुलं रुधिरेऽतीसारजं भयम् ॥ ७ ॥ कुब्जे कुष्ठादिरोगः स्यात् काणेऽन्धत्वं प्रजायते । पृथ्वीद्वारे सर्वदुःखं मरणं वा प्रजायते ॥ ८ ॥

अनर्थ दीखें उसे व्यंग कहते हैं. जो पार्श्वोंमें उन्नत (ऊंचा) हो वह मुरज होता है. जो तालसे हीन हो वह कुटिल होता है ॥ ५ ॥ जो जंघासे हीन हो वह शंखपाल कहाता है. जो दिशाओंमें वक्र (टेढा) हो वह विकट कहाता है. जिसमें पार्श्वभाग न हो उसे कंक कहते हैं. जो हलके समान उन्नत हो उसे कैंकर कहते हैं ॥६॥ ये पूर्वोक्त घर अधम कहे हैं. ये सब यत्नसे वर्जने योग्य हैं. अन्धक घरमें अतुल रोग होता है. रुधिर नामके घरमें अतीसार रोगका भय होता है॥७॥ कुब्जघरमें कुष्ठ आदि रोग होते हैं, काणे घरमें अन्धे मनुष्य पैदा होते हैं, पृथ्वीद्वारमें सब दुःख

वा मरण होता है ॥ ८ ॥ दिग्वक्रमें गर्भका नाश होता है. चिपिटमें नीचोंकी संगति, व्यंगघरमें व्यंगता (अंगहीनता) मुरजमें धनका अभाव. कुटिलमें क्षय (नाश) होता है ॥ ९ ॥ कुट्टकमें भूतदोष होता है. सुप्तमें गृहके स्वामीका मरण होता है. शंखपालमें कुत्सित रूप होता है. विकटमें सन्तानका नाश होता है ॥ १० ॥ कंकघरमें शून्यता, कैंकरमें स्त्रीकी हानि और प्रेष्यता (दासभाव) होती है. कुलिश (बिजली) से तोडा हुआ काष्ठ जो घरके भीतर होय तो मरण होता है ॥ ११ ॥ अग्निसे दग्ध काष्ठ घरमें होय तो निर्धनता होती है संता

दिग्वक्रे गर्भनाशः स्याच्चिपिटे नीचसङ्गतिः । व्यङ्गे च व्यङ्गता नैःस्वं मुरजे कुटिले क्षयः ॥९॥ कुट्टके भूतदोषः स्यात्सुप्ते गृहपतेः क्षयः । शङ्खपाले कुरूपं स्याद्विकटेऽपत्यनाशनम् ॥ १० ॥ कङ्के शून्य कैङ्करे च स्त्रीहानिः प्रेष्यता भवेत् । कुलिशेनाहते दारौ गृहान्तस्थे मृतिर्भवेत् ॥११॥ वह्निदग्धे निर्धनत्वमपत्यादिक्षयो भवेत् । विरूपा जर्जरी जीर्णा अग्रहीनाऽर्द्धदग्धिताः ॥१२॥ अङ्गहीनाश्छिद्रहीनाश्छिद्रयुक्ताश्च वर्जयेत् । वक्रे च परदेशः स्याच्छुष्कार्द्धे स्वामिना भयम् ॥ १३ ॥ व्यङ्गे रोगभयं घोरं सर्वच्छिद्रे मृतेर्भयम् पाषाणान्तर्गतं गेहं शुभं सौख्यविवर्द्धनम् ॥१४॥ गेहमध्यस्थितं यच्च सर्वदोषकरं भवेत् । विस्तीर्णमानं यद्गेहं उदूर्ध्वं परिकीर्तितम् ॥ १५ ॥ शेषांश्चैव त्रिभागं तु तद्गृहं चोत्तमं स्मृतम् । तुङ्गमूनाधिकं रोगभयं करोति विस्तृतम् ॥ १६ ॥

नका नाश होता है. विरूप, जर्जर, जीर्ण, अग्रभागसे हीन, अर्द्धदग्ध ॥ १२ ॥ अंगसे हीन, छिद्रहीन, छिद्रसे युक्त जो काष्ठ हों उनको वर्जदे. वक्रकाष्ठ होय तो परदेशमें वास होता है,अर्द्धशुष्कमें स्वामीको भय होता है ॥१३॥ व्यंगमें घोर रोगका भय होता है. सर्वच्छिद्रमें मृत्युका भय कहा है, जो घर पाषाणोंके अन्तर्गत है वह शुभका दाता और सुखका वर्द्धक होता है ॥ १४ ॥ गृहके मध्य भागमें स्थित पाषाण होय तो सम्पूर्ण दोषोंको करता है. जो घर विस्तीर्ण मान है उसको ऊर्ध्व कहते हैं ॥ १५ ॥ जिसकी ऊँचाई घरकी भूमिके त्रिभागकी हो वह घर उत्तम कहा है और इससे न्यून वा अधिक जिसकी ऊंचाई हो वह विस्तार रोग भयको करता है ॥ १६ ॥ त्रिकोण जो घर है वह धनसे हीन शीघ्र ही होता है, दीर्घ (लम्बा) घर निरर्थक होता है, इसके अनन्तर अन्य भी बाह्य देशमें स्थित दश प्रकारके वेधोंका कहता हूं ॥१७॥ कोण दृक छिद्र छाया ऋतु वंश अग्र भूमि संघातका दाता जो उन दोनोंका हों ये बाह्यके दश वेध कहे हैं ॥ १८ ॥ जिस घरकी कोणके अग्र भागमें अन्य घर हो वा जिसके कोणके संमुख अन्य कोण हो और तैसेही घरके अर्द्ध भागसे मिली हुई अन्य घरकी कोण होय तो वह घर शुभका दाता

त्रिकोणं निधनं शीघ्रं गृहं दीर्घं निरर्थकम् । अथान्यान्दशवेधांश्च कथयामि बहिःस्थितान् ॥ १७ ॥ कोणदृक्छिद्रकछायाऋजुवंशाग्रभूमिकाः । संघातदन्तयोश्चैव भेदाश्च दशधा स्मृताः ॥ १८ ॥ कोणाग्रे वान्यगेहे च कोणात्कोणान्तरं पुरः । तथा गृहार्धसंलग्नं कोणं न शुभदं स्मृतम् ॥१९॥ कोणवेधे भवेद्व्याधिर्धननाशोऽरिविग्रहः । एकं प्रधानद्वारस्याभिमुखेऽन्यत्प्रधानकम् ॥२०॥ द्वारं गृहाच्च द्विगुणं तादृग्वेधः प्रचक्षते । दृष्टिवेधे भवेन्नाशो धनस्य मरणं ध्रुवम् ॥ २१ ॥ समक्षुरं क्षुद्रवेधे पशुहानिकरं परम् । द्वितीये तृतीये यामे छाया यत्र पतेद्गृहे॥ २२॥छायावेधं तु तद्गेहं रोगदं पशुहानिदम् । आदौ पूर्वोत्तरा पंक्तिः पश्चाद्दक्षिणपश्चिमे॥२३॥

नहीं होता है ॥ १९ ॥ कोणवेधघरमें व्याधि होती है, धनका नाश और शत्रुओंके संग विग्रह होता है, प्रधान एक द्वारके संमुख प्रधान अन्य घरका द्वार हो ॥ २० ॥ घरसे दूना द्वार हो उसको भी गृहवेध कहते हैं दृष्टिवेधमें धनका नाश और निश्चयसे मरण होता है ॥२१॥ समान क्षुद्र (छोटा) जो घर है वह क्षुद्रवेध होनेपर अत्यन्त पशुहानियोंको करता है, जिस घरमें दूसरे वा तीसरे पहरमें अन्य घरकी छाया पडे॥२२॥ छाया वेधका वह घर है वह घर रोग और पशु हानिको देता है और जिस घरमें पहिली गृहोंकी पंक्ति पूर्व उत्तरको हो और पिछली पंक्ति

दक्षिण पश्चिमको हो ॥ २३ ॥ वास्तुके मध्यमें जिसकी समान भित्तिहों वह घर शुभदायी कहा है. विषम घरमें अर्थात् जो एकतरफ लंबा और एक तरफ न्यून हो उसमें अनेक दोषोंका दाता ऋजुवेध होता है ॥ २४ ॥ ऋजुवेधवाले घरमें महान् त्रास होता है इसमें संशय नहीं है और जिस घरके वंशाके आगे वंश हो वा आगे बाह्यकी भित्ति हो ॥ २५ ॥ वह वंशवेध जिस घरमें हो उसमें वंशकी हानि होती है जिस घरकी उक्षों (भुजा) का संयोग यूपके अग्रभागमें होजाय अर्थात् स्तंभके सन्मुख हो ॥ २६ ॥ उसको उक्षवेध जाने उसमें और कलह होता है. जिस

वास्त्वन्तरे भित्तिसमं शुभदं तत् प्रकीर्तितम् । विषमे दोषबहुलमृजुवेधं प्रजायते॥२४॥ऋजुवेधे महात्रासो जायते नात्र संशयः । वंशाग्रे चान्यवंशः स्यादग्रे वा भित्तिबाह्यगाः ॥२५॥ तद्वंशे वेधयेद्वेयं वंशहानिः प्रजायते । उक्षयोर्यत्रसंयोगो यूपाग्रेषु प्रजायते ॥ २६ ॥ उक्षवेधं विजानीयाद्विनाशः कलहो भवेत् । पूर्वोत्तरे वास्तुभूमौ विपरीतेऽथ निम्नका ॥ २७ ॥ उच्चवेधो भवेन्नूनं तद्वेधे न शुभप्रदम् । द्वयोर्गेहान्तरगतं गृहं तच्छुभदायकम् ॥ २८ ॥ गृहोच्चादर्द्धसंलग्ने तथा पाराग्रसंस्थितम् । संघातमेलनं यत्र गेह योर्भित्तिरेकतः ॥२९॥ विधिवश्यं शीघ्रमेव मरणं स्वामिनोर्द्वयोः । पर्वतान्निःसृतं चाश्मदन्तवद्भित्तिसम्मुखम् ॥ ३० ॥ तद्दन्तवेध मित्माहुः शोकं रोगं करोति तत् । अधित्यकासु यद्गेहं यद्गेहं पर्वतादधः ॥ ३१ ॥

वास्तुकी पूर्वोत्तरकी भूमि विपरीत हो वा निम्न (नीची) हो ॥ २७ ॥ वह उच्चवेध होता है वह शुभदायी नहीं होता है. दो घरोंके अन्त र्गत (मध्यमें) जो घर है वह शुभदायी होता है ॥ २८ ॥ जिस घरकी ऊँचाईसे आधे भागपर दूसरा घर हो और तैसेही पारके अग्रभागमें स्थित हो. जिस घरमें दो घरोंकी भित्ति एक स्थानमें हो वह संघातमें होता है ॥ २९ ॥ उन घरोंमें विधिवशसे शीघ्रही दोनों स्वामियोंका मरण होता है, पर्वतसे निकासा हुआ पत्थर जिसकी भित्तिके संमुख हो ॥ ३० ॥ उसको दन्तवेध कहते हैं वह शोक और रोगको करता है जो घर पर्वतकी भूमिके ऊपर हो वा जो घर पर्वतके नीचे भागमें हो ॥ ३१ ॥ जो घर पत्थरोंसे मिला हो वा पाषाणोंसे युक्त घोर हो वा जो धाराके अग्रभागमें स्थित हो वा पर्वतके मध्यमें मिला हो॥ ३२ ॥ जो नदीके तीरमें स्थित हो, दो शृंगों (शिखर)के अंतर्गत हो जो घर भित्ति योंसे भिन्न हो, जो सदैव जलके समीप हो ॥ ३३ ॥ जिसका द्वार रोताहुआ हो अर्थात् उदासीन हो जिसमें काक और उल्लुओंका निवास हो, जो कपाट और छिद्रोंसे हीन हो, जिसमें शशेका शब्द हो ॥ ३४ ॥ जिसमें अजगर सर्पका निवास हो, जो वज्र और अग्निसे दूषित हो

यद्गेहं चाश्मसंलग्नं घोरं पाषाणसंयुतम् । धाराग्रसंस्थितं वापि संलग्नान्तरपर्वते ॥३२॥ नदीतीरस्थितं वापि शृङ्गान्तरगतं तथा । भित्तिभिन्नं तु यद्गेहं सदा जलसमीपगम् ॥ ३३ ॥ रुदन्तं द्वारशब्दार्थं काकोलूकनिवासितम् । कपाटहीनं च रात्रौ च शश नादितम् ॥३४॥ स्थूलसर्पनिवासं च यच्च वज्राग्निदूषितम् । जलस्रवान्वितं भीरु कुब्जं काणं बधीरकम् ॥३५॥ यच्चोपघातादि भवं ब्रह्महत्यान्वितं तथा । शालविहीनं यच्चापि शिखाहीनं तथैव च ॥ ३६ ॥ भित्तिबाह्यगतैर्दारुकाष्ठै रुधिरसंयुतम् । कृतं कण्टकिसयुक्तं चतुष्कोणं तथैव च ॥ ३७ ॥ श्मशानदूषितं यच्च यच्च चैत्यनिकास्थितम् । वासहीनं तथा म्लेच्छचाण्डालैश्चाधि वासितम् ॥ ३८ ॥ विवरान्तर्गतं वापि यच्च गोधाधिवासितम् । तद्गृहे न वसेत्कर्त्ता वसन्नपि न जीवति ॥ ३९ ॥

जो जलके स्राव (बहाव) से युक्त हो वा कुब्ज काणा बधिर हो ॥ ३५ जो उपघात (लडाईसे मरण)से युक्त हो, जो ब्रह्महत्यासे युक्त हो जो शालासे रहित हो वा शिखासे विहीन हो ॥ ३६ ॥ भित्तीके बाह्यके जो दारु काष्ठ हैं उनसे जो रुधिर संयुक्त हो जो कांटोंसे युक्त चारों कोणोंमें हो ॥ ३७ ॥ जो श्मशानसे दूषित हो वा जो चैत्य (चबूतरा) पर स्थित हो, जो मनुष्योंके वाससे हीन हो, जिसमें म्लेच्छ चांडाल वसे हों॥३८॥ जो घर छिद्रोंके अन्तर्गत हो, जिसमें गोधाका निवास हो इस पूर्वोक्त सब प्रकारके घरमें कर्ता न वसे और वसे तो न जीवै ॥ ३९ ॥

॥ ४० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य इन पूर्वोक्त प्रकारके घरोंको वर्जदे, अन्य घरमें लगेहुए काष्ठको अन्य गृहमें न लगावे ॥ ४० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य पुराने काष्ठोंसे घरको न बनवावे और बनवावे तो मरण और संपदाओंके नाशको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ जीर्ण घरमें नवीन काष्ठ श्रेष्ठ होता है और नवीन घरमें जीर्ण (पुराना) काष्ठ श्रेष्ठ नहीं होता है. जिस स्थानके घर पूर्व उत्तरमें नीचे हों और दक्षिण पश्चिममें ऊंचे हों ॥ ४२ ॥ जिसकी संपूर्ण दिशा तिरछी हों जिसके भागमें पीडाके दाता घर हो जो दक्षिणको एक योजन ऊंचा हो पश्चिममें अर्द्धयोजन

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वर्जयेन्मतिमान्नरः । अन्यवेश्मस्थितं दारु नैवान्यस्मिन्प्रयोजयेत् ॥ ४० ॥ ना गृहं कारयेद्धीमान्पुराणैर्न च दारुभिः । कुर्वन्नाप्नोति मरणं संपदां नाशमेव च ॥ ४१ ॥ जीर्णे तु नूतनं शस्तं नो जीर्णं नूतने शुभम् । पूर्वोत्तरे नीचगता उच्चस्था दक्षिणापरे ॥ ४२ ॥ तिर्यग्गताः सर्वदिशाभागे पीडावहा गृहाः । दक्षिणे योजनमुच्चं पश्चिमे चार्द्धयोजनम् ॥४३॥ तदर्द्ध मुत्तरे चैव तस्यार्द्धं पूर्वदिक्स्थितम् । एतद्वेधं नृपाणां च गृहाणां कथितं द्विजाः ॥ ४४ ॥ विशेषेण द्विजातीनां प्रमाणं कथ्यतः । पूर्वोत्तरे नीचभागे शतपादान्वितं तथा ॥४५॥ दण्डानां पश्चिमे याम्ये द्विशतं सार्द्धसंयुतम् । ऊर्ध्वीभूतः पुमान्यस्य गेहाद्गेहांतरं यदि ॥ ४६ ॥ दक्षिणस्थं प्रपश्येत तद्वेधं च विनिर्दिशेत् । उच्चस्थोप्यथ नीचस्थः सदा याम्यगृहं त्यजेत् ॥४७॥

ऊंचा हो ॥ ४३ ॥ उससे आधा ऊंचा उत्तरमें हो, उससे आधा पूर्व दिशामें हो, हे द्विजो ! यह वेध राजाओंके घरोंका मैंने कहा है ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर विशेषकर द्विजातियोंके घरोंका प्रमाण कहताहूं--पूर्व उत्तरके नीचे भागमें १७० पादोंसे जो युक्त हो ॥ ४५ ॥ पश्चिम और दक्षिणमें जिसकी लम्बाई सार्द्धद्विशत (अढाई सौ) हो, जिसके ऊपरके भागमें स्थित मनुष्य एक घरसे यदि दूसरे घरको ॥ ४६ ॥ दक्षिणमें स्थित हो उसको देखसके वह वेध कहा है, उच्च भागमें स्थित हो वा नीचे भागमें स्थित हो परंन्तु दक्षिणके घरको सदैव त्यागदे ॥४७॥ उसमें वसे तो अवस्था पुत्र कलत्र ये शीघ्र नष्ट होते हैं, पूर्व उत्तरमें जो घर नीचा है वह जलके समीप भागमें होय तो ॥ ४८ ॥ मध्यकी भूमि दोषकी दाता नहीं होती, इतने ये दोनों घर दीखनेके योग्य हों, जो घर ऊंचे भागमें स्थित पूर्वदिशाके भागमें बीस दंड हों वह भी श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥ अन्यजातिका मनुष्य राजाके मंदिरमें न वसे. सौम्य (उत्तर) भागमें जिसके तीस दंड और पश्चिममें चालीस दण्डहों ॥५०॥ जिसकी दक्षिणदिशामें पंचाशत् ५० दण्ड हों और नीचे भागमें स्थित हों, प्रासादकी वीथी (गली) घर और अग्नि ईशान और नैर्ऋत

आयुःपुत्रकलत्राणि यतः शीघ्रं विनश्यति । पूर्वोत्तरे गृहेनीचे भवेद्यादौ जलान्तिके ४८॥मध्यभूमिर्न दोषाय यावद्दृष्टिपथेऽनयोः । तुङ्गस्थे पूर्वदिग्भागे दण्डान्विंशतिसम्मितान् ॥ ४९ ॥ न चान्यजातीयरो नृपसद्म वसेन्नरः । सौम्यभागे तथा त्रिंशच्चत्वारिंशच्च पश्चिमे ॥५०॥ याम्ये पञ्चाशत्संख्यानि दण्डानि नीचसंस्थितः। प्रासादवीथी च तथा गृहं च आग्नेयवायव्यतथेशरक्षे । त्रिकोणवेधः कथितः क्रमेण सुतार्थिना तत्र विवर्जनीयाः ॥५१॥ आग्नेयं दृष्टितो विद्धं वायो द्विगुणभूमिषु नैर्ऋत्ये दृक्पथं यावदीशाने त्रिगुणं गृहात ॥५२॥ एतन्नृपाणां कथितं वर्णानामनुपूर्वशः । पूर्वाशादिक्रमेणैव ब्रह्मणादिक्रमेण च । पञ्चाशद्धनुषान्नीचैर्विधेयं द्विजमन्दिरात् । तथा सौम्यजनो नीचो दण्डान् सप्ततिसंमितान् ॥ ५३ ॥

कोणमें जिसके वेध हों यह त्रिकोणवेध संक्षेपसे कहा. पुत्रका अभिलाषी मनुष्य इसको विशेषकर वर्जदे ॥ ५१ ॥ अग्निकोणका घर दृष्टिसे विद्ध होता है. वायुकोणका घर द्विगुणभूमियोंमें विद्ध होता है. नैर्ऋत्यमें इतने दृष्टिके मार्गमें हो और ईशानमें गृहसे तिगुनगृहसे वेध होता है॥५२॥ यह राजाओंके घरोंका वेध वर्णोंके क्रमसे कहा वह वेध पूर्व दिशाआदिके क्रमसे ब्राह्मण आदिकोंके क्रमसे कहा, द्विजोंके मंदिरसे पचाश धनुष नीचा अंत्यजातियोंको मंदिर बनवाना और सौम्य स्वभावका नीचजन सत्तरदंड नीचा घर बनवावे ॥ ५३ ॥

वरुणकी दिशामें स्थित घर ऊंचाईमें प्रांतके दण्डभर पुरके प्रमाणसे न्यून दक्षिणदिशाका घर ऊंचाईमें बीस दण्डभर न्यून होना चाहिये ॥५४॥ अब संक्षेपसे शूद्रोंके पुरसे लेकर पुरको कहता हूँ-प्रांतभागमें दश दण्डपर्यंत पूर्वभागमें नीचा हो ॥ ५५ ॥ नीचे स्थानमें स्थित घरके उत्तर भागमें द्वादश १२ दण्ड होने चाहिये. यदि पश्चिमका घर उच्च भूमिमें होय तो तीस दण्ड होते हैं ॥५६॥ दक्षिण भागमें सौ दण्डपर्यंत गृहोंको वर्जदे अर्थात् न बनवावे. विपरीत भागमें बुद्धिमान मनुष्य पूर्वोक्तसे पादहीन दण्डोंको त्यागकर ॥ ५७ ॥ सौ दण्डपर्यंतमें पुरवासियोंको

जलाशासंस्थितोऽप्युच्चे प्रान्तदण्डान् हरेत् पुरात् । याम्योच्चस्थो हरेद्गेहं दण्डान् विंशतिसम्मितान् ॥ ५४ ॥ शूद्राणां तु समासेन कथयामि पुरात्पुरम् । दशदण्डाणि पर्यन्तं प्रयान्ते पूर्वनीचगम् ॥ ५५ ॥ उत्तरे द्वादशं दण्डं नीचस्थानस्थितस्य तु । पश्चिमे त्रिंशद्दण्डानि यदि चेदुच्चभूमिषु ॥५६॥ दक्षिणे शतदण्डानि गृहाणि परिवर्जयेत् । वैपरीत्ये पादहीनान् दण्डान्सन्त्यज्य बुद्धिमान् ॥ ५७ ॥ शतं दण्डानि पर्यन्तं पीड्यते पुरवासिनाम् । समभूमिषु सन्त्याज्यो वेधोऽयं द्विजपुङ्गवैः ॥ ५८ ॥ दक्षिणेऽन्तोदिग्विषये भवनवरेऽर्थक्षयोऽङ्गनादोषाः । सुतमरणं प्रेक्षत्वे भवति सदा तत्र वासिना पुंसाम् । गृहं गृहार्द्धं च तथा चतुर्थी भावो भवेद्दिग्विषये स्थितो वा । ऊर्ध्वं च नीचे यमदिक्स्थितस्य गेहं च चाग्रे प्रभवेच्च दोषः ॥ ५९ ॥

पीडा होती है. ये द्विजोंमें श्रेष्ठोंको समान भूमिमें वेध त्यागने योग्य हैं ॥ ५८ ॥ जिस भवनवर (श्रेष्ठ) का दिशाओंके विषयमें दक्षिणमें अन्तहो उसमें धनका क्षय और स्त्रियोंमें दोष होता है प्रेक्षत्व (दीखने योग्य) जो अन्य घरसे हो उस घरमें बसनेवाले पुरुषोंके पुत्रोंका मरण होता है. पूरा घर वा घरका अर्द्ध भाग यह चौथा भाव यदि दिशाओंके विषयमें स्थित हो और दक्षिण दिशामें स्थित घरके ऊंचे वा नीचे भागमें आगे दूसरा घर होय तो दोष होता है ॥ ५९ ॥ जैसे अमावास्यामें उत्पन्न हुई कन्या और पुत्र ये योगसे पिताक मरणको करते हैं. ऐसे ही प्रतापका अभिलाषी मनुष्य दक्षिण दिशाके घरको त्याग दे ॥ ६० ॥ जैसे रक्तकेशी लम्बोष्ठी पिंग (पीले) नेत्री कृष्ण तालुका जो कन्या है वह शीघ्र भर्ताको नाश करती है. इसी प्रकार याम्यदिशाके घरसे पुर भी नष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥ जैसे आलस्यसे देह, कुपुत्रसे कुल और दरिद्रसे जन्म वृथा होते हैं. ऐसे ही याम्यगृहसे पुर नष्ट होता है ॥ ६२ ॥ जहां प्रथम उत्तर दिशामें घर बनाये जांय और दक्षिणदिशामें पीछे बनाये जांय ऐसा घर जहां हो वहां पुत्र और दारा आदिका नाश होता है ॥ ६३ ॥ ईशानमें छाग (बकरा) का स्थापन

अमावास्योद्भवा कन्या पितृहायोगतः सुतः । तथा याम्यं गृहं त्याज्यं नरेण भूतिमिच्छता ॥६०॥ रक्तकेशी च लम्बोष्ठी पिङ्गाक्षी कृष्णतालुका । भर्तारं हन्ति सा क्षिप्रं तथा याम्यगृहात् पुरम् ॥६१॥ आलस्येन यथा देहं कुपुत्रेण यथा कुलम् । दरिद्रेण यथा जन्म तथा याम्यगृहात्पुरम् ॥ ६२ ॥ उदीचीं विन्यसेदादौ पश्चाद्याम्यं तु विन्यसेत् । तद्गृहं विद्यते तत्र पुत्रदारादिनाशनम् ॥६३॥ ईशाने विन्यसेच्छागं न च्छागः सिंहभक्षकः । आग्नेयस्थं गृहं काकं वायव्यस्थं च श्येनकम् ॥ ६४ ॥ काकं च भक्षयेदादौ पश्चान्नैर्ऋत्यदिक्कृतम् । छागसदृशमीशाने सिंहनाम्ना तु नैर्ऋते ॥६५॥ सिंहो भक्षयते श्येनं न काकः श्येनभक्षकः । आग्नेयादि क्रमेणैव अन्त्यजा वर्णसङ्कराः ।६६॥ज्ञातिभ्रष्टाश्च चौराश्च विदिक्स्था नैव दोषदाः ।वैपरीत्येन वेधःस्यात्तद्गृहाणां:विरोधतः॥६७॥

करे. छाग सिंहका भक्षण नहीं कर सकता अग्निकोणका घर काक होता है. वायव्यदिशामें स्थित घर श्येन होता है ॥ ६४ ॥ वह श्येन प्रथम काकको भक्षण करता है। पीछे नैर्ऋत्य दिशाके कृत्यको बनवावे. ईशानमें भी छागके समान चिह्न बनवावे. नैर्ऋत्यका घर सिंहके नामसे होता है ॥ ६५ ॥ सिंह श्येनको भक्षण करता है, काक श्येनको भक्षण नहीं कर सकता. आग्निकोण आदिके क्रमसे अन्त्यज और वर्णसंकरोंको बनावे ॥ ६६ ॥ जातिसे भ्रष्ट (पतित) वा चौर हैं वे विदिशाओंमें स्थित होयँ तो दोषदायी नहीं होते इससे विपरीत भावसे

स्थित होंय तो उनके गृहोंके विरोधसे दोष होता है ॥ ६७ ॥ घरसे उत्तरदिशामें द्विगुण भूमि और पूर्वमें घरके समान भूमि और पश्चिममें तिगुनी भूमि और दक्षिणमें एक कोशभर भूमि रिक्त (खाली) श्रेष्ठ कही है ॥ ६८ ॥ जो घर मेखलापर स्थित हो जो द्वारके संमुख हो वह घर यदि सौम्य और उत्तरदिशामें स्थित होय तो शुभ नहीं कहा ॥ ६९ ॥ दश हाथकी वा घरके चतुर्थांशकी मेखला होती है. शुभका अभिलाषी पुरुष नगरसे दूनी भूमिको त्याग दे ॥ ७० ॥ अन्यथा नगरको बनवावे तो उसमें वेधको देखे जिस मार्गसे मरेहुए मनुष्य यमलोकको

उत्तरे द्विगुणा भूमिः समा भूमिश्च पूर्वके । पश्चिमे त्रिगुणा भूमिः क्रोशमेकं तु दक्षिणे ॥ ६८ ॥ मेखलासंस्थितं गेहं द्वारस्याभिमुख च यत् । तद्गृह न शुभं प्रोक्तं यदि सौम्योत्तरे स्थितत् ॥६९॥ दशहस्ता मेखला स्याच्चतुर्थांशेन वा गृहात् । नगराद् द्विगुणा भूमिः परित्याज्या शुभेप्सुना ॥७०॥ नगरं कारयेच्चान्यत्तत्र वेधं विनिर्दिशेत् । यस्मिन्मार्गे जनास्सर्वे मृता यांति पितृक्षयम् ॥७१॥ मार्गः स एव विज्ञेयः शेषा देशांतर प्रति । गृहभित्तिषु ये लग्नास्ते गृहा गृहिणां सदा ॥७२॥ भयदाः पुत्रसन्तापकारकास्तत्र कारयेत् । यथा याम्यं तथा वायुं यथा वायुं तथा उदक् ॥७३॥ यथा उदक्तथा पूर्वं फलसाम्यं प्रकीर्तितम् । आकर्षयेद्यथा चापमारुह्य भवनं नरः॥७४॥ विलोकयति बाणेन लक्ष्यवत्तं भिनत्ति सः । मूलात्तदीशकाष्ठांतं जलेनापूरितं स्थलम् ॥७५॥

जाते हैं ॥ ७१ ॥ वही मार्ग जानना. शेष मार्ग देशांतरोंके होते हैं. जो गृहस्थियोंके घर घरोंकी भित्तियोंसे मिलेहुए हैं ॥ ७२ ॥ वे भयके दाता और पुत्रोंको दुःखके दाता होते हैं इससे जैसा घर याम्य (दक्षिण) में बनावे वैसाही वायु (पश्चिम) में बनावे. जैसा वायुदिशामें हो वैसाही उत्तरदिशामें बनवावे ॥ ७३ ॥ जैसा उत्तरमें हो तैसाही पूर्वमें बनवावे तो साम्य (इकसा) फल कहा है. जैसे--मनुष्य भवन पर चढकर धनुष्यका आकर्षण (खींचना) करसके ॥ ७४ ॥ बाहिरके मनुष्योंको देखसके वा बाणसे लक्ष्यवालेका भेदन करसके और मूलसे उसके ईश (स्वामी) की दशापर्यंत स्थल जलसे भरा हुआ हो ॥ ७५ ॥ जो कहीं भी छिद्रमें विलीन (छिपा) न हो ऐसे स्थलके मध्यका घर दोषदायी नहीं होता. कूप उद्यान प्रपा वापी तडाग और जलाशय ॥ ७६ ॥ मन्दिर देवस्थान चैत्य प्राकार तोरण इनमें निरन्तर वास्तु वसता है उनके मध्यमें स्थित घर शुभ होता है ॥ ७७ ॥ दक्षिण उत्तरमें तैसेही पश्चिम पूर्वमें इन चारोंमें जहां मार्गोंका मेल हो उस चतुष्पथ (चौराहा) कहते हैं ॥ ७८ ॥ पहिला घर दक्षिणभागमें स्थित हो, पश्चिमका घर उत्तर भागमें स्थित हो इनके मध्यस्थानमें किया हुआ जो

न विलीनं क्वचिद्रन्ध्रे तदन्तस्थं न दोषकम् । कूपोद्यानप्रपावापीतडागे च जलाशये ॥ ७६ ॥ मंदिरे देवसदने चैत्ये प्राकारतोरणे । सततं वसते वास्तु तन्मध्यस्थं गृहं शुभम् ॥७७॥ दक्षिणोत्तरयोश्चैव तथा पश्चिमपूर्वयोः । मार्गयोर्मेलनं यत्र तच्चतुष्पथमीरितम् ॥७८॥ आदौ गृहं दक्षिणभागसंस्थं पश्चात्तथोत्तरम् । मध्यस्थानकृतं गेहं न दुष्यति कदाचन॥७९॥तथैव पश्चिमे पूर्वं कृतमध्यगतं गृहम् । तथैव सुखदं प्रोक्तं सदनं पश्चिमे स्थितम् ॥८०॥विषमे न भवेद्वेधं न वेधं च नतोन्नते । गृहस्य दक्षिणे भागे कूपो दोषप्रदो मतः ॥ ८१ ॥ अपत्यहानिर्भूनाशस्त्वथवा रोगमद्भुतम् । अदर्शनेन दीपारे दुरे वा समभूमिषु ॥ ८२ ॥ न वेधन्ते गृहाः सर्वे यथोक्तदिशि संस्थिताः । अश्वत्थश्च प्लक्षवटोदुम्बराश्च क्रमेण च ॥ ८३ ॥

घर है वह कदाचित्भी दूषित नहीं होता ॥ ७९ ॥ तैसेही पश्चिम और पूर्व घरोंके मध्यमें गत जो घर है वहभी तिसी प्रकार सुखदाता है तैसेही पश्चिमदिशामें स्थित सदन (घर) सुखदायी होता है ॥ ८० ॥ विषम घरमें वेध नहीं होता और नतोन्नत (ऊंचे नीचे) में वेध नहीं होता. घरके दक्षिणभागमें कूप दोषका दाता माना है ॥ ८१ ॥ होय तो सन्तानकी हानि, भूमिका नाश अथवा अद्भुत रोग होता है. दीपक और पंक्तिका दर्शन न हो वा सम भूमियोंके दूर हो तो ॥ ८२ ॥ संपूर्ण घर चाहै पूर्वोक्त दिशाओंमें स्थित हो वेधको प्राप्त नहीं होत. पीपल

पिलखन वट और गुलर ये चारों वृक्ष क्रमसे ॥ ८३ ॥ पूर्व आदि दिशाओंमें होंय तो वेध होता है यह पूर्व समयके आचार्य जानते हैं. राज वृक्ष निंब आम्र और केला ॥ ८४ ॥ ये वृक्ष पूर्व आदि दिशाके क्रमसे होंय तो वेध करते हैं, आग्नेय आदि विदिशाओंके क्रमसे दूधवाले वृक्ष और कदम्ब ॥ ८५ ॥ कण्टक वृक्ष और केलेके स्तम्ब होंय तो ये फलके वृक्ष वेध करते हैं पूर्व दिशाके भागमें विवर (छिद्र) हो और दक्षिणमें मठ मन्दिर हो ॥ ८६ ॥ पश्चिममें कमलों सहित जल हो, उत्तरमें खाई हो, पूर्वमें फलवाले वृक्ष हों और दक्षिणमें दूधके वृक्ष हों॥८७॥

पूर्वादिदिक्षु वेधः स्यात्सर्वेषां प्राक्तना विदुः । राजवृक्षं तथा निम्बं चाम्रकं कदलीफलम् ॥ ८४ ॥ पूर्वादिक्रमयोगेन वेधन्त्येतद् द्रुमांस्तथा । आग्नेयादिक्रमेणैव क्षीरिणोऽथ कदम्बकाः ॥८५॥ कण्टकाः कदलीस्तम्भा वेधन्ते च फलद्रुमाः । विवरं पूर्वदिग्भागे दक्षिणे मठमन्दिरम् ॥ ८६ ॥ पश्चिमे पौष्करं तोयं खातमुत्तरसंज्ञके । पूर्वेण फलिनो वृक्षाः क्षीरवृक्षाश्च दक्षिणे ॥ ८७ ॥ पश्चिमे जलजा वृक्षा रिपुतो भयदायकाः । क्षीरिणश्चार्थनाशाय फलिनो दोषदा मताः । दशदण्डानि पर्यन्तं पीडयन्ते पुरवासिनाम् ॥ ८८ ॥ कलहं चाक्षिरोगं च व्याधिशोकं धनक्षतिः ॥८९॥ वीथ्यन्तरेण दोषः स्यान्न दोषं मार्गमध्यगम् । विदिक्स्थं नैव वेधं तु न वेधं दूरतः सदा ॥ ९० ॥ नीचस्थाने भवेद्वेधः कोणवेधस्तथैव च । भित्त्यन्तरे न दोषः स्यान्न दोषश्चैत्यमध्यमे ॥९१॥

पश्चिममें जलमें उत्पन्न वृक्ष हों ये सब शत्रुओंसे भयको देते हैं दूधवाले अर्थको नष्ट करते हैं. फलवाले दोषको देते हैं, दश दण्डपर्यंत पुरके वासियोंको पीडा देते हैं ॥ ८८ ॥ कलह नेत्ररोग व्याधि शोक और धनके नाशको करते हैं ॥ ८९ ॥ बीथिके अन्तर (मध्यम) में दोष होता है, मार्गके मध्यमें दोष नहीं होता विदिशाओंमें स्थित हो और दूरपर होय तो सदैव वेध नहीं है ॥ ९० ॥ नीचेके स्थानमें वेध होता है, कोणमें भित्तिके मध्यमें दोष नहीं और न चैत्यके मध्यमें दोष होता है ॥ ९१ ॥

कमलोंके मध्यमें और बाणघातकमें दोष नहीं है, विकोणोंमें और न फलके वृक्षमें दोष है ॥९२॥ नीच जातियोंमें दोष नहीं है, न भग्न (टूटे) मन्दिरमें दोष है, चौराहेके अन्तमें दोष नहीं, न जीर्ण गृहोंके मध्यमें दोष है ॥९३॥ अत्यन्त ऊंचा और अत्यन्त नीचा और मध्यमें विषम लंघन जिसमें हों और मध्यमें जहां जल और पर्वत हों इनमें भी वेधका दोष नहीं होता ॥ ९४ ॥ जिस मन्दिरके मध्यमें बेल आम अनारके वृक्ष लगाये हुए हों उसमें भी वेधका दोष नहीं है; यह सत्य बात ब्रह्माके मुखसे सुनी है ॥ ९५ ॥ यदि दोष हो--छठे वर्षमें स्वामी मरता है, नववें

न दोषः पुष्करान्तस्थं न दोषो बाणघातके । न दोषं तु विकोणे तु न दोषं फलवृक्षके ॥९२॥ न दोषं नीचजातेषु न दोषं भग्न मन्दिरे । चतुष्पथान्ते न भवेद्वेधो जीर्णगृहान्तरे॥९३॥ अत्युच्चमतिनीचं च मध्ये विषमलङ्घनम् । अन्तर्जलाद्रिपतने वेधदोषो न विद्यते ॥९४॥ अन्तरारोपिता वृक्षा बिल्वदाडिमकेसराः । न तत्र वेधदोषः स्यात्सत्यं ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम् ॥९५॥ वेधदोषे-षड्वर्षे म्रियते स्वामी गतश्रीर्न्नवमे भवेत् । चतुर्थे पुत्रनाशः स्यात्सर्वनाशस्तथाष्टमे ॥ ९६ ॥ पक्षेण मासेन ऋतुत्रयेण संवत्सरेणापि फलं विधत्ते । शुभाशुभं क्षेममिदं बुधैस्तु नातः परं तत्र विचारमस्ति ॥ ९७ ॥ मातङ्गो दक्षिणे भागे पूर्वे पश्चात्तथोत्तरे । सिंहो विधत्ते मरणं पुत्राणां दोषदं महत्॥९८॥पूर्वे वृषं तथा तोये ध्वजं दोषकरं महत् । इति कण्ठीरवौ गेहौ याम्यपश्चिमदिक्स्थितौ९९॥

वर्षमें लक्ष्मीसे रहित होता है, चौथे वर्षमें पुत्रका नाश होता है और आठवें वर्षमें सर्वनाश होता है ॥ ९६ ॥ एक पक्षसे एक मासरो तीन ऋतुओंसे घर शुभ वा अशुभ फलको देता है यही कुशल है, इससे परे बुद्धिमानोंका उसके विषे विचार नहीं है ॥ ९७ ॥ जिस मन्दिर वा किलेमें हस्तीका स्थान दक्षिणभागमें हो और पूर्व पश्चिम उत्तरमें सिंहका स्थान होय तो मरण करता है और पुत्रोंको महान् दोषको देता है ॥ ९८ ॥ पूर्वमें वृष और जल वा ध्वजा होय तो महान् दोषको करते हैं, यदि कण्ठीरव नामके घर दक्षिण और पश्चिम दिशाओंमें होय ॥ ९९ ॥

पूर्व उत्तरमें ध्वजा होय तो बैलोंको महापीडा करनेवाले कहे हैं, जंबीर, पुष्पके वृक्ष, पनस, अनार ॥ १०० ॥ जाती चमेली शतपत्र (कमल) केशर नारीयल पुष्प और कर्णिकार (कनेर) इनसे ॥ १०१ ॥ वेष्टित (ढका) जो घर हैं वे मनुष्योंको सम्पूर्ण सुखके दाता होते हैं, पहिले वृक्षोंको लगाकर पीछेसे गृहोंको बनावे ॥ १०२ ॥ यदि अन्यथा करै तो वह घर शोभन नहीं होता प्रथम नगरका विन्यास करे अर्थात् नगरकी भूमिका निर्णय करे पीछेसे घरोंको बनवावे ॥ १०३ ॥ यदि अन्यथा करै तो शुभको न कहै अर्थात् वह घर शुभदायी नहीं होता. पूर्व

पूर्वोत्तरे ध्वजोक्षाणां महापीडाकरौ मतौ। जम्बीरैः पुष्पवृक्षैश्च पनसैर्दाडिमैस्तथा ॥१००॥ जातीभिर्मल्लिकाभिश्च शतपत्रैश्च केसरैः॥ नालिकेरैश्च पुष्पैश्च कर्णिकारैश्च किंशुकैः ॥१०१॥ वेष्टितं भवनं नृणां सर्वसौख्यप्रदायकम् । आदौ वृक्षाणि विन्यस्य पश्चाद् गेहानि विन्यसेत् ॥१०२॥ अन्यथा यदि कुर्यात्तु तद्गृहं नैव शोभनम् । नगरं विन्यसेदादौ पश्चाद्गेहानि विन्यसेत् ॥१०३॥ अन्यथा यदि कुर्वाणस्तदा न शुभमादिशेत् । पीताऽथ पूर्वे कपिला हुताशे याम्ये च कृष्णा निर्ऋतौ च श्यामा । शुक्ला प्रतीच्यां हरिताऽथ वायौ श्वेताथ सौम्ये धवला च ईशे ॥१०४॥ ईशानपूर्वयोर्मध्ये श्वेता पश्चिमनैर्ऋते । तयोर्मध्ये रक्तवर्णा पताका परिकीर्तिता ॥१०५॥ सर्ववर्णा तथा मध्ये पताका किंकिणीयुता बाहुप्रमाणा कर्तव्या स्तम्भ बाहुप्रमाणकम् ॥ १०६ ॥

दिशामें पीलीपताका, अग्निकोणमें कपिलवर्णकी, दक्षिणमें काली, नैर्ऋतिमें श्यामा, पश्चिममें शुक्ल, वायव्यमें हरी, उत्तरमें सफेद और ईशानमें धवलपताका होती है ॥१०४॥ ईशानपूर्वके मध्यमें सफेद और पश्चिमनैर्ऋतके मध्यमें रक्तवर्णकी पताका कहीहै ॥ १०५ ॥ किंकिणी (झालर) से युक्त संपूर्ण (वर्ण) रंगकी पताका मध्यमें होती है वह भुजाके प्रमाणकी होती है. उसका स्तंभभी भुजाके प्रमाणका होता है ॥ १०६ ॥

द्वारमार्गके पूर्वभागमें सोलह हाथकी ध्वजा होती है. इसका स्तंभभी घंटा-भूषणोंसे सहित विधिपूर्वक स्थापन करना ॥ १०७ ॥ दक्षिणमें पुष्पमालाओंसे युक्त स्तंभ द्वारमार्गमें स्थापन करै, यह वास्तुशास्त्र प्रथम बुद्धिमान् गर्गमुनिको ब्रह्माने कहा ॥ १०८ ॥ गर्गमुनिसे पराशरको, पराशरसे बृहद्रथको, बृहद्रथसे विश्वकर्माको वास्तुशास्त्र प्राप्त हुआ ॥ १०९ ॥ वह विश्वकर्मा जगत्के हितार्थ फिर वासुदेव-आदिकोंको भूलोकमें भक्तिसे कहता भया ॥ ११० ॥ इस पवित्र परम रहस्य (गुप्त) को जो नर पढताहै उसकी वाणी सफल होतीहै यह मैं सत्य कहता

यद्द्वारमार्गे पूर्वे तु ध्वजः षोडशहस्तकः । स्तंभोऽस्य विधिवत् स्थाप्यः सघण्टाभरणीकृतः ॥१०७॥ पुष्पमालान्वितः स्थाप्यो द्वारमार्गेऽथ दक्षिणे । इति प्रोक्तं वास्तुशास्त्रं पूर्वं गर्गाय धीमते॥१०८॥गर्गात्पराशरः प्राप्तस्तस्मात्प्राप्तो बृहद्रथः । बृहद्रथाद्विश्वकर्मा प्राप्तवान्वास्तुशास्त्रकम्॥१०९॥स विश्वकर्मा जगतो हितायाकथयत् पुनः । वासुदेवादिषु पुनर्भूलोके भक्तितोऽब्रवीत्॥११० इदं पवित्रं परमं रहस्यं यः पठेन्नरः । स्यात्तस्यावितथा वाणी सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥१११॥ अथ सुविमलविद्यो विश्वकर्मा महात्मा सकलगुणवरिष्ठः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता । सकलसुरगणानां सूत्रधारः कृतात्मा भवननिवसतां सच्छास्त्रमेतच्चकार ॥ ११२ ॥

इति ब्रह्मोक्तविश्वकर्मप्रकाशे श्रीविश्वकर्मणोक्तवास्तुशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ समाप्तोऽयं विश्वकर्मप्रकाशः ॥

हूं ॥ १११ ॥ इसके अनन्तर अत्यंत निर्मल है विद्या जिसकी ऐसा महात्मा विश्वकर्मा जो सबगुणोंमें श्रेष्ठ है, संपूर्ण शास्त्रोंके अर्थका ज्ञाता है, संपूर्ण देवताओंके गणोंका सूत्रधार है और पुण्यात्मा है वह भवनमें निवासियोंके इस लिये वास्तुशास्त्रको करता भया ॥ ११२ ॥

इति पं० मिहिरचन्द्रकृतभाषा० श्रीब्रह्मोक्तविश्वकर्मप्रकाशे विश्वकर्मणोक्तवास्तुशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ इति भाषाटीका समाप्ता ॥

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष - ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.